

ॐ

# अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंका

## परिचय

अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं। उनमें प्रथम तीन काण्डोंका यह प्रथम भाग है। इसमें सूक्त और मंत्र संख्या इस तरह है—

प्रथम काण्ड		संख्या	वर्णन	संख्या
प्रथम अनुवाक		१०	रक्तश्याम चंद्र करना	४
प्रथम प्रपाठक		१८	सौभाग्यवर्षेन	४
सूक्त संख्या	दीर्घक	१९	पशुनाशन	४
१	गुदिसंबर्षेण	२०	महानशासक	४
२	विजय	२१	प्रजोपाक	४ २०
३	भारोग्य, भूयदोष निवारण	२२	पंचम अनुवाक	
४	जल	२३	इन्द्रपरीगनिवारण	४
५	"	२४	श्वेतकुण्डनाशन	४
६	"	२५	कुण्डनाशन	४
७	"	२६	धीतरार दूरीकरण	४
८	"	२६	मुष्यनाशि	४
द्वितीय अनुवाक	मंत्र संख्या	२७	विजयी स्त्री	४
९	धर्मप्रचार	२८	दुष्टनाशन	४ २८
८	"	२९	षष्ठ अनुवाक	
९	सर्वःप्राप्ति	३०	वायुसंबर्षेण	६
१०	वायसे मुक्ति	३०	आयुर्वचर्षेण	४
११	शुभ्यसृति	३१	आयुशासक	४
तृतीय अनुवाक		३२	श्रीरत्न-रथ-महाभाग	४
१२	रोगनिवारण	३३	जल	४
१३	हृदयको नमन	३४	मनुविद्या	५
१४	शुक्लपू	३५	वक्त्र और दीर्घानुवाक	४ ३३
१५	रोगहृत्-महावज			
१६	शोरकान	३६		

१२ मंत्र हैं । ७ मंत्रोंवाला एक सूक्त है और ९ मंत्रोंवाला एक सूक्त है इस तरह—

४ मंत्रवाले ३० सूक्त १२० मंत्र	
५ ,, वाला १ ,, ५	
६ ,, वाले २ ,, १२	
७ ,, वाला १ ,, ७	
९ ,, वाला १ ,, ९	
१५३ कुल मंत्र संख्या ।	

इस प्रथम काण्डकी प्रकृति ४ सूक्तवाले मंत्रोंकी है अब द्वितीय काण्ड देखिये—

अब द्वितीय काण्डकी प्रवाण्डक, अनुवाक, सूक्त, मंत्र संख्या इस तरह है वह देखिये—

### द्वितीय काण्ड

सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या
१	गुह्य अध्यात्मविद्या	५
२	पूजनीय ईदवर	५
३	आरोग्य	६
४	ऊर्ध्वक मणि	६
५	अग्निवधर्म	७ २९
द्वितीय अनुवाक		
६	साक्षात्पथ	५
७	शापको कौटाना	५
८	अग्निप्रयोग पूर करना	५
९	मग्निप्रवाण्ड पूर करना	५
१०	दुर्गतिसे बचना	८ २८
तृतीय अनुवाक		
११	आमाके गुण	५
१२	मनका बल बढ़ाना	८
१३	बध्नापरिहार	५
१४	बिचगियोंकी हुरात	६
१५	विश्वमीषन	६
१६	विश्वभरती मणि	५
१७	आत्मपरक्षणका बल	७ ४२

चतुर्थ अनुवाक  
चतुर्थ प्रवाण्डक

१८	आत्मसंरक्षणका बल	५
१९	सुद्धिकी विधि	५
२०	" "	५
२१	" "	५
२२	" "	५
२३	" "	५
२४	डाकुओंकी असफलता	८
२५	शुश्रूषणी	५
२६	गोरस	५ ४८

पंचम अनुवाक

२७	विजयप्राप्ति	७
२८	दीर्घायुष्य	५
२९	"	७
३०	पतिपत्नीका मेल	५
३१	रोगोत्पादक क्रमि	५ २९

षष्ठ अनुवाक

३२	हृमिनादान	६
३३	यद्मनादान	७
३४	सुक्तिका सामं	५
३५	पञ्चम आत्मसमर्पण	५
३६	विवाहका मंगल कार्य	८ ३१

२०७

इस काण्डमें ५ मंत्रोंवाले सूक्त २२ हैं और मंत्र ११० हैं।

" " ६ " " ५ " " ३० "

" " ७ " " ५ " " ३५ "

" " ८ " " ५ " " ३९ "

द्वितीयकाण्डकी मंत्र संख्या २०७

इस द्वितीय काण्डकी प्रकृति ५ मंत्रोंके सूक्तोंकी है क्योंकि ३६ सूक्तोंमें २२ सूक्त ५ मंत्रोंके हैं।

अब तीसरे काण्डके प्रवाण्डक, अनुवाक, सूक्त और मंत्र देखिये—

तृतीय काण्ड			२८	पशुस्वास्थ्यरक्षा	६
पंचम प्रपाठक			२९	संरक्षक कर	८
प्रथम अनुवाक			३०	एकता	७
सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	३१	पापकी निवृत्ती	११ ४४
१	शत्रुसेना-संमोहन	६			२३०
२	"	६			
३	राजाकी राज्यपर पुनः स्थापना	६		इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं मंत्र संख्या ७८ है—	
४	राजाका चुनाव	७	७	" ६ " " ४२	
५	राजा और राजाके बनानेवाले	८ ३३	८	" ६ " " ४८	
द्वितीय अनुवाक			९	" २ " " १८	
६	धीरपुरुष	८	१०	" २ " " २०	
७	आनुवंशिक रोगोंका दूर करना	७	११	" वाला १ " इसकी " ११	
८	राष्ट्रीय एकता	६	१३	" १ " " १३	
९	हुंदा प्रतिबंधक उपाय	६		३१ सूक्त २३० मंत्र	
१०	कालका यज्ञ	१३ ४०		इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं अतः इस काण्डकी प्रकृति ६ मंत्रवाले सूक्तोंकी है ऐसा कह सकते हैं । तीनों काण्डोंकी मंत्र संख्या यह है—	
तृतीय अनुवाक				१ काण्ड सूक्त ३५ मंत्र संख्या १५३	
११	हवनसे दीर्घायुष्य	८	२	" " ३६ " २०७	
१२	गृह-निर्माण	९	३	" " ३१ " २३०	
१३	जल	७		५९० कुल मंत्र संख्या	
१४	गोशाला	६			
१५	वाणिज्यसे धनप्राप्ति	८ ३८			
चतुर्थ अनुवाक					
षष्ठ प्रपाठक					
१६	भगवानकी प्रार्थना	७		इन सूक्तोंके क्रमको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, इन सूक्तोंकी स्थापना विषयानुसार नहीं है । इसकी रचना विषयानुसार की जाय, तो पाठकोंको वेदका विषय समझनेमें सुगमता होगी । इन तीनों काण्डोंके सूक्त विषयानुसार इकट्ठे किये तो इस तरह होते हैं—	
१७	कृषिसे सुख	५		१ ईश्वर— ११३ ईश्वरको नमन, २११ अध्यात्मविद्या, २१२ पृथ्वीय ईश्वर, २१६ विद्येश्वरकी भक्ति, ३१६ भगवानकी प्रार्थना, २११ आत्माके गुण ।	
१८	वनस्पति	६		० मुक्ति— २१४ मुक्तिका मार्ग ।	
१९	ज्ञान और शौर्य	८		३ शासक— ११० महान् शासक, १२१ प्रजापालक, ३१३ राजाकी राज्यपर स्थापना, ३१४ राजाका चुनाव, ३१५ राजा और राजाके बनानेवाले, १३१ भाग्यशासक, ११२९ राष्ट्रसंवर्धन, ३१९ संरक्षक कर ।	
२०	तेजस्विताके साथ अभ्युदय	१० ४०		४ युद्ध— ३११-२ शत्रुसेना संमोहन ।	
पंचम अनुवाक				५ विजय— ११२ विजय, २१२ विजय प्राप्ति, २१५	
२१	कामामिश्रमन	१०			
२२	वर्षे प्राप्ति	६			
२३	वीरपुत्रप्राप्ति	३			
२४	समृद्धिकी प्राप्ति	७			
२५	कामका बाण	६ ३५			
षष्ठ अनुवाक					
२६	उषतिकी दिशा	६			
२७	अभ्युदयकी दिशा	६			

धत्रिवधर्म, ३१९ ज्ञान और शौर्य, ३२० तेजस्वितासे  
अभ्युत्थय ।

६ बुद्धि— १११ बुद्धिका सर्वधन, २१९ मनका बल  
बदाना ।

७ आरोग्य— १३३, २३३ आरोग्य, १३२ जीवनरस,  
१२ रोगनिवारण, १२२ हृदोगनिवारण, १२३-२४  
श्वेतकुष्ठ, कुष्ठनाशन, १२५ क्षीतशर, २९ सधिवानाशन,  
३० क्षेत्रियरोगनाश, २३१ रोगोत्पादककृमि, २३२ कृमि  
नाशन, २३३ यक्षमनाशन, ३० आनुवंशिक रोग दूर करना ।

८ दीर्घमायु— १३० आयुव्यवधन, १३५ बल और  
दीर्घमायुष्य, २२८-२९ दीर्घमायुष्य, ३११ हवनसे  
दीर्घमायुष्य ।

९ धन— ३१५ वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति, ३२४ समृ  
द्धि की प्राप्ति ।

१० पापसे मुक्ति— ११० पापसे मुक्ति, ३३१  
पापसे निवृत्ति, २१० दुर्गतिसे यचना, २१४ विपत्तिको  
हटाना ।

११ तेजस्विता— ११९, ३२० वर्च प्राप्ति ।

१२ यज्ञ— २३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण ।

१३ स्वतन्त्र— ११५ स्वयन्त्र यज्ञ, ३०, ३३० राष्ट्रीय  
पूजना ।

१४ सुप्रभाप्ति— १२६ सुप्रभाप्ति ।

१५ आत्मरक्षण— २१७, १८ आत्मरक्षण बल ।

१६ निर्भयता— २१५ निर्भयजीवन ।

१७ वीर— ३४ वीर पुत्र्य, ३३३ वीरपुत्र ।

१८ अभ्युदय— ३२० अभ्युदयकी दिशा ।

१९ ज्ञानप्रतिपद्य— ३१९ ज्ञान प्राप्त करना ।

२० सुखता— २१९-२३ सुख ।

२१ पुरनिर्माण— ३१३, पुरनिर्माण, ३१४  
तोषणा ।

२७ धर्म— १७-८ धर्मप्रचार ।

२८ जल— ११४, ५, ६, ३२, ३१३ जल ।

२९ काम— ३२१ कामाग्रिका धामन, ३३५ कामका  
याग ।

३० कृषि— ३१७ कृषिसे सुख ।

३१ प्रसूति— १११ सुख प्रसूति ।

३२ मणि-धारण— २३४ जगिहमणि ।

३३ शाप— २१० शापको कौटाना ।

३४ वनस्पति— २२५ पृथिवीपणी, ३१८ वनस्पति ।

३५ पशु— ३२८ पशुस्वाराध्य रक्षण ।

३६ पतिपत्नी— २३६ विवाह मंगल कार्य, २३०  
पतिपत्नीका प्रेम ।

३७ काल— ३१० कालका यज्ञ ।

३८ रक्तप्राय— ११७ रक्तप्राय बद करना ।

३९ चोर डाकू— २१६ चोरनाशन, ११९ कशु-  
नाशन, १२८ दुष्टनाशन, २२४ डाकूकी  
असफलता ।

हस तरह सूक्तोंकी विषयानुसार व्यवस्था की जाय तो  
हस व्यवस्थासे वैदिक सूक्तोंका बोध धीमे धीमे और सुखसे  
हो सकता है । भाषा है कि पाठकगण हसका विचार  
करेंगे । हमने हस समय जैसी सूक्तोंकी व्यवस्था है वैसी  
ही रखी है ।

### वैदिक सूक्तियाँ

हस प्रथम विभागमें ३ कण्डोंके तब सूक्त आयाये हैं  
वे ऐसे हैं—

प्रथम	काण्ड सूक्त ३५	मंत्रसंख्या १५३	पृष्ठसंख्या १२०
द्वितीय	" "	३६	१०७
तृतीय	" "	३१	१३०
		१०२	५५०
			५१६

गमरूप रहते हैं। जैसा बीजमें मगज होता है, वैसे मंत्रमें सुभाषित होते हैं। पाठक इनका विचार करे और प्रयोगमें भी ला सकते हैं। व्याख्यानमें छेलोंमें तथा अन्यप्रकार इनका बहुत उपयोग होसकता है और जितना इनका उपयोग होगा उतना वेद स्वप्नहारमें लाया गया वह सिद्ध हो सकता है।

इसके नीचे हम इन तीनों काण्डोंके सुभाषित देते हैं—

### परमेश्वर

इन तीन काण्डोंमें परमेश्वर विषयक सुभाषित ये हैं—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्रं भुवना यन्ति सर्वा । अ. २।१।३

वह ईश्वर सब अन्य देवोंके नामोंको धारण करता है, वह एक ही सत्ताक प्रभु है। उस प्रश्न पूछने योग्य परमेश्वरके पास सब भुवन धात्र्यार्थ जाते हैं।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यत् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् । अ. २।१।१

जहां सब विद्व एकरूप होता है और जो हृदयकी गुहामें रहता है उसको ज्ञानी भक्त जानता है।

स नः पिता जनिता स उत बंधुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा । अ. २।१।३

वह परमेश्वर हमारा पिता और जनक है, वही बंधु भी है। वह सब भुवनों और स्थानोंको जानता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् । अ. २।१।५

सत्यके अमृतके सुखमय तन्तुको देखनेके लिये सब भुवनोंमें मैं घूम आया हू। सर्वत्र इस सुखस्वरूप अमर आरामरूप इस तन्तुको मैंने देखा है।

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः । अ. २।२।१

सुधनका एक ही दिव्य गंधर्व स्वामी है जो नमस्कारके योग्य है और प्रजाजनोंकी स्तुति करने योग्य है।

मृडाङ्गधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवः । अ. २।२।२

भुवनोंका एक ही स्वामी जो नमस्कारके योग्य है, जो संश्लेष है वही सत्ताका माधार सबको सुखी करे।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनाद्यध्वेरयन्त । अ. २।१।५

जहां अमृत योनेवाले देव उस एक माधय स्थानमें रहते हैं। ( वह अमर परमेश्वरका माधार स्थान है। )

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरग्निना । प्रातर्भर्गं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ अ. २।१।१

प्रातः समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनौ, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रको बुलाते हैं, इनकी प्रार्थना करते हैं। ( एक देवके ये अनेक गुणबोधक नाम हैं। )

उत्तेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्य उत मध्ये अहाम् । उतोदितौ मघवत्सूर्यस्य ययं देवानां सुमती स्याम ॥ ४ ॥ अ. २।१।४

हम अब माग्यवान् हों, सूर्यकाल अथवा दिनके मध्यमें, सूर्यके उदयके समय माग्यवान् हों। हम देवोंकी सुमतिमें रहें।

तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव । अ. २।२।१

हे दिव्य देव ! तेरे साथ ज्ञानसे मैं संयुक्त होता हू। अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाताः । अ. २।४।३

सजातीय लोग हविष्य ब्रह्मके साथ तेरे समीप आजावें। उपसद्यो नमस्यो मघेह । अ. २।४।१

यहां पास जाने योग्य तथा नमस्कार काने योग्य हो। नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् । अ. २।२।१

तेरा स्थान शुभकेमें है, तुझे मैं नमस्कार करता हू। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृपितासत् ।

इसके तीन पाद हृदयकी गुहामें हैं, जो वनको जानता है वह पिताका भी पिता अर्थात् बडा होता है।

परि चावापृथिवीं सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथम-जामृतस्य । अ. २।१।४

चावापृथिवीमें मैं सर्वत्र घूम आया हू और सत्यके प्रथम प्रवर्तक—परमेश्वरकी मैं उपासना सर्वत्र देवता हू।

प्र तद्वाचं दमृतस्य विद्वान् गंधर्वो धाम परमं गुहा यत् । अ. २।१।२

जो हृदयकी गुहामें है वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान विद्वान् वक्ता ही नामकर उसका वर्णन का सकता है।

स देवान् यश्वास उ कल्पयताद्विदाः । अ ३।१।१  
वह देवोंका यजन करता है, वह निश्चयसे प्रजाओंको समर्प करता है ।

यहस्य चक्षुः, प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । न ३।३।५

वह प्रभु यश्का आस है, सयका भरण कर्ता, और यश्का मुख है । वाणी कान और मनसे मैं उसका यजन करता हू ।

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यस्यक् अघयाता हरसो देव्यस्य । न ३।३।२

इंद्रवा षड्भुक्तमें रहता है, वह पूज्य है, सूर्यके समान तेजस्वी है और देवी आपत्तियोंको दूर करनेवाला वही प्रभु है ।

ये मूर्तियां वारंवार पढ़नेसे, कण्ठ करनेसे, वारंवार मनन करनेसे परमेश्वर विषयक वैदिक मिथ्यागत ठक्काल स्थानमें आसकता है । देखिये—

यो देवानां नामघा— वह देवोंके नाम धारण करनेवाला है ।

ते सं प्रश्नं भुपना यस्ति सर्वा— सब भुवन उस पृष्ठने योग्य प्रभुके पास जाते हैं ।

येनस्तत्पदयत्— ज्ञानी उसको देसता है ।

परमं गुहा यत्— ओ हृदयके गुह स्थानमें रहता है ।  
न न पिता जनिता— वह रक्षक और उपपन्न करनेवाला है ।

घामानि घेद् भुपनानि यिदा— सब भुवनों और स्वामीको वह जानता है ।

प्रुत्तस्य तन्नुं यित्तं द्ये कं— सुखदायक पैला हुआ सत्यका तन्नु- परमात्मा है उसको मैं देखता हू ।

भुपनस्य यरपतिः— वह भुवनोंका एक पति है ।

एष एव नमस्यः— वह एकही नमस्कार करने योग्य है ।

प्रातर्भर्ग— प्रातः काल भाग्यवाद् प्रभुकी भक्ति करते हैं ।  
उपसद्यो भवेद्द— यहाँ पास जाने योग्य हो ।

दिवि ते सघस्यं— आकाशमें तेरा स्थान है ।

त्रीणि पदा निहिता गुहास्य— इसके तीन पाद बुद्धिमें हैं ।

अमृतस्य चिद्वान्— अमृतका जाननेवाला धन्य है ।

घाम परमं गुहा यत्— परम घाम हृदयमें है ।

स उ कल्पयताद्विदाः— वह प्रभु प्रजाओंको समर्प बनाता है ।

अघयाता हरसो देव्यस्य— देवी दु.खोंको वह प्रभु दूर करता है ।

यहां जो मूर्तियां दी हैं । उनके ये टुकड़े हैं । ये भी मूर्तियां ही हैं और ये वारंवार भजन करने योग्य हैं ।

‘एक एव नमस्यः’ प्रभु अकेला एकही नमस्कार करने योग्य है । ‘दिवि ते सघस्यं’ आकाशमें तेरा स्थान है ।

‘अघयाता हरसो देव्यस्य’ देवी दु.खोंको दूर करनेवाला वह प्रभु है । ऐसे वेदमंत्रोंके टुकड़े भजन करनेके होते हैं ।

अकेला अपने मनमें इनका भजन करे, अथवा समाजमें सैकड़ों और हजारों मनुष्य अर्थके साथ इन वचनोंका भजन करें । इस तरहका भजन करनेके लिये ही ये टुकड़े हैं ।

जिनकी वेदोंपर श्रद्धा है वे अर्थपर स्थान रखते हुए इन वचनोंका भजन करें । यह भजन मनमें भी होता है और

वाह्यस्वरमें सामूहिक भी हो जाता है । ऐसे अर्थसहित भजन होने लगे तो ये मंत्रभाग सबके मनमें स्थिर होते हैं, और

इतका उपयोग योउने घालनेके समय होनेकी सुविधा होती है ।

पाठक मनमें देने भजन करके देखें, भजन करनेके समय अर्थको अपने मनमें पूर्ण शीतिले भरपूर भरकर रखें, उस

मंत्रके आउते अपना मन भरपूर भरा ऐसा, ओठमोठ भरा है ऐसा भाव मनमें सुरिखर रखें । ऐसा भजन मनमें कर

नेसे जैसा काम बपान्तिको होता है वैसा ही काम ये ही

इंश्वर विश्वका शासक है, जो शासक होता है वह राजा ही होता है, इंश्वर शासक है और निर्दोष शासक है। अतः वह हमारे शासकोंके लिये आदर्श है। इस दृष्टिसे इंश्वरके गुण हमारे शासकमें देखने योग्य हैं। वे इस तरह देखे जा सकते हैं—

### शासकका वर्णन

वेदमें जो वर्णन है उन मंत्रोंमें शासक, राजा, अधिका-रीका वर्णन करनेवाले सुभाषित ये हैं—

सर्वासिवा राजन् प्रदिशो ह्यन्तु । अ. ३।१।१

हे राजन् ! सब दिशा उपदिशा ( ओमें रहनेवाले प्रजा-जन ) तुम्हें ( अपने रक्षणके लिये ) बुलावें ।

तास्त्वा संघिदाना ह्यन्तु । अ. ३।१।७

वे सब प्रजाएँ मिलकर एकमतसे तुम्हें बुलावें ।

त्वां विशो घृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः

पञ्च देवाः । अ. ३।१।२

जैसे ये प्रजाएँ, जैसे ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली दिव्य प्रजाएँ राज्यरक्षणके लिये स्वीकार करें ।

आ त्वा गन्टाष्टुं । अ. ३।१।१

हे राजन् ! तेरे पास राष्ट्र आगया है ।

सजातानां श्रेष्ठथ आ घेहोनम् । अ. १।१।३

अपनी जातियोंमें वच स्थानपर इसको रखो ।

वर्षन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व, ततो न उग्रो

विभजा वसूनि । अ. ३।१।२ : ४

राष्ट्रके वच स्थानमें रहकर, और वहाँसे सबके लिये

धनोंका विभाग कर दो ।

माह् विजगं पतिरेकटाह् त्वं शिटाज्ज । अ. ३।१।१

प्रजाओंका मुख्य स्वामी एक राजा होकर, तू विश्व-मान् हो ।

स्वस्तिदा विजांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।

अ. १।२।१।१

प्रजापालक कल्याण करनेवाला, शत्रुनाशक और घात-कोंकी वध करनेवाला हो ।

ब्रह्मणस्पतेऽभि राश्राय वर्धय । अ. १।२।१।१

हे ज्ञानी पुरुष ! राष्ट्रके हित करनेके लिये बढ़ाओ ।

ये राजानो राजकृतः सूता प्रामण्यश्च ये ।

उपस्तान् पर्णं मह्यं त्वं सघोन् कृण्वमिभितो जनान् ।

अ. ३।५।७

जो राजा और राजाओंको करनेवाले, सूत तथा प्राम-नेता हैं वे पर्णमणै ! इन सबको मेरे समीप उपस्थित कर ( उनकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर । )

अहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा । अ. १।२।५।५  
मैं शत्रुका नाश करनेवाला, शत्रुओंका वध करनेवाला तथा शत्रुरहित होऊँ ।

अहं राष्ट्रस्याभीषर्गे निजो भूयासमुत्तमः ।

अ. ३।५।२

मैं राष्ट्रके भास पुरुषोंमें उत्तम निज बनकर रहूँ ।

अथा मनो वसुदेयाय कृणुष्व । अ. ३।१।४

अपना मन धनदानके लिये अनुकूल बनाओ ।

क्षत्रेणाश्रे स्वेन संरभस्व । अ. २।१।४

हे अग्ने ! अपने क्षात्रतेजसे उत्साहित हो ।

अति निहो, अति सृघो, अत्यचिन्तो, अतिद्विपः ।

अ. २।६।५

मारपीट करनेकी वृत्तिसे दूर रह, द्विसर्कोंसे दूर रह, पापीवृत्तिसे दूर हो, द्वेष करनेवालोंसे दूर रहो ।

तेन सहस्रकण्ठेन परि णः पाहि विद्वतः ।

अ. ३।७।३

उस सहस्र कण्ठवालेसे सब ओरसे हमारा रक्षण कर ।

शतारमेतु उपयः । अ. २।७।५

शाप देनेवालेके पास ही उसका शाप चला जावे ।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं यलम् ।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुयैपामस्मि पुरोहितः ।

अ. ३।१।१।१

मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है, मेरा वीर्य और बल तेजस्वी है। जिनका मैं विजयी पुरोहित हूँ उनका तेजस्वी और क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज बढ़ता रहे ।

क्षिणामि मह्यणाऽमित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।

अ. ३।१।१।३

मैं शत्रुसे शत्रुओंका नाश करता हूँ और अपने लोगोंको मैं उन्नत करता हूँ ।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुयेषां चित्तं विश्वेऽ-

चन्तु देवाः । अ. ३।१।१।५

इनका क्षात्रतेज अक्षय हो । इनका विजयी चित्त सब देव सुरक्षित रखे ।

जाया. पुत्रा. सुमनसो भवन्तु यद्गुं वलिं प्रति

पश्यास उग्रम् । अ. ३।४।३

छिन्नौ और पुत्र उत्तम मनवाले हों । और उग्रवीर बन-  
कर बहुत करमारको देखें ।

पथ्या रेवतीर्वृक्षा विरूपाः सर्वाः सगल्य

परिपस्ते अकन् । अ. ३।४।७

सन्मार्गसे चकनेवाली अनेक प्रकारकी रंगरूपवाली  
प्रजायें मिलकर तुम्हें श्रेष्ठ स्थानपर स्थापित करती हैं ।

वलीं वलेन प्रमृणान् तसपत्नान् । अ. ३।५।१

यद् बलवान् वीर अपने बलसे शत्रुओंका नाश करता है ।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारो ये मनीषिणः ।

उपस्तीन् पर्णं मह्यं त्वे सर्वान् कृण्वमभितो जनान् ॥

अ. ३।५।६

जो बुद्धिमान् है, जो रथकार है, जो कर्म करनेवाले  
लुदा हैं, और विद्वान् हैं । हे पर्णमणे ! तू उन सब जनोंको  
मेरे समीप उपस्थित कर (बुद्धिमानोंकी सहायता मुझे प्राप्त  
हो ऐसा कर ।)

सज्जानानां मध्यमेष्टा राजामग्रे विद्वयो दीदिहीह ।

अ. ३।६।४

सजातीयोंमें मध्यम स्थानमें बैठनेवाला हो, और राजाओं,  
राजपुरुषोंके द्वारा बुकाने योग्य होकर, वही प्रकाशित  
होता रह ।

शास इत्या महौ अस्यामित्रसादो अस्तृतः ।

न यस्य हन्यते सखा न जायते कदाचन ॥

अ. १।२०।७

शत्रुओंका नाश करनेवाला, अपराभूत ऐसा यह महान्  
शासक है, जिसका मित्र मारा नहीं जाता और जिसका  
मित्र कभी पराभूत नहीं होता ।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।

ताविष्टा दधर्ना स्फार्ति यद् भूमानमक्षितम् ॥

अ. ३।२।७

हे प्रजापालक ! पाप लाना और समूह करना ये दोनों  
कार्य तू कर, वे कार्य वही वृद्धिको लावे और बहुत अश्रय  
मापूरणको प्राप्त हों ।

पसे तप ०, द्र.०, भासिं०, शोचिं०, तेजः ।

तेन ते प्रतिपद्य योऽस्मान् श्रेष्ठि यं चर्यं द्विषमः ।

अ. २।१९-२३।१-५

जो तेरी तपशक्ति, हरणशक्ति, तेज.शक्ति, प्रकाशशक्ति-  
और तेजजशक्ति है, उससे उनको कष्ट दे जो हमसभको  
कष्ट देता है और जिसका हमसभ द्वेष करते हैं ।

अभूर्गृष्टीनामभिःशक्तिपाया उ । अ. २।१३।३

विनाशसे मनुष्योंका रक्षण करनेवाला हो ।

विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि ।

अ. २।१६।५

हे विश्वके भरण कर्ता ! सपूर्णपोषण शक्तिसे मेरा  
रक्षण कर ।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य पोहशं

यमस्यामी सभासद् । अ. ३।२।१।१

जिस तरह नियमसे चकनेवाले राजाके सभाके वे सभा-  
सद इष्ट और पूर्तका तोलहवा भाग वृषकू कर रूपसे  
रखते हैं ।

यासां राजा वदणो याति मध्ये सत्यानृते

अथपश्यन् जनानाम् । अ. १।३।२

जिनका राजा वदण लोगोंके सत्य वा असत्य जाचरण  
देखता हुआ जाता है ।

ये ऐसे संज्ञमाग इस विषयमें विचार करने योग्य हैं ।

इनमें और छोटे ध्यानमें सदा रखने योग्य सुभाषित ये हैं ।

त्वां विशो वृणतां राज्याय— सब प्रजा राज्यके  
लिपे तुझे दासक करके स्वीकार करें ।

वर्षमन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्य— राष्ट्रके श्रेष्ठ स्थान  
पर रह ।

विशां पतिरेकराट् त्व विराज— प्रजापालक एक  
राजा होकर तू सुशोभित हो ।

स्वस्तिदा विशांपति— यह प्रजापालक कल्याण  
कानेवाला हो ।

अभि राष्ट्राय वर्धय— राष्ट्रके हित करनेके लिये यत्न  
कर ।

त्वं सर्वान् कृण्वमभितो जनान्— तू सब जनोंको  
अपने चारों ओर इकट्ठा कर ।

अद् शत्रुहोऽस्तानि— मैं शत्रुका नाश करनेवाला  
होजगा ।

अद् राष्ट्रस्याभीरगो निजो भूयासं— मैं राष्ट्रके  
उत्तम पुरुषोंमें निज होकर रहूंगा ।

अनि द्विष — द्वेष करनेवालोंको दूर करता हूँ ।



अति स्त्रियः— हिंसकोंको दूर करता हूँ।

परिणः पाहि विश्वतः— चारों ओरसे हमारी रक्षा कर।

संशितं धीर्यं बलम्— हमारा वीर्य और बल तीक्ष्ण हो।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रबल तीक्ष्ण होकर क्षीण न हो।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमिन्वान्— शत्रुओंको ज्ञानसे क्षीण करता हूँ।

उन्नयामि स्नानहम्— स्वकीयोंकी उन्नति करता हूँ।

क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रवज क्षीण न हो।

जिष्ण्वेषां चित्तम्— इनका चित्त विजयी हो।

जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु— स्त्री, पुत्र वस्तुमनवाले हों।

बला बलेन प्रमृणन् सपत्नान्— बलवान् बलसे शत्रुओंको मारे।

सजातानां मध्यमेष्टाः— स्वजातीयोंके मध्यमें बैठने वाला हो।

शास इत्या महौ असि— तू शासकपेसा मदान् है।

अमित्रसादो अस्तुतः— शत्रुको पराभूत करनेवाला और स्वयं अपराजित हो।

न यस्य हन्यते सखा— जिसका मित्र मारा नहीं जाता।

उपोहश्च समूहश्च— पास लाना और समूह करना (ये दो कार्य करने योग्य हैं।)

इस प्रकार इन सुभाषितोंमें मननीय वचन हैं। ये चार-वार उच्चारित करनेसे बड़ा आनन्द प्राप्त हो सकता है। 'स्वास्तिदा विशांपतिः' यह वचन चारंवार उच्चारनेसे राजाके कर्तव्य ध्यानमें आ सकते हैं और परमेश्वरके गुण भी मनमें स्थिर होते हैं। परमेश्वर 'स्वस्ति-दा' है अर्थात् कल्याण करनेवाला है। सबका कल्याण वह करता है। जो परमेश्वरका पुत्र है वही गुण राजामें तथा साधारण प्रजाजनमें भी देखना चाहिये। अर्थात् हरएक मनुष्य 'स्वस्ति-दा' कल्याण करनेवाला हो, राज्याका अधिकारी कल्याण करनेवाला हो, राजा भी प्रजाका कल्याण करनेवाला हो। परमेश्वर तो सबका कल्याण करनेवाला है ही।

'राष्ट्राय वर्धय' राष्ट्रका वर्धन कर। राष्ट्रकी उन्नति कर। राष्ट्रका अभ्युदय हो ऐसा कर। 'अहंशत्रुहो अस्तानि' में शत्रुको मारूंगा। शत्रुको दूर करना हरएकका कर्तव्य है। शत्रु तो स्वकिके, समाजके, धर्मके तथा राष्ट्रके अनेक प्रकारके होते हैं। उन सब शत्रुओंको दूर करना योग्य है।

'जिष्ण्वेषां चित्तं' सब मनुष्योंका चित्त जयशाली हो, विजयी हो। कर्मो चित्त निरुसाही न हो। 'न यस्य हन्यते सखा' जिसका मित्र मारा नहीं जाता ऐसा परमेश्वर है। राजा भी ऐसा हो, और मनुष्य भी ऐसा हो।

इस प्रकार इन सुभाषितोंका भजन, मनन तथा अपने जीवनमें दालनेका यत्न करना चाहिये। ईश्वर, विश्वदासक है और राजाके गुणधर्म इनमें प्रकट हुए हैं। शासन हुआ तो वहाँ पुराह्वोसे, शत्रुओंसे युद्ध करना ही पड़ता है। इस कारण सब युद्धके विषयके सुभाषित देखिये—

### युद्ध

दुष्टोंका शसन करनेके लिये जागृत रहकर युद्ध करना चाहिये, इस विषयके ये सुभाषित हैं—

स्वे गये जायुह्यप्रयुच्छन् । अ. २।६३

अपने घरमें प्रमाद न करता हुआ जाग्रत रह।

प्रेता, जयता, नर उत्रा यः सन्तु बाहवः ।

अ. ३।१९।६

हे वीरो! आगे बढ़ो, विजय कमानो, आपके बाहु शौर्य करनेवाले हों।

तेऽधराञ्जः प्र युवतां छिन्ना नौरिच यन्धनात् ।

अ. ३।६।७

जैसी नौका बंधनसे लूटनेपर बह जाती है, उस तरह वे शत्रु अधोमार्गसे नीचेकी ओर चले जाय।

अमी ये धिक्वता स्थन तान्वः सं नमयामसि ।

अ. ३।८।५

जो ये विद्वद् कर्म करनेवाले हैं उनको मैं एक विचार-वाले करता हूँ।

नश्येतेतः सदान्वः । अ. २।१७।६

यहाँसे दानववृत्तियां विनष्ट हों।

वि त्वमग्ने आरारत्याः । अ. ३।६।१।

हे अग्ने! तू शत्रुसे दूर रहता है। शत्रु हमारे पास नहीं आसकता।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वय द्विधमस्तं वो जग्मे दध्मः ।

अ ३१२७१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अन्धेलेका हम सब द्वेष करते हैं वसको हे प्रभो ! तुम्हारे जबड़ेमें दैते हैं ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।

वृश्चामि शत्रूणां वाहननेन हविषाऽहम् ॥

अ ३११९२

इनका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हूँ । इस इनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरघ्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रस्य यज्ञात्तीक्ष्णीयासो येषामस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३११९४

जिनका मैं पुरोहित हूँ उनके शस्त्र अथ परशुसे तीक्ष्ण, अथिमे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भी वीले बनाता हूँ ।

उद्धर्पन्ता मघघन् वाजिनान्युद्धीराणां जयतामेतु घोषः । अ ३११९६

हे इन्द्र ! उनके बल उच्चोजित हों । विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णयसोऽवलघ्नवयो हतोप्रायुघा अवलानु-  
प्रयाहयः । अ ३११९७

हे तीक्ष्ण बाणवाले ! उग्र आतुरघोवाले ! उग्र बाहु चाड़े वीरों । निर्बल धनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो ।

एषा तान् सर्वाण् निर्मग्धि यानह द्वेष्टि ये च माम् । अ. ३११९३

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हूँ और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्र ते यज्ञः प्रमृणस्तेतु शत्रून् । अ ३११९७

तेरा यज्ञ शत्रुओंको काटता हुआ भागे भेदे ।

इन्द्र सेना मोहयामिप्राणाम् । अ ३११९५

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रार्थाकृत्वा चर ।

अग्नेर्मानस्य धाज्या तान् विप्रचो यिनाशय ॥

अ ३१२३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके तुम मरुतपक्षे गाए हमारे शान था। और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको पारों भागे निरस्त कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-  
जातवेदाः । अ ३१२१७

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अमीवां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाह्णान्यप्ये  
परेदि । अ ३१२१५

हे न्यायी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड़ कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवजात-  
वेदा । अ ३११११

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तरहित करे ।

अथमग्निर्मुमुहयानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो घमत्वोरुस्तः प्र वो घमतु सर्वतः ।

अ. ३१२२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्नी मोहित करे । शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिदास्ति-  
मरातिम् । अ ३१२११

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अग्निं प्रेदि, निर्दह हस्तु शोकैर्प्राणामिन्नांस्त  
गसा विध्य शत्रून् । अ ३१२१५

आगे बढ, हृदयोंको शोकसे जला दे, जकड़नेवाले रोगसे, तथा मूर्खसे शत्रुओंको धींच लो ।

यूयमुप्रा मरुत ईदशे स्यामि प्रेतमृणत सहध्वं ।

अ ३११२

हे मरुतक छद्मनेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, हमलिये आगे बढ़ो, काटो और जीत लो ।

ध्रानृत्वक्षयणमसि ध्रानृत्वक्षयण मे दा ।

सपत्नक्षयणमसि समत्नक्षयण मे दा ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दा ।

पिदाचक्षयणमसि पिदाचक्षयणं मे दा ।

सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयणं मे दा ।

वैरियों, सपरनों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी  
वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो ।

भूतपातिर्निरजनु, इन्द्रश्चेतः सदान्याः ।

गृहस्य युध्त आसीनास्ता इन्द्रो यज्ञेपाथि तिष्ठतु ।

अ १११४

भूतपाति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।  
घरकी जड़में जो बुराहट्यो हैं उनको इन्द्र वज्रसे दूर दहा  
देवे ।

विपूच्येतु कृन्तती पिनाकामिव विभ्रती ।

विध्वक् पुनर्भुया मनः । अ ११२७

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई वीरसेना चले जो  
शत्रुसेनाका मन विचलित करे ।

आरे अस्मा यमस्यथ । अ ११२६

किसीने मारा पथर हमसे दूर हो ।

अधमं गमया तमो यो अस्मौ अभिदांसति ।

अ ११२१

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें  
पहुँचा दो ।

अपेन्द्र द्विपतो मनोऽप जिज्यासतो घघम् ।

अ ११२१

हे प्रभो ! हे वीर ! द्विपिका मन बटल दे और हमारे  
नाश करनेवालेके शत्रुको दूर कर ।

इदं विष्कंधं सहते इदं वाधते अग्निः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥

अ. १११६

यह सीसा दुष्टका पराभव करता है, यह शत्रुको बाध  
करता है, पिशाचोंकी सब जातियाँ हमसे पराभूत होवों  
हैं । ( सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छरव्याऽस्मद्विपूचीरिन्द्र पातय ।

अ १११९

हे इन्द्र ! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर  
गिरे ।

यो नः स्यो यो अरण. सजात उत निष्ठयो यो

अस्मानभिदांसति ।

रुद्र शरव्यैतान् ममामित्रान् विविधयतु ।

अ १११३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन  
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है,  
ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे बंधे ।

मा नो धिद्वभिभा, मो अशस्तिः । अ ११२०

पराभव हमारे पास न आवे, अथवा शत्रुता हमारे समीप  
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यदधं वरुण यायय ।

अ ११२०

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शत्रु हैं उनको  
दूर कर ।

सीस म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातु-चातनम् ।

अ १११६

' सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले  
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमोदिनः ।

अ ११०३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विलाप  
करें । ( दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और  
सदा क्या खाऊ ऐसा बोलना विलाप करानेवाला है ।

त्वमग्ने यातुधानानुपयद्धा इहावह । अ. ११०७

हे अग्ने ! तू यातना देनेवालोंको बाधकर यहा ला ।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च । अ ११०३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका पराभव कर और उसको  
ले चल ।

एवा मे शश्रोर्मूर्धान विप्रग्निमन्धि सहस्य च ।

अ. ३१६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो ।

म दन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेग्नि ये च माम् ।

अ ३१६१, ३१५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ  
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमित्रसेनां मघवत्तन्माऽञ्जयतीमभि ।

युव तानिन्द्र वृत्रहप्रक्षिष्य दहतं प्रति ॥

अ ३११३

हे इन्द्र ! शत्रुवत् नाचण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र  
और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो ।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

अ. ३।२७।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस भकेलेका हम सब द्वेष करते हैं उसको द्वे प्रभो ! तुम्हारे जबड़ेमें दवे हैं ।

समहमेयां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।

वृश्चामि शत्रूणां याहूननेन हविषाऽहम् ॥

अ. ३।१९।२

हमका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनता हूँ । इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्रेस्तीक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रम्य वज्रास्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३।१९।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र भस्त्र करशीसे तीक्ष्ण, अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भो तोले बनता हूँ ।

उद्वर्षन्तां मध्वन् वाजिनाभ्युद्धीराणां जयतामेतु

घोषः । अ. ३।१९।६

द्वे इन्द्र ! उनके षष्ठ उत्तेजित हों । विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णेपवोऽवलघ्नवयो हतोप्रायुधा अवलानु-  
प्रमाह्वयः । अ. ३।१९।७

द्वे तीक्ष्ण बाणवालो ! उम प्रायुर्धोवालो ! उम बाहु-  
वाले वीरों ! निर्बल घनुष्यवालं निर्बल वीरोंको मारो ।

एषा तान् सर्वान् निर्मागिध यानहं द्वेषि ये च  
माम् । अ. ३।१९।९

इस तरह सब शत्रुओंका नाम कर, जिनका मैं द्वेष  
करता हूँ और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्रते घञः प्रमणप्रेतु शत्रून् । अ. ३।१९।१०

तेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढ़े ।

इन्द्र सेनां मोहयामिप्राणाम् । अ. ३।१९।११

द्वे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रशंटाकृत्या चर ।

अग्नेर्यागस्य प्राज्या तान् विप्यूचो पिनाशय ॥

अ. ३।२।३

द्वे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके शुभ संकल्पके  
गाय हमारे पाप था। और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको  
पारों ओरसे पिनाश कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-  
जातवेदाः । अ. ३।२।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तको मोहित करे और उनको  
दस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका  
विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अभीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाह्वान्यप्ये  
परेद्धि । अ. ३।२।५

द्वे म्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके  
अवयवोंको जकड़ कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवजात-  
वेदाः । अ. ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको  
दस्तरहित करे ।

अयमग्निर्मूमुहयानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो धमर्योकसः प्र घो धमतु सर्वतः ।

अ. ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्रणी मोहित करे ।  
शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे  
हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदृहन्नभिशास्ति-  
मरातिम् । अ. ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवाली  
शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अभि मेद्धि, निर्दह हस्तु शोकैर्प्राह्यामित्रांस्त-  
मसा विध्य शत्रून् । अ. ३।२।५

आगे बढ़, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकड़नेवाले  
रोगसे, तथा मृगंसे शत्रुओंको बाँध ले ।

यूयमुप्रा मरुत ईदशे स्यामि प्रेत मृणत सहर्ष्यं ।

अ. ३।१।२

वे मरनेतक लड़नेवाले वीरों ! तुम ऐसे उम वीर हो,  
हमलिये आगे बढ़ो, काटो और जीत लो ।

आतृष्यक्षयणमसि आतृष्यक्षयणं मे दाः ।

सपत्नक्षयणमसि समत्नक्षयणं मे दाः ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः ।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः ।

सद्वान्यक्षयणमसि सद्वान्यक्षयणं मे दाः ।

वैरियों, सपत्नों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो ।

भूतपातिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।

गृहस्थ बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधितिष्ठतु ।

अ. २।१४।४

भूतपाति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।  
घरकी जड़में जो घुराहियाँ हों उनको इन्द्र वज्रसे दूर हटा देवे ।

विपूष्येतु कृन्तती पिनाकमिध विभ्रती ।

विष्वक् पुनर्भुवा मनः । अ. १।२७।२

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई वीरसेना चले जो  
घातुसेनाका मनः विचलित करे ।

आरे अस्मा यमस्यथ । अ. १।२६।१

किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो ।

अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिर्दांसति ।

अ. १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें  
पहुँचा दो ।

अपेन्द्र द्विपतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।

अ. १।२१।४

हे प्रभो ! हे वीर ! द्वेषिका मन बढल दे और हमारे  
नाश करनेवालेके शत्रुको दूर कर ।

इदं विष्वक् सहते इदं याघते अत्रिणः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाचयाः ॥

अ. १।१६।३

यह सीसा दुष्टका पराभव करता है, यह शत्रुको बाधा  
करता है, पिशाचोंकी सब जातिवाँ इससे पराभूत होती  
है । ( सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छरवयाऽस्मद्विपूचीरिन्द्र पातय ।

अ. १।१९।१

हे इन्द्र ! शरों और फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर  
गिरे ।

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ठयो यो  
अस्मानभिर्दासति ।

रुद्रः शरव्यथैतान् ममामिभ्रान् विविधयतु ।

अ. १।१९।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन  
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है,  
ऐसे भरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे बँधे ।

मा नो विद्दमिभा, मो अशस्तिः । अ. १।२०।१  
पराभव हमारे पास न आवे, अग्रशक्तता हमारे समीप  
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यद्ग्रधं वरुण यायय ।

अ. १।२०।३

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शत्रु हैं उनको  
दूर कर ।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छन्नर्दंग यातु-चातनम् ।

अ. १।१६।२

'सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले  
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः ।

अ. १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विलाप  
करें । ( दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और  
सदा क्या खाऊँ ऐसा बोलना विलाप करानेवाला है ।

त्वमग्ने यातुधानानुपयद्वा इहवह । अ. १।७।७

हे अग्ने ! तू यातना देनेवालोंको बाँधकर यहाँ ला ।

यातुधानस्य प्रजाँ जहि नयस्व च । अ. १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका पराभव कर और उसको  
ले चक ।

पथा मे शत्रोर्मूर्धानि विष्वग्निमन्धि सहस्र च ।

अ. ३।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो ।  
म हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेग्नि ये च माम् ।

अ. ३।६।१; ३।९

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ  
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमिभ्रसेनां मधवदन्म्याञ्छत्र्यन्तमिभि ।

युषं तानिभ्र वृत्रहपाशिश्व ददत प्रति ॥

अ. ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुवध आचरण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र  
और अग्नि तुम दोनों मिळकर जला दो ।

इन्द्रः सेनां मोहयतु, मत्तो प्रत्योजसा ।  
चक्षुष्यशिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता । अ ३।१।६

इन्द्र (सेनापति) शत्रुसेनाको मोहिव करें । मरुत्  
(सैनिक) वेगसे हमला करें । अग्नि उनकी आँखें लेंवें ।  
इस तरह पराभूत होकर शत्रुसेना पीछे हटे ।

विष्णुक् सत्यं कृणुहि चित्तमेवाम् । अ. ३।१।४

सत्य रीतिसे इन शत्रुओंका चित्त चारों ओरसे व्यग्र करो ।  
अज्ञेयं सर्वानाजीन् वः । अ २।१४।६

सब बुद्धोमें मैंने विजय प्राप्त किया है ।  
अहा अराति, अविदः स्योतं, अप्यभूः भद्रे  
सुश्रुतस्य लोके ॥ अ २।१०।७

कृपणताको तुमने छोडा है । सुखको प्राप्त किया है,  
कृत्याणकारी पुण्यलोकमें तू भाया है ।

अरातीनां मा तारीन्मा नस्तारिपुरभिमातयः ।  
अ २।७।४

अनुदार शत्रु हमारे आगे न बढ़ें । जो दुष्ट हैं वे आगे  
न बढ़ें ।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हान् पृष्टीरपि शृणीमसि ।  
अ २।७।५

दुष्ट मनुष्यके आँख और पीठ हम तोड़ देते हैं ।  
मा ते रिपन्नुपस चारः । अ २।१।२

मेरे अनुयायी बिनष्ट न हों ।  
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्घिडेन मयोभुजः ।  
विष्कंधं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ।  
अ २।४।४

देवीने दिये, सुखदायक जगिद मणिसे, शोषक रोगको  
तथा सब रोगश्रमियोंको हम दबा सकते हैं ।

अ एहा, यदि दूर दृष्टिग्यान् । अ २।५।४

भाग बढ, दो घोड़ोंको जोतकर चलो ।  
इन्द्रस्तुरापाणिमत्रो वृष यो जघान यतीर्न ।  
अ २।५।३

यान करनेवालोंर समान, त्वरासे हमला करनेवाला  
इन्द्र धरनेवाले शत्रुको मारता रहा ।

प्रतिदद यातुघानान् प्रति देव किमीदिनः ।  
११ दद यातुघान्य । अ १।२।२

यानना देनेवालोंको अडा दो । मनु भूषोंको अडा दो ।  
यातना देनेवाली छिबोंको भी अडा दो ।

अभीवर्तौ अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।  
राष्ट्रायमह्य बन्धवतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥  
अ. १।२९।४

अभीवर्तमणि शत्रुका पराभव करनेवाला और दुष्टोंको  
दूर करनेवाला है, राष्ट्रहितके लिये तथा शत्रुओंको पराभूत  
करनेके लिये वह मणि मेरे शरीरपर बांधो ।

मेम प्रापःपोरुपेयो यधो यः । अ १।३०।१

जो मनुष्यनाशक बाछ है वह इसके पास न आवे ।  
( अर्थात् यह न मरे )

असमृद्धा अघायव । अ १।२७।२

पापी लोग समृद्ध न हों ।  
आरेरेसावस्मदस्तु द्वेतिः । अ. १।२६।१

शस्त्र हमसे दूर रहे ।  
मा नो विदन् विध्याधिनो मो अभिव्याधिनो  
विदन् । अ १।१९।१

विशेष वेधनेवाले शत्रु हमें न प्राप्त करें । चारों ओरसे  
वेधनेवाले शत्रु हमारे पास न आवे ।

यो अथ सेम्यो यधोऽघायूनामुदीरते ।  
युवं तं मित्रावरुणा अस्मधावपतं परि ॥  
अ १।२०।२

जो आज सेनाके शूर पुरुषोंका बध पापी शत्रुओंसे हो  
रहा है, हे मित्र वरुण ! तुम उसको हमसे दूर कर ।

वि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा घच्छ पृतनयतः ।  
अ १।२१।२

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे शत्रुओंको मार, सेम्य हम-  
पर अश्वनेवालोंके डीर छित्तिमें पड़कर मरे ।

वि मनुमिन्द्र वृषहन् अमिप्रस्याभिदासत ।  
अ. १।२१।३

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे घात करनेवाले शत्रुके उत्साह  
हटा नाश कर ।

वरियो याधया यधम् । अ १।२१।४

शत्रुके शस्त्रको हमारेसे दूर कर ।  
देधीमनुष्येयधो ममामिप्रान् वि विधयत ।  
अ. १।१९।२

मनुष्योंसे पँके गये दिव्य बाण, मेरे शत्रुओंको बाँधे ।

यातुधानान् वि लापय । अ १।७।६

यातना देनेवालोंको रुलाओ ।

नीचे: पद्यन्तामधरे भयन्तु ये नः सूरि मघवान्  
पृतन्यान् । अ ३।१९।३

जो शत्रु हमारे धनवान् और विद्वान् पर सैन्य भेजते हैं  
वे नीचे गिरे और भयनत हों

पपामहमायुधा संस्याभ्येषां राष्ट्रं सुवीर वर्धयामि  
अ ३।१९।५

इनके आयुध मैं तीक्ष्ण करता हू तथा इनका राष्ट्र उत्तम  
वीरोंसे युक्त करके उन्नत करता हू ।

पृथग्घोषा उल्ललय. केतुमन्त उदीरताम् ।  
अ ३।१९।६

झंडे लेकर हमला करनेवाले वीरोंके घोष प्रथक् पृथक्  
ऊपर हटें ।

अवस्वृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।  
जयामित्रान् प्र प्रथस्व, जष्टेषा वरं वरं,  
मामीषां मोचि कश्चन । अ ३।१९।८

हे शानसे तेजस्वी बने शत्रु । तू छोटा जानेपर दूर जा,  
शत्रुओंको जीत लो, भागे बढ, शत्रुके वीरोंमेंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ  
वीरोंको मार डाल, इनमेंसे किसीको न छोड ।

असौ या सेना मरुतः परेपामसानैत्यभ्योजसा  
स्पर्धमाना । तां विभ्यत तमसापवतेन यथै-

पामन्यो अन्यं न जानात् । अ. ३।२।६

हे मरुती ! वह जो शत्रुकी सेना वेगसे स्पर्धा करती  
हुई हमारे ऊपर भारही है, उसको अपमत्त तमसाहसे  
वीथो जिससे उनमेंसे एक दूसरेको न जान सके ।

उग्रस्य मभ्योरुदिमं नयामि । अ १।१०।३

उग्र क्रोधसे इसको ऊपर मैं लेजाता हू ।  
सपत्ना अस्यधरे भयन्तु । अ १।१।२,५

शत्रु हमसे नीचे रहें । शत्रुका अध पात हो ।  
जहि पर्यां शततर्हम् । अ. १।१।४

इन दुष्टोंका सैकड़ों कष्ट देनेका साधन दूर कर, शत्रुको  
पानिप्त कर ।

पपामिन्द्रो यज्ञेणापि शीर्षाणि वृध्द्यतु ।  
अ १।१०।७

इन्द्र वज्रसे इन दुष्टोंके सिर काट दे ।  
मधीतु सर्वो यातुमानयमस्तीत्येव । अ १।१०।४

‘ सब यातना देनेवाले माकर बोलेंकी हम यहाँ हैं । ’  
दस्यो. हन्ता यभुविथ । अ १।७।३

तू दस्युका विनाशक है । ( दस्युका विनाश करना  
योग्य है )

वि रक्षो विमृषो जहि विवृत्रस्य हनू रुच ।  
अ १।२।३

रक्षसो, शत्रुओंको परामृत कर । घेरनेवाले शत्रुके  
जबड़े तोड ।

य. सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विपन् छपाति न. ।  
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् ।  
अ १।१९।९

जो सपत्न और जो असपत्न हैं, पर जो शप देकर हमें  
द्वेष करके कष्ट पहुंचाता है, सब देव उसका नाश करें ।  
मेरा आ-तरिक कवच ब्रह्मज्ञान है ।

शानरूप कवच जो पहनता है, उसका उत्तम रक्षण  
होता है ।

मा नो विद्द वृजिना द्वेष्या या । अ १।२०।१

जो द्वेष करनेवाले कुटिल हैं वे हमारे पाम न आवें ।  
त्रिष्वज्ज्वो अस्त् छरव पतन्तु ये अस्ता ये  
चास्याः । अय १।१९।२

जो फेंके गये हैं, और जो फेंके जानेवाले हैं वे बाण  
चारों धोर हमसे दूर जाकर गिरें ।

यत् आत्मानि तन्वां घोरमस्ति ।  
यद्वा फेदेषु प्रतिचक्षणे घा ।  
तत्सर्वं वाचाप हन्मो ययं । अ. १।१८।३

जो इसके शरीरमें, बुद्धिमें, केशोंमें, देवनेमें घुरा है,  
वस सबको हम वाणोंकी प्रेरणासे दूर करते हैं । ( वाणोंसे  
मूचना देकर उस दोषको दूर करते हैं । )

ददन्नप द्वयाधिनः यातुधानान् किमीदिन. ।  
अ. १।२।१

दुसुओं, यातना देनेवालों और जब क्या खाई ऐसे  
बोलनेवाले दुष्टोंकी भाषि जला देता है ।

प्रेतं — भागे बढो ।  
प्रस्फुरते — फुटती करो ।  
पृणतः गृहान् घटते — सगोप देनेवालोंके घर जालो ।  
अ. १।२०।५

अभिनुन्य सपत्नान् अभि यो नो अरातयः ।  
अभि पृतन्यन्त तिष्ठाभि यो नो दुरस्थति ॥

अ. १।२९।२

शत्रुओंको पराभूत करके, हमारे अंदर जो कंजूप हैं  
उनको दूर करके, सेनासे जो चढाई करता है और जो  
हमसे दुष्टवादा व्यवहार करता है, उन सबको पराभूत करो ।

विश्वया ह्यग्ने दुरिता तर । अ. २।६।५

सब पापवृत्तियोंको, पापियोंको दूर कर ।

स्वयुग्भिर्मर्मस्वेह महे रणाय । अ. २।५।४

अपनी योजनाओंसे तू यहां आतन्वित होकर रह और  
बड़े युद्धके लिये तैयार रह ।

ससहे शशून् । अ. २।५।३

शत्रुका पराभव करता हू ।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विषमः ।

अ. २।११।३

उत्परा चढाई कर जो अनेक। हम सबका द्वेष करता है ।

और जिसका हम सब द्वेष करते हैं ।

पृथ्वाभि तं कुलिशेन धृशं यो अस्माकं मन

हृद् द्विनस्ति । अ. २।१।३

जो हमारे हम मनको विगाड़ता है, उसको कुठारसे वृक्ष  
काटनेके समान बाटता हू ।

सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव । अ. २।६।३

हे अग्ने ! सायनोंका विनाशक हो तथा बैरियोंकी जीतने  
वाला हो ।

अग्नेयान्म्य ध्याज्या तान् विपूचो वि नाशय ।

अ. ३।१।५

अग्नि और वायुके वेगसे जैसा नाश होता है वैसा नाश  
शत्रुओंका चारों ओरसे करे ।

जदि प्रतीचो अनुज्य पराच्यः । अ. ३।१।४

समुक्त रहे, पीछेसे आनेवाले और आगेसेवाले शत्रुको  
बिखर करे ।

भर्मागृणन् घनयो नाधिना इमे, अग्निर्गोपां

दूतः प्रयेत्सु पिष्टान् । अ. ३।१।३

वे बलवान् बयानेवाले और काटते रहे हैं, इनका विद्वान्

अग्नि समान तेजाकी दूत चढाई करता हुआ आगे बड़े ।

अग्निर्मां शशून् प्रयेत्सु पिष्टान् अग्निदृष्टमिदा

ग्निमगाग्निम् । अ. ३।१।५

विद्वान् तेजस्वी बीर घातपात करनेवाले शत्रुको अलाता  
हुआ हमारे शत्रुओंपर हमला करे ।

इन वृत्तियोंमें विशेष महत्त्व रखनेवालों ये हैं—

स्वे गये जागृहि— अपने घरमें जाग्रत रह । अपने  
राष्ट्रमें जाग्रत रह ।

उग्रा घः सन्तु वाहवः— आपके बाहु बल हों ।

प्रेत— शत्रुपर हमला कर ।

जयत— विजयी हो ।

नश्यतः सदान्वः— दानवींका यहाँ नाश हो ।

समहमेपां राष्ट्रं स्वामि— इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी  
बनाता हू ।

पृथ्वाभि शशूणां वाहन— शत्रुओंके बाहुओंको  
काटता हू ।

उद्धर्भता वाजिगानि— इनके बल उत्तेजित हों ।

तीक्ष्णपयोऽवलधन्वो हत— तुम्हारे तीक्ष्ण बाणोंसे  
निबंल शत्रुवाले शत्रुको मारो ।

एवा तान् सर्गान् निर्भर्गिध— इन तरह उन सब  
शत्रुओंका नाश कर ।

सेनां मोहयामित्राणां— शत्रुकी सेनाको मोहित कर ।

तान् विपूचो विनाशय— शत्रुको चारों ओरसे  
विनष्ट कर ।

स चिचानि मोहयतु परेपां— वह शत्रुओंके चित्त  
मोहित करे ।

स सेनां मोहयतु परेपां— वह शत्रुकी सेनाको  
मोहित करे ।

अभि प्रेहि, निर्दह— आगे बढ़, शत्रुकी जला दो ।

अग्निं प्रेत, मृणल, सृष्ट— इमला करे, काठो और  
जीतले ।

भूतपतिर्निरजतु— भूतोंका पति दुर्वृत्तियोंको दूर करे ।

विपूच्येतु वृन्तती— काटती हुई सेना आगे बढ़े ।

आरे अदमा— पापर हमसे दूर रहे ।

अपेभू द्विपतो मन— द हृद्ग । शत्रुका मन बदल दे ।

मा नो विददमिमा— परामण हमारे पाम न जावे ।

विलपन्तु यातुघाना— यातना देनेवाले शत्रु रोते  
रहे ।

यातुघानस्य प्रजां जदि— यातना देनेवाकी प्रजाका  
पराजय कर ।



स हन्तु शत्रून् मामफान्— यह मेरे शत्रुओंका वध करे ।

अजैषं सर्वानाजोन्— सब युद्धोंमें मैं विजय प्राप्त करता हूँ ।

अद्वा अरार्ति— कृपणताको छोड़ो ।

अविद्ः स्योर्न— सुखमार्गको जाने ।

अभूः भद्रे सुकृतस्य लोके— कल्याणकारी पुण्य लोकमें रहो ।

अरातीर्नो मा तारीत्— कंजूम हमारे पास न बढें ।

मा नस्तारिपुरभिमातयः— शत्रु हमारे भागे न बढें ।

प्र चह— भागे बढ ।

याहि शूर— हे वीर ! भागे बढ ।

प्रतिदह यातुघानान्— याचना देनेवालोंको जला दो ।

मेमं प्रापःपौरुषेयो वधो यः— मनुष्यनाशक शस्त्र मेरे ऊपर न पड़े ।

असमृद्धा आघायय— पापी समृद्ध न हों ।

मा नो विद्न् विव्याधिनः— वैध करनेवाले शत्रु हमें न जानें ।

मो अभिव्याधिनो विद्न्— चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले शत्रु हमें न जाने ।

वि न इन्द्र मृधो जहि— हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको मार ।

नीचा यच्छ पृतन्यतः— सैन्यसे हमला करनेवालोंको हीन अवस्थामें पहुँचा दो ।

चरीषो यावया चधम्— शस्त्र हमसे दूर रख ।

इषको ममामित्रान् वि विध्वत— बाण में शत्रुओंको वीधे ।

यातुघानान् विलापय— याचना देनेवालोंको रुलाओ ।

एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि— इनके राष्ट्रको वीर बनाकर बढाता हूँ ।

जयामित्रान्— शत्रुपर विजय प्राप्त कर ।

अज्ञप्रां चरं चरं— शत्रुवीरोंके प्रमुखोंको मार ।

माभीषां मोचि कश्चन— शत्रुओंमेंसे किसीको न छोड़ ।

विध्वत तमसापद्रतेन— शत्रुको अपद्रत तमसाखसे वीधो ।

सपाना अस्सद्धरे भवन्तु— शत्रु हमसे नीचे रहें ।

दस्योर्हन्ता वभूविध— शत्रुका विनाशक बन ।

वि रक्षो विमृधो जहि— राक्षसी और हिसकोंका पराभव कर ।

मा नो विद्द् पृजिना द्वेष्या या— बुदबल और पापी मुझे न जाने ।

दहन्नप इयाधिनः— दुसुखोंको मैं जलाता हूँ ।

प्रेतं— हमला करो ।

प्रस्फुरतं— फुरती बढाओ ।

पृणतः गृद्धान् घहतं— संतोष देनेवालोंके घरोंके पास जाओ ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठ— सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर ।

विश्व्या दुरिता तर— सब पापोंको तैर जा ।

मत्स्वेह महे रणाय— बड़े युद्धके लिये जानन्दसे तैयार रह ।

ससहे शत्रून्— शत्रुका पराभव करता हूँ ।

अभिमातिजिद्भव— शत्रुका पराभव करनेवाला हो ।

शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्— विद्वान् शत्रुपर चढाई करे ।

इस तरह इन शक्तियोंमें अनेक वाक्य मजबूत बोलने योग्य हैं । इस तरहके वचन तब बोलने होते हैं जब शत्रुके विरुद्ध अपने लोगोंको, अपने वीरोंको डराना या तैयार करना होता है । ईश्वर मक्तिके वेदवचन उपासनाके समय बोलने होते हैं और ये वीरता बढानेवाले वचन वीरता बढानेके समय उच्चार करने होते हैं । विवेकी पाठक इसको अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

शत्रुपराजय करनेके लिये अपने राष्ट्रको तैयार रखनेके समय ये वचन बड़े उपयोगी हैं । राष्ट्रकी संजीवित करनेके लिये राष्ट्रमें एकता प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता होती है । वह एकताका विषय हम देखिये—

### एकता

एकता बढानेका उद्देश्य वेद इस तरह काता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अ. ३।३.०११

सहृदयता और उत्तम मनवाला होना और विद्वेष न करना ये तुम्हारे अन्दर होने में कठिन हैं ।

अन्यो अन्यमभिर्हृतं वर्सं जातमिवाध्याय ।

अ. ३।३०।१

एक दूसरे पर ऐसा प्रेम करो जैसा नवजात बच्चेपर गौ प्रेम करती है ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भयतु संमनाः ।

अ. ३।३०।२

पिताके अनुकूलव्रत धारण करनेवाला पुत्र हो और वह मातासे समान मनवाला हो ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।

अ. ३।३०।२

खी पतिके साथ मधुर और शान्त भाषण करे ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

अ. ३।३०।३

भाई भाईसे द्वेष न करे, बहन बहनसे द्वेष न करे ।

सम्यग्ब्रह्मः समता भूत्या वाचं वदत भद्रया

अ. ३।३०।३

मिलजुलकर एक व्रतपालन करनेवाले होकर कल्याण करनेवाला भाषण करो ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः

सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्यै वदतु घदन्त

पत सध्रीचीनान्वः संमनसस्त्रुणोमि ॥

अ. ३।३०।५

वृद्धोंका समान करनेवाले, और उत्तम विचार करनेवाले बनो, सिद्धिदक पालन करनेवाले, एक धुराके नीचे चलने-वाले होकर आपसमें विरोध न करो, परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाला होकर रहो ।

समानो व्रया सह यो अन्नभागः समाने योवद्रे

सह यो युनजिमि । अ. ३।३०।६

पानी पीनेका भावका स्थान एक हो, भापका अन्नभाग एक हो, एक जोतेके अन्दर साथ-साथ भापको जोतवा है ।

सम्यञ्चो भद्रि सपर्यतरा नाभिभियाभितः ।

अ. ३।३०।६

मधु मिलकर अग्निही पूजा करो और चक्री नाभिके चारों ओर जैसे आगे होते हैं वैसे तुम परस्पर जुड़कर रहो ।

सध्रीचीनाचः संमनसस्त्रुणोम्येक इनुष्टान्त्सं-  
यननेन सर्वान् । अ. ३।३०।७

परस्पर प्रेम भावका बर्ताव करनेवाले, साथ साथ पुत्र-पार्थ करनेवाले, उत्तम मनवाले और एक नेताकी आज्ञामें कार्य करनेवाले मैं तुमको बनावा हूँ ।

देवा इवामृतं रक्षमाणा सायं प्रातः सौमनसो  
वो अस्तु । अ. ३।३०।७

अमृतका रक्षण करनेवाले देव जैसे प्रेमसे रहते हैं वैसे परस्पर प्रेम भावके व्यवहारमें सधेरे और शामको होवे ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकृतीर्नमामसि ।

अ. ३।३०।५

तुम्हारे मनोंको एक करो, तुम्हारे व्रत एक हों, तुम्हारे संकल्पोंको एक भावसे युक्त कराता हूँ ।

मम व्रतेषु हृदयानि यः कृणोमि

मम यातमनुवर्तमानं पत । अ. ३।३०।६

मेरे व्रतोंमें तुम्हारे हृदय सलज्ज हों ऐसा मैं करता हूँ ।

मेरे चाल-चलनके अनुकूल तुम होकर चलो ।

अ-दार-सूद भयतु । अ. १।२०।१

आपसमें फूट उरपन्न करनेवाला कोई न हो ।

अहं गुण्यामि मनसा मनांसि

मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । अ. ३।३०।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको लेता हूँ । मेरे चित्तके साथ अपने चित्तोंको चलाओ ।

यथा नः सर्वं ह्यजन-संगतर्यां सुमना अलत्

दानकामश्च नो भुवत् ॥ अ. ३।३०।६

हमारे सपूर्ण लोग सगतिमें उत्तम मनवाले हों और दान देनेकी भी इच्छा करें ।

स चेन्नयायो अश्विना, कामिना स च वक्षथः ।

सं चां भगासो अगमत, सं चित्तानि, समुव्रता ॥

अ. ३।३०।२

हे परस्पर कामना करनेवाले अश्विदेवो ! मिलकर चलो, मिलकर बढो, ऐश्वर्यको मिलकर प्राप्त करो, तुम्हारे चित्त एक हो, तुम्हारे व्रत एक हों ।

शियाभिष्टे हृदयं तर्पणाम्यनमीवो मोदिप्राप्ताः

सुयर्थाः । सयासिनी पियतां मन्थमेत अश्विनी

रूपं परिधाय मायाम् ॥ अ. ३।३०।६

कल्याणकारिणी विधाओं द्वारा तेरे हृदयको तृप्त करता हूँ । बीरोग और तेजस्वी होकर आनन्दमें रहो । साथ रहकर आधिनौके रूपको कर्मकी कुशलताकी प्राप्त होकर इस रसको पीओ ।

इस रीतिसे सबकी एकता करनेका उपदेश वेद करता है । घरकी तथा परिवारकी एकता करनेके लिये प्रथम कहा है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विषन्— भाई-भाईसे द्वेष न करे । यह आदेश यदि भाई-भाई मनमें रखते, तो कौरव पांडवोंकी एकता होती और आपसका कलह न होता और १८ अश्वीहिणी सेनाका नाश न होता । और भारत देश क्षात्र तेजसे हीन न होता ।

### सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत

आरा नाभिमिवाभितः । अ. ३।३०।३

जैसे चकके बारे नाभिके चारों ओर रहते हैं, उस तरह बीचमें अग्नि रहे और चारों ओर बैठकर हवन करो यह सामुदायिक उपासना कही है जो एकता बढ़ानेवाली थी । सामुदायिक संस्था, सामुदायिक हवन होनेसे समुदायकी एकता होती थी । इस स्थानपर आज वैयक्तिक संस्था हो गयी है जो एक दूसरेको पृथक् करती है ।

अपनेमें 'अदारस्तु भवतु' आपसकी फूट बढ़ाने-बाधा कोई न रहे । परंतु आपसकी एकता सब बचावें और सब सुसंगठित हों । इस कारण कहा है—

अहं शृण्णामि मनसा मनांसि । अ. ३।८।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनकी एकत्रित करके लेगा हूँ अर्थात् मैं अपना मन ऐसा बनाता हूँ कि जो सबके मनकी आकर्षित करे और सबके विचार एक प्रकारसे बनावे और सबको संगठित करे । इस रीतिसे राष्ट्रके सब लोगोंकी संगठित किया जाय और राष्ट्रका बल बढ़ाया जाय ।

इस तरह संघटनाके स्वक वे मंत्र हैं । पाठक इनका विचार करें और आपसमें सुसंघटीत होकर अपने राष्ट्रका बल बढ़ावें इससे राष्ट्रका अस्तुदय होगा ।

### अभ्युदय

इमा याः पञ्च मदिशो मानथीः पञ्च शृष्टयः ।

शृष्टे शपं नदीरिवेद रताति समायदन् ॥

अ. ३।१०।३

जो ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली मानवोंकी पांच जातियाँ हैं, वे समृद्धिको प्राप्त हों, जिस तरह वृष्टिसे नदी बढती है ।

जैसी वृष्टि होनेसे नदी बढती है उस तरह सब प्रजा-जनकी अभ्युदय हो । मनुष्योंकी सब प्रकारकी ऐदिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो, सब राष्ट्र एकतासे अपना अस्तु-दय करने लगेगा तो ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है । एकता मूलक सब उन्नति है ।

राष्ट्रकी एकता होनेके लिये राष्ट्रमें यज्ञ भावना हीनी चाहिये । सजनोंका सरकार, राष्ट्रकी एकता अर्थात् संघटना काना और दानका भाव ये गुण यज्ञमें हैं । इन गुणोंसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है ।

### यज्ञ

प्रस्र यज्ञं च यर्धय । अ. ३।२०।५

ज्ञान और प्रशस्तता कर्मको बढ़ाओ ।

इमें यज्ञं विततं विश्व-कर्मणा देवा यन्तु सुमन-

मस्यमानाः ॥ अ. ३।२५।५

विश्वके रचयिताने यह यज्ञ फैलाया है । उत्तम मनसे सब देव इस यज्ञमें भावें ।

उताद्विस्वन्तं दापयतु प्रजानन् । अ. ३।२०।८

दान न देनेवालेको जानकर दान देनेकी प्रेरणा कर ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो

द्विपदाम् । निष्क्रीतः स यस्मिं भागमेतु,

रायस्पोषा यजमानं स्वचन्ताम् ॥ अ. ३।३५।

जो चतुष्पाद पशुओंका तथा द्विशर्शो-मनुष्योंका स्वामी है, वह यज्ञके भागको प्राप्त हो, उसकी उपासना हो, धन और पोषण यजमानको मिले ।

विद्वानोंका स्कार करना चाहिये, आपसकी उत्तम संघटना हीनी चाहिये और जो हीन होने इनकी रीतना दूर करनेके लिये दान देना चाहिये । दानमें विद्यादान, बलका संवर्धन, धनका दान और कर्मसक्रिया आदि यह चतुर्विध महाद्वय होना चाहिये । यह जहाँ होगा वहाँ यज्ञ होगा । और इनमें राष्ट्रका परम उत्कर्ष होगा ।

### मधुरता

मधुरतासे एकता होती है । इन विषयमें वेदमंत्रोंका

एत आदेश यह है—

मघोरसि मघुतरो मघुधान्मघुमत्तरः ।  
 अ. ११३४४

मं मघसे भी अधिक मीठा हू, मघुर पदार्थसे भी अधिक मघुर हूँ ।

याचा यदामि मधुमद् भूयासं मघुसंदशः ।  
 अ. ११३४३

मं बाणोसे मीठा भावण करुणा और मं मघुरताकी मूर्ति बनूंगा ।

मधुमन्मे निष्प्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।  
 अ. ११३४२

मेरा जाना और जाना मीठा हो ।  
 जिह्या धम्रे मधु मे जिह्यामूले मधूलकम् ।  
 अ. ११३४१

मेरी जिह्याके मूलमें मघुरता रहे और जिह्याके अमभागमें मीठास रहें ।

ऐसी मीठास होनेसे शत्रुमें प्रेम बढता है और प्रेमसे सगठना होती है । मित्रता बढती है । परस्पर सहायता करनेकी दृष्टा बढती है । हमसे सबका मिलकर कल्याण होगा है ।

**मित्रता**

यः सुहार्ति तेन नः सहः । अ. २।१०।५  
 जो दत्तम हृदयवाळा है उसके साथ हमारी मित्रता हो ।

सग्रासायसभ्यमस्तु रातिः । अ. १।२।१२  
 दासरूपी मित्र हमारे साथ रहें ।

मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्य । अ. २।१।५  
 मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर ।

दोषं ते धायावृथिवी उभे स्तम् । अ. २।१।११  
 येरे लिवे ये दोनों तु और वृथिवी लोग कल्याण करने-  
 वाले हो ।

दादमन्मद् यायव दिष्टुं । अथर्व १।२।३  
 दिष्टुं शक्यं अस्मान् यायव- दासके तेजस्वी बालको  
 हमसे दूर कर ( दासका बाल हव्यर न करि । )

पयोपारंति नि रमय । अथर्व १।१।२  
 हे वसुधोद ध्व-मिन् । मुझे आनन्द पुष्ट कर ।

ययमस्यैवपि ययवामस्यपायोः परित्यग्मिनः ।  
 अ. १।१०।१३

पायो और दुष्टोके आंख हम तक देते हैं ।  
 पायो और दुष्ट दूर हों और उत्तम हृदयसे सबकी एकता  
 बढे और एकतासे बल बढे ।

**बल**

अद्मानं तन्वं कृधि । अथर्व १।२।२  
 शरीरको पथर जैसा सुदृढ कर ।

पह्यद्मानमा तिष्ठ, अद्मान भवतु ते तनूः ।  
 अ. २।१३।४

भा, इस शिलापर चढ़, तेरा शरीर पथर जैसा सुदृढ  
 बने ।

याचस्पतिः तेषां तन्वः यत्ना मे अद्य दधातु ॥  
 अथर्व १।१।१

वाचस्पति इनके शरीरके बलोंको मुझमें आज धारण  
 करे । ( विश्वमें जो पदार्थ हैं इनके बल मुझे प्राप्त हों और  
 मैं उनसे बलवान् बनकर इस विश्वमें विश्वसेवाका कार्य  
 करता रहूँ । )

वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥  
 अथर्व १।२।२

वीडुः चरीयः धरातीः द्वेषांसि अपाकृधि—  
 हमारे शरीर बलवान् और श्रेष्ठ बनें । दासुनों और द्वेष  
 करनेवालोंको दूर कर ।

ओजोऽस्योजो मे दाः । सहोऽसि सहो मे दाः ।  
 यलमसि यलं मे दाः । आयुरसि आयुर्मे  
 दाः । श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः । चक्षुरसि  
 चक्षुर्मे दाः । परिपाणमसि परिपाणं मे दाः ।  
 अ. २।१।०।१-७

सामर्थ्य, दासुका पराभव करनेकी शक्ति, बल, आयु,  
 ज्ञान, श्रोत्र, संरक्षण यह तुम्हारा रूप है अथ. १५ मुझमें ये  
 गुण हैं ।

ध्वस्योऽसि, प्रतिसरोऽसि, प्रत्यभिचरणोऽसि ।  
 अ. २।१।१२

१५ ( आत्मा ) यतिशक्ति है, १५ आगे बढनेवाला है, १५  
 दुष्टवाकी दूर करनेवाळा है ।

सुकोऽसि, आजोऽसि, स्वरसि, उयोतिरसि ।  
 अ. २।१।१५  
 १५ सुदृढ तथा शीर्षवान् है, १५ तेजस्वी है, १५ आत्मा-  
 शक्ति है, १५ उचोति है ।

प्र च वर्धयेमम् । अ. २।६।२

इसको विशेष ऊंचा कर ।

सबका बल, तेज, ज्योति, बौर्य, बडे और सब छोग तेजस्वी बनें और सबका सामर्थ्य बडे ।

### वीरता

प्रजां त्वष्टरधि निघेह्यस्मे । अ. २।२९।२

हे त्वष्टा ! इसको हुप्रजा दे ।

आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्याः ।

अ. ३।२३।२

तेरे लिये दशवें मासमें जन्मनेवाला वीर पुत्र होवे ।

अथास्माकं सह वीरं रयिं दा' । अ. २।१।५

हमें वीरोंके साथ रहनेवाला धन दे ।

सुप्रजसः सुधीरा चयं स्याम पतयो रयीणाम् ।

अ. ३।१०।५

हम उत्तम प्रजावाले तथा उत्तम वीरोंसे युक्त होकर धनके स्वामी बनें । -

तनूयानः सयोनिर्यारो धीरेण मया । अ. ३।५।८

तू सजातीय वीर मुझ वीरके साथ रहकर धीरेण रक्षक है ।

वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमया अभयंकरः ।

अ. १।२।१।१

बलवान्, शान्ति करनेवाला, सोमरस पीनेवाला वाग्नु-नाशक वीर हमारा भगुवा बने ।

### ज्ञान

घोरा ऋषयो, नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेयां मन-

सश्च सस्यम् । अ. २।३।५।४

'एषि बडे तेजस्वी हैं, उनको हमारा प्रणाम प्राप्त हो, इनकी भाष्य और मन सारवस्वरूप रहते हैं ।

येन देशा न विपन्ति नो च विद्विपते मिथः ।

तारुण्यो ब्रह्म घो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

अ. ३।२०।४

जिससे जानो आपसमें झगडते नहीं और आपसमें द्वेष भी नहीं करते, वह अष्ट ज्ञान आपके घरके पुरुषोंके लिये भे भे करता है ।

ब्रह्माणस्ते यदासः सन्तु, माग्ये । अ. २।१।२

जानी ही तेरे पासके भागी बनें, न दूजरे ।

मयि एव अस्तु मयि ध्रुतम् । अथर्व० १।१।२;३

पडा हुआ, सुना हुआ ज्ञान मेरे अन्दर स्थिर रहे । (प्रति किया ज्ञान भूला न जाय । )

सं ध्रुतेन गमेमहि । मा ध्रुतेन विराधिपि ॥

अथर्व० १।१।४

हम सब ज्ञानसे युक्त हों । हम कभी ज्ञानसे विद्युक्त न हों ।

इमं वर्धयता गिरः । अ. १।१।५।२

वाणियों इसका गुणवर्धन करे । गुणगान करे ।

अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि । अ. २।१०।१

ज्ञानसे मैं तुझे निष्पाप करता हूँ ।

उपासान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् । अथर्व० १।१।४

जानी हमें सुजायें ( और उपदेश करे, हमें मार्ग बतावे । )

सूर्यं चक्षुषा मा पाहि । अ. २।१।६।३

हे सूर्य ! आँखसे मेरी सुरक्षा कर ।

विहृष्टि, शक्र विया इद्धि आ नः । अ. २।५।४

उत्तम राज्यशासन कर, हे इन्द्र ! हमारे पास बुद्धिकी योजनासे आओ ।

यहि देवेन मनसा सह । अथर्व १।१।२

दिग्घ्न मनके साथ इषर ( मेरे समीप ) आ । ( मनमें दिग्घ्न शक्ति है, उस दिग्घ्न शक्तिसे प्रभावित हुए मनसे यही आओ । मनमें दिग्घ्न शक्ति धारण करके, जहाँ जाना हो, जाना चाहिये । )

व्यापस्तृष्णयासरन् । अ. ३।३।१।३

जल प्यासे दूर रहना है ।

इमामग्रे शरणिं मीमृषो नः । अ. ३।१।५।४

हे भग्रे ! मेरी इस मूलकी क्षमा करो ।

तर्पूय तस्मै वृजिनानि सन्तु प्रार्थयिषं पार-

मिसंतपाति । अ. २।१।२।६

ज्ञानका द्वेष करनेवाले उस दुष्टको सब कार्य ताप-

दायक हों । उस ज्ञानके द्वेषको भाँकान संतप्त करे ।

सूर्यमृतं तमसो प्राप्ता अधिदेवा मुद्रयन्तो अग्र-

जधिरेणसः । अ. २।१।०।८

देवोंने अंधकारकी पद्धतसे तथा पावते हुए न बरके

सत्य स्वरूपी सूर्यको प्रकट किया है ।

प्रापेयं सर्वा आकृतीर्मनसा हृदयेन च ।

अ ३।२०।९

मनसे और हृदयसे सब मन्त्रोंको प्राप्त कर सकू ।

ग्रह वा यो निन्दिपत् क्रियमाणम् ।

अ ३।१२।६

जो हमारे ज्ञानकी निन्दा करता है । ( वह पलापको प्राप्त हो )

### तेजस्विता

सह वर्चसोदिहि । अ ३।१।१

तेजके साथ बढ्यको प्राप्त हो ।

तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विन वृणु ॥

अ ३।२२।३

हे अग्ने ! तस तेजसे मुझे आज तेजस्वी कर ।

देवासा विश्वघायसस्ते माजन्तु वर्चसा ।

अ ३।२२।२

सबका धारण करनेवाले देव मुझे तेजसे तेजस्वी करें ।

देवा इम उत्तरासिन् ज्योतिषि धारयन्तु ।

अ १।९।१

माणवायु मय औरसे मुझे घरे और खड़ा मुझे पुष्टि देवे ।

इष्टापूर्तमवतु नः । अ २।१२।४

इष्ट कर्म तथा पूर्त कर्म हमारी रक्षा करें । ( इच्छापूर्वक क्रिया कर्म इष्ट और अपूर्णको पूर्ण करनेका कर्म पूर्त है । )

### धन

त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।

अ ३।२०।५

हे देव ! तू दान देनेवालेके लिये दानके अर्थ धनको प्रेरित करो ।

ये पन्थानो वहवो देवयाना अन्तरा छावा पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुपन्तां पयसा घृतेन

यया व्रीत्वा धनमाहराणि ॥ अ ३।१।५।२

जो सज्जनोंके जाने मानेके बहुतसे मार्ग छावा पृथिवीके बीचमें चल रहे हैं, वे मुझे घी और दूधसे तृप्त करें ।

जिनसे चलकर ऋषिऋष्य करके मैं धनको प्राप्त करू ।

यमघ्नानमगाम दूरम् ।

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण

फट्तिनं मा वृणोतु । अ ३।१।५।४

मैं दूर मार्गपर जाया हू । ऋषिऋष्य हमें हितकारी

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्ष-  
मापो विभरद्विरण्यम् । अ. १।३।५।२

इन्द्रके समान हम इंद्रियोंको धारण करते हैं जो दक्ष-  
वासि सुवर्ण धारण करता है ( उसमें उत्तम इंद्रिय शक्ति  
रहती है । )

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः

प्रथमजं ह्येतत् । अ. १।३।५।२

इस सुवर्णको राक्षस और पिशाच ( सूक्ष्मरोग कृमि )  
वहीं सह सकते । क्योंकि यह देवोंका पहिला सामर्थ्य है ।

तं जानन्नन्न आरोहाद्या नो वर्धया रयिम् ।

अ. ३।२०।१

हे भो ! उस मार्गको जानकर ऊपर चढ़ और हमो  
घन बना दो ।

नुदधरतिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो घनदा

अस्तु मध्यम् । अ. ३।१।५।१

मार्गपर लटनेवाले, बँहते रहनेवाले शत्रुको दूर करके, वह  
ईश्वर मुझे घन देनेवाला होवे ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्मगं प्र नृभिर्नृवन्तः

स्याम । अ. ३।१।६।३

हे भग ! गौर्को और ऊधोंके साथ हमारी संतान पृथ्वि  
कर । हम ऊधे मानवोंके साथ रहकर मानवोंसे युक्त हों ।

तं त्वा भग सस्य हज्जोदधीमि स नो भग पुर-

एता भवेद् । अ. ३।१।६।५

हे भगवान् प्रभो ! तुमको मैं सब प्रकारसे भजता हूँ ।  
पह लू हमारा जगुवा हो ।

मयि पुण्यत यद्भुत्तु । अ. ३।१।५।२

हे गौर्को ! जो घन है उससे मेरे साथ गुम हट-पुट  
बनो ।

सधासस्यं सहवीरं रयिं द्याः । अ. १।१।२।५

हमें वीर पुत्रोंके साथ धन दो ।

रयिं देयीं दधातु मे । अ. ३।२०।३

देवी मुझे धन देने ।

और वह हमारा जगुवा बने । ( इन्द्र-शत्रुका विदारण  
करनेवाला )

यावदाशे ब्रह्मणा चन्द्रमान इमां धियं शतसे-  
याय देवीम् । अ. ३।१।५।३

जिससे इस दिव्य बुद्धिका ज्ञान द्वारा सम्मान करता  
हूना मैं सैकड़ों सिद्धियोंको प्राप्त करने योग्य होऊँ ।

श्रुतं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । अ. ३।१।५।४

हमारा चालचलन और बयान हमें कामदायी होवे ।  
भग प्रणेत्तमंगं सत्यराघो भगोमो धियमुदधा-

ददन्नः । अ. ३।१।६।३

हे भग, हे बडे नेता, सत्य सिद्धि देनेवाले प्रभो ! इस  
बुद्धिको देकर हमारा रक्षण कर ।

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेन घयं भगवन्तः

स्याम । अ. ३।१।६।५

भागवान् भगदेव मेरे साथ रहे, वसके साथ रहनेसे  
हम भागवान् हों ।

भगस्य नावमारोह, पूर्णामनुपदस्वतीम् ।

तपोपप्रतारय, यो घरः प्रतिकाम्यः ॥ अ. २।३।६।५

पूर्ण तथा जट्ट देवर्षीकी नौकापर चढ़, हम नौकासे  
उसके पास जा जो वर तैरी कामनाके योग्य हो ।

परि मां, परि मे प्रजां परिणः पादि यद्दन्नम् ।

अ. २।०।५

मेरी रक्षा कर, मेरी प्रजाकी रक्षा कर, हमारी धनकी  
रक्षा कर ।

उद्य निष्ठ मदते सौभगाय । अ. २।१।६

बडे सौभाग्यसे त्विमे ऊँचा होकर रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः । अ. १।१।५।२

हममें पर्वत धन रह ।

तास्तु त्वान्तर्जरस्या दधामि, प्र यद्धम पतु  
निर्गतिः परार्चैः । अ. २१०-१५  
तुलसी वृद्धावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षय रोग तथा  
अन्य सब कष्ट तुलसी दूर चले जाय ।  
अग्नी रक्षीद्दाम्नीच्यत्ततः । अ. ११२८१  
आग्नि राक्षसीका नाश करके रोगीको दूर करनेवाला है ।  
( रक्षः- रोगकृमि )

अमुस्यमुद्यततां ह्यपोतो हरिमा च ते ।  
गौराहितस्य वर्णो न तेन त्वा परिदुभसि ॥  
अ. ११२२११  
तुम्हारा हृद्यविकार तथा कामिला या पीलापन सुयो-  
दके साथ जानेवाले छाल किरणोंके छाल वर्णसे तुझे चारों  
ओर घेर कर मैं दूर करवा हूँ ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशयत् पूषत् ।  
अ. ११२३१२  
इस शरीरसे कुछ व सकेदु धरने दूर कर ।  
अस्थिजस्य किलासस्य तनूञ्जरय च यत्त्वचि ।  
दूषया ह्यतस्य प्रलम्बा लक्ष्म श्वेतमनीनशाम् ।  
अ. ११२३१७

दोषके कारण त्वपावर उत्पन्न हुए, अस्थिसे तथा शरीरसे  
अपक्व हुए, दुर्लक्ष्य ओ रत्वावर चिन्ह है उसको हम ज्ञानसे  
विनष्ट करते हैं ।

दोष्मक तोरुभ पुनर्थो यन्तु दातवः पुनर्दतिः  
किमीदिनः । यस्य स्य तमस, यो यः प्राद्वै-  
त्तमस्य, स्या मांत्सान्यत्त ॥ अ. २१४२११  
हे ब्रह्म करनेवाले शस्त्र ! तुम्हारे वाक्यान् देनेवाले शस्त्र,  
सया है त्याग लोगों ! तुम जिनके हो इसको व्यापी, त्रिगुहनि  
गुह्ये येमा दे बनको व्यापी, अपने ही मांन व्यापी । ( हम  
सुरक्षित रहें । )

निरितेनां आवेशाय कथयान् जीवितपोपनाम् ।

हृद्यमहृद्यमहृद्यमथो कुक्कुमवृद्धम । अलगण्डुम्  
तसर्वाञ्जलुनाम्किमीन्वचसा जम्भयामसि ॥  
अ. २१३११२

द्वीखनेवाले, व द्नीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूँ ।  
रंगनेवाले कृमियोंको मैं विनष्ट करता हूँ । बिलों पर रहने-  
वाले सब कृमियोंको मचासे मैं नष्ट करता हूँ ।

निःशालां धृष्णुं धिषणमेकवाचां विघारवाम् ।  
सर्वांश्चण्डस्य नन्दयो नाशयामः सदान्याः ॥  
अ. २१५११३

शादार नदीना, भयभीत होना, एकमपनी निश्चयानक  
सुदिका नाश कराना, प्रोचको सब सवासे, इत्येववृत्तियों  
आदिका हम नाश करते हैं ।

प्रादिर्जमाह यद्येतदेनं तस्या इन्द्रासी प्रमुमुक-  
सेनम् । अ. २११११३

यदि जकदनेवाले रोगने तुलसीके पकट रखा हो, तो उस  
पीकासे इन्द्र भीर मन्त्रि इसको चुझासे ।

आ त्वा स्यो विशतां वर्णः परा शुक्रानि पातय ।  
अ. २१२३१२

तुम्हारे शरीरका निरक्षण तुम्हें श्राप हो भीर चेत अपने  
दूर हों ।

अमुपया यद्धमात् सुरितादवद्याद् मुदः पान्नाद्  
प्राट्याश्वोत्सुकया । अ. २११०१६

क्षयरोग, पाप, निष्कर्म, मोहियोंके पाप भीर उबदने-  
वाले रोग आदिमें मैं तुम्हें गुलाम हूँ ।

दूष्या भृषिरसि, हेत्या देतिरसि, मेग्या मेनिरसि ।  
अ. २११११३

दोषको दूर करनेवाला, हविषाका हविषा, बज्रका  
बज्र हूँ ( आत्मा ) है ।



नो वधंया रयिं— हमारा धन बढाओ ।  
ईशानो धनदा अस्तु मह्यं— परमेश्वर मुझे धन  
देनेवाला हो ।

मयि पुप्यतु यद्वसु— जो धन दे वह मेरे पास बढता  
रहे ।

अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दा— हमें वीर पुत्रोंसहित  
धन दो ।

रयिं देवी दद्यातु मे— देवी मुझे धन देवे ।

रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ— धन और वीर पुत्र  
हमें दो ।

ययं भगवन्तः स्याम— हम धनवान् हों ।

भगस्य नावमारोह— ऐश्वर्यकी नौका पर चढ ।

परिणः पाहि यज्जनम्— हमारे धनका संरक्षण कर ।

उद्य तिष्ठ महते सौभाग्य— बड़े सौभाग्यके लिये  
उठकर खड़ा रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः— इसके पास धन रहे ।

ऐसे वचन हैं जो मनमें रखने योग्य होते हैं । इनमेंसे  
कोई एक वचन मनमें १०१२० बार विचारपूर्वक रखिये ।  
ऐसा करनेसे धनका महार रपानमें आ जायगा और धन  
पान रहनेसे कैसा सुख होगा, इसका भी पता लग जायगा ।

### आरोग्य

तेना ते तम्ये जं करं, वृधिर्यां ते निषेचनं

यदिष्टे अस्तु यादिति । अमरं ११३।१-५

हममें तेरे जगिरका बढवाण करना हूँ, वृधिवीचर तेरा  
पुत्रमें रहना हो । तेरे जगिरमें मरु दोष दूर हों ।

अग्वांर्यं दीर्घायमघो पाँर्यं कृमीन् ।

अपरकयं व्यर्ष्यर्त्तं किमीन् ययसा जग्मयामसि ॥

उद्यन्नादित्यः कृमीन्हन्तु, निम्नोचन्हन्तु रादिमभिः ।

ये अन्तः क्रिमयो गयि ॥ अ. २।२।१

उदय होनेवाला सूर्य रोगकृमियोंका नाश करे, अस्त होने-  
वाला सूर्य किरणोंसे कृमियोंका नाश करे जो कृमि भूमि  
पर हैं ।

विश्वरूपं चतुरक्षं किमि सारंगमज्जुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥

अ. २।२।२

अनेक रूपोंवाले, चार आंखवाले, रंगनेवाले, श्वेत-रंग-  
वाले ऐसे अनेक प्रकारके कृमि होते हैं, उनके पीठ और  
सिर मैं सोढता हूँ ।

अत्रिवद्वः क्रिमयो हग्नि कण्ववज्जमदमियत् ।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनप्यहं कृमीन् ॥

अ. २।२।३

अग्नि, कण्व, जमदग्निके समान मैं कृमियोंका नाश करता  
हूँ । अगस्त्यकी विधासे मैं कृमियोंको कुचलता हूँ ।

हतो राजा कृमीणां उतेपां स्वपतिर्हतः ।

हतो हनमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥

अ. २।२।४

कृमियोंका राजा मारा गया, इनका स्थानपति मारा  
गया है । कृमियोंका माता, बहिन और माई मारा गया है ।

हतासौ अस्य चेसासौ हुनासः परिवेशसः ।

अघो ये क्षुत्तुका इय सर्वे ते कृमयो हुताः ॥

अ. २।२।५

हम कृमिके परिचारक मारे गये, इसके सेवक वीसे गये,  
जो क्षुत्तुक कृमि हैं वे सब मारे गये हैं ।

प्र ते शृणामि शृणो यार्थ्यां यितुदायमे ।

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि, प्र यक्ष्म पत्तु  
निर्गतिः पराचैः । अ. २।१०।५

तुलसी वृद्धावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षय रोग तथा  
अथ सय कष्ट तुलसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोहामीयचातनः । अ. १।२८।१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है ।

( रक्षः- रोगक्षि )

अनुसूर्यमुदयतो ह्युद्योतो हरिमा च ते ।

गौरोदितस्य वर्णैः तैः त्वा परिदध्मसि ॥

अ. १।२२।१

सुहृदा हृदयविकार तथा कानिला या पीलावन र्वा-  
दपके साथ आनेवाले लाल किरणोंके लाल वर्णसे तुमसे धारों  
भीर बेर कर मैं दूर करता हूँ ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशयाम् पृषत् ।

अ. १।२३।१

हस धारीसे कुछ व सफेद धरने दूर कर ।

अद्विजस्य किलासस्य तनुजस्य च यत्त्वचि ।

दूष्या कृतस्य प्रहाणा लक्ष्म श्वेतमनीमशाम् ।

अ. १।२३।४

दोषके कारण रवधापर दरप हूप, अस्थिसे तथा धारीसे  
बलप हूप, कुछका जो रवधापर बिन्द है उसको हम जानसे  
विनाश करते हैं ।

शेरमक शेरथ पुनर्यो यन्तु यातयः पुनर्हतिः

किमीदिनः । यस्य स्य तमसः, यो यः प्राहै-

त्तमसः, सा मांसायुच ॥ अ. २।२४।१

हे सच करनेवाले राज ! तुमसे वातना देनेवाले दण्ड,  
तथा हे खाऊ छोणों। तुम शिकके हो इसको छाओ, शिकहोंने  
तुम्हें भेजा है हमको लामो, अपने ही मांस खाओ । ( हम  
सुखित रहें । )

गिरिमेनां आद्येनाय कण्ठान् जीवितयोपनाम् ।

अ. २।२५।४

हम बीवितका नाश करनेवाले, पीडा देनेवाले क्षमियोंको  
पहाडपर पहुँचाओ ( वे रोगक्षि हमें कष्ट न दें । )

शेद्वियास्वा निश्राया आमिषसाद् दृदो

सुशामि घटणस्य पाशान्म् । अ. २।१०।०

आनुबंधीक रोग, कष्ट, संबन्धितोंके कष्ट, दाद तथा  
बलके वातसे मुझे मैं सुखवाता हूँ ।

दृष्टमदृष्टमदृष्टमथो कुरुकुरुमदृष्टम् । अलगपहून  
रत्नवर्णिलुनात्किमीन्वचला अम्भयामसि ॥

अ. २।३।२

दीखनेवाले, न दीखनेवाले क्षमियोंको मैं मारता हूँ ।  
रंगनेवाले क्षमियोंको मैं बिनाष्ट करता हूँ । बिले पर रहने-  
वाले सब क्षमियोंको बचासे मैं नष्ट करता हूँ ।

निःशालां भृशुं धिपणमेकवाद्यां जियःस्वम् ।

सर्वाश्चपडस्य नदयो नाशयामः सदास्याः ॥

अ. २।१४।१

धरदार न होना, सपभीत होना, एकवचनो निश्रयामक  
सुद्विधा नाश करना, शोधकी सब सताने, हानवृत्तियां  
बादिका हम नाश करते हैं ।

प्रादिर्जमाह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्त-

मेनम् । अ. २।१३।१

यदि जडहनेवाले रोगने हसको पकड रला हो, तो उस  
पीडासे इन्द्र भीर नमि हसको मुचये ।

आ त्वा स्यो विशतां वर्णः परा शुक्रानि यातय ।

अ. १।२३।२

तुमसे धारीका निजवर्ण तुम्हें प्राप्त हो नीर श्वेत धरने  
दूर हों ।

अमुक्या यक्ष्मात् दुरितादयद्याद् दृष्टः पाशाद्

प्राणायोदमुक्याः । अ. २।१०।१

क्षयरोग, वाय, निषकर्म, श्रेदियोंके वाय भीर जडहने-  
वाले रोग आदिसे मैं तुम्हें सुशाता हूँ ।

दूष्या दूषिरसि, हेत्या देतिरसि, मेनया मेनिरसि ।

अ. २।१।१

दोषको दूर करनेवाला, इयिवाका इयिवा, बलका  
बल ( कामा ) है ।

ददापृष्ठ मुष्धेमं रक्षसां प्राणा अधि येनं

जमाद् पयैतु । अयो एनं यन्मग्ने जीवानो

लोचमुपय । अ. २।१।१

हे दण्डक ! हम राक्षसों गृध्रारोगने हम रोगीको  
दूर कर । जो रोग हमको संघियोंके पकड रलाता है। हे  
बलवर्ध ! हमको भीरिज ओगीसे बना बना ।

नमः शोनाय लक्ष्मणे नमो वराय शोविने

व्यात्यां पचमानः । अ. ३।३।१२

शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्जामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यद्दमा-

दुत राजयद्दमात् । अ. ३।१।११

सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे तथा राजपद्मसे हवन द्वारा छुडाने हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्त्वृधि ।

अ. १।१।३२

हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बालबच्चोंको सुख हो ।

वि महच्छर्म यच्छ, वरीयो यावथा वधम् ।

अ. १।२।३

बड़ा शान्तिमुख हमें दो, शत्रुका शस्त्र हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिप्रदीता । अ. ३।२।९७

काम दाता और काम ही देनेवाला है ।

श्रुतस्य कार्यस्य चेद् स्फार्ति समावह ।

अ. ३।२।४५

किये हुए कार्यकी यहाँ वृद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं

तन्वः स्वायाः । तं लोकं यमिन्यभिसंघभूय

सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशून् ॥ अ. ३।२।८५

जहाँ सुहृद् तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर भानंदसे रहते हैं, हे तुम्हारे बच्चे देनेवाली गौ ! उस स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।

सर्घान् कामान्पूरयत्यभयन् प्रभयन्मयन् ।

आकृतिमोऽधिर्दत्तः शितिपाप्रोप दस्पति ॥

अ. ३।२।१२

पह दिया हुआ करमार सब प्रजाके संकल्पोंको पूरा करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रभावो बनकर, अक्षितका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।

विभ्यं सुभूतं सुविदन्नं नो भस्नु । अ. १।३।१७

हम सबके लिये यह विश्व वृत्तम सहायक तथा जान देनेवाला हो ।

अग्ने भवता घदेद नः प्रत्यम् नः सुमना भयः ।

अ. ३।२।१२

यहाँ हमारे साथ भवती तरह बोल । हमारे सम्मुख उत्तम मनवाला हो ।

वि पण्यानो दिशं दिशम् । अ. ३।३।१४

मार्गं भिन्न दिशाभित्तं भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये वध्यमानमनु दीध्याना अन्वैश्वन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टान्तमे प्रमुयोक्तु देवो

विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ अ. २।३।३३

यदको जो मनसे और भाँखते प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनको विश्वका बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम सुख करे ।

पृहृस्पतये महिष शुमन्नमो, विश्वकर्मन्, नम-

स्ते, पाहास्मान् ॥ अ. २।३।५४

महाशक्तिमान् ! ज्ञानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, मायको हमारा नमस्कार हो, भावको नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।

स्वर्णोप त्वां मदाः सुवाचो अगुः । अ. १।५।२

स्वर्णोप भानंदके समान उत्तम भायणसे होनेवाले भानंद तुम्हारे पास पहुँचे हैं ।

सुपूदतः मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्त्वृधि । अ. १।२।१।४

आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रवो । हमारे बालबच्चोंके लिये भानंद प्राप्त हो ऐसा करो ।

इमां देवा असाधिपुः सौभगाय । अ. १।१।८।३

इस रूपका देवोंने सौभाग्यके लिये दापत्र की है । शं मे चतुर्भ्यां अंगेभ्यः शमस्तु तन्ये मम ।

अ. १।१।१४

'मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके लिये नीरोगिता हो ।

अग्नि च विश्वशंभुयम् । अ. १।१।२

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपादयि लोकेन संमितम् ।

स नालकमभ्यारोहति यत्र शुद्धो न कीपने

अवच्छेद पलीयसे ॥ अ. ३।२।१६

जो क्षोभिते संभावित, हिंसकोंका भाग देनेवाले संशय करमारको देता है, वह दुःख रहित स्थानको प्राप्त करता है, जहाँ निर्विकको बहुराजके लिये क्षय नहीं देना होता है ।

कृणोमि। यो अन्येद्युर्दुर्भयद्युर्भ्येति तृतीय-  
काय नमोऽस्तु तस्मिन् ॥ अ. १।२५।४

शीतज्वरके लिये नमस्कार, रूक्ष ज्वरके लिये नमस्कार  
जो एक दिन छोड़कर आता है, जो दो दिन आता है, जो  
तीसरे दिन आता है उस ज्वरके लिये नमस्कार हो।

अर्थात् यह ज्वर हमसे दूर हो।

यदिस्य क्षेत्रियाणां यदि पुरुषेपिताः।

यदि दस्युभ्यो जाता नश्यततः सदान्वाः ॥

अ. २।१४।५

यदि मानुवशिक दोष है, यदि मनुष्यकी प्रेरणासे हुए  
है, यदि दस्युओंसे हुए हैं वे सब दोष यहाँसे हटें।

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेपजमिदं  
किलासनाशनम्। अनीनशत् किलासं सरू-  
पामकरत्त्वचम् ॥ अ. १।२४।२

मानुसीने पहिले यह कृष्णाशक औषध बनाया। इससे  
सुष्ठु विनष्ट हुआ और त्वचा ममान रंगवाली बनी।

आरोग्यके विषयमें रोगकृमिका नाश करना मुख्य है।  
स्वच्छता की जाय, शुद्ध वायु आता रहे, सूर्यप्रकाश  
आश्राय, हवाम गीके घोषा होता रहे ये सब बातें आरोग्य-  
मर्थनके लिये अत्यावश्यक हैं।

सूर्य रोगकृमिघोषा नाशक मुख्यतया है। सूर्यप्रकाश  
मात्रमार्ह करनेवाला है इसलिये रहनेके घरमें सूर्यप्रकाश  
बिगुल आना चाहिये।

अग्नी रश्नाहाऽमीपचानतनः।

अग्नि रोगकृमिघोषा नाशक और रोग दूर करनेवाला है।  
इस रीतिसे इन मंत्रोंका विचार करना चाहिये।

### विजय

सपतन-क्षयणो गृधामिराण्डं पिरासहिः।

यथाहमेवां वीरानां पिराजानि जनस्य च ॥

पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्। अ. २।१३।१  
पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है उस तरह इसकी रक्षा करो।

आशीर्णं, ऊर्जसुत सौप्रजास्त्वं, दक्षं धत्तं  
द्रविणं सचेतसां। जयं क्षेत्राणि सहसाय-  
मिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्तसपतनान् ॥

अ. २।२५।३

हमें आशीर्वाद दो, हे संवृष्ट मनावालों! बल, सुप्रजा,  
दक्षता तथा धन हमें दो। यह अपने बलसे विविध क्षेत्रोंमें  
जय प्राप्त करे और दूसरे शत्रुओंको नीचे करे।

विश्व्वा रूपाणि विभ्रतः त्रिपत्ताः परियन्ति।

अथर्व १।१।१

सब रूपोंको धारण करके, तीन गुणा सात (अर्थात्  
इक्षीस) पदार्थ सर्वत्र चकते हैं। (ये इक्षीस पदार्थ विश्वमें  
दीखनेवाले पदार्थोंके रूप धारण करते हैं।)

यः सहमानश्चरति सासहान इव ऋषभः।

तेनाश्वरथ त्वया वयं सपतनान्तसहिषीमहि।

अ. १।१।४

जो बलवान् शत्रुको दया देनेवाला, सामन्तवान् होकर  
चलता है, उस वीरसे हम शत्रुओंको पराजित करेंगे।

मनुष्यके जीवनमें शत्रुका पराभव करना और विजय  
प्राप्त करना मुख्य बातें हैं। इसीसे मनुष्य सुखी हो  
सकता है।

### सुरसमाप्ति

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो  
जगते पुष्येभ्यः। अ. १।३।१।४  
माता, पिता, गौर्षे, पुष्य तथा चलनेवाले प्राणिघोषों  
सुख प्राप्त हो।

ते पिदिा क्षेममदीधरन्। अ. १।१।५

मन्त्रान्नेमिं तेरा क्षेम धारण करे।

मातेषास्मा अदिते शर्म यच्छ। अ. १।२।५  
हे अदिने ! माताके समान इसे मुक्त्य दे।

एषु प्रथमाजानामुपिता पुतः। अ. १।२।५।४

व्यात्यो पवमानः । अ. ३।३।२

शुद्ध मनुष्य वीहासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमडात यद्दमा-

दुत राजयकृमात् । अ. ३।१।१

सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे

त्प्या राजयकृमासे हवन द्वारा छुडाते हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ।

अ. १।१।२

हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बालबच्चोंको सुख हो ।

वि महच्छर्म यच्छ, चरीयो यावया वधम् ।

अ. १।२० ३

बड़ा शान्तिमुख हमें दो, शत्रुका हाथ हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. ३।२।७

काम दाता और काम ही देनेवाला है ।

श्रुतस्य कार्यस्य चेद् स्फातिं समावह ।

अ. ३।२।५

किये हुए कार्यकी यहाँ वृद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मद्भन्ति विहाय रोगं

तन्वः स्वायाः । तं लोके यमिन्यभिलषभूव

सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पश्यन् ॥ अ. ३।२।८।५

जहाँ सुहृद् तथा सखेमर्कता, अपने शरीरके रोगको

त्याग कर आनन्दसे रहते हैं, हे तुम्हें बच्चे देनेवाली गो ! तल

स्मानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा

न हो । :

सर्वान् कामान्पूरयत्यामयन् प्रभवन्मयन् ।

आकृतिप्रोऽपिर्विचः शितिपात्रोप दृश्यति ॥

अ. ३।२।२

यह दिया हुआ करमार सब प्रकारके संकल्पोंकी पूर्ण

करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है ।

प्रभावी बनकर, अस्तित्वका रक्षण करता है और विनाशसे

बचाता है ।

विभ्यं सुभूक्षं सुविदधं नो भरतु । अ. १।३।१७

हमें सबके लिये यह बिना इत्तम सहायक तथा शान

देनेवाला हो ।

आग्ने मघा यदेद् नः प्रत्यद् ना सुमना भय ।

अ. ३।१०।२

यहाँ हमारे साथ अग्नी घरहू बोल । हमारे सम्मुख  
उत्तम मनवाला हो ।

वि पन्थानो दिशं दिशाम् । अ. ३।३।४

मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये पध्यमानमनु दीध्याना अन्वैच्छन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टानत्रे प्रमुमोषतु देवो

विश्वकर्मा प्रजया संतराणः ॥ अ. २।३।३

यद्को जो मनसे और आँखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं,

उनको विश्वका बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला

अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

वृहस्पतये महिष्य द्युमन्त्रमो, विश्वकर्मन्, नम-

स्ते, पाद्यस्मान् ॥ अ. २।३।४

महावाक्त्विमान् । ज्ञानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, आपकी

हमारा नमस्कार हो, आपकी नमस्कार है, हमारी सुरक्षा

कर ।

स्वर्णोप त्वां मदाः सुयाचो अगुः । अ. २।५।२

स्वर्णोप आनन्दके समान उत्तम भाग्यसे होनेवाले आनन्द

सुहारे पाव पहुंचें हैं ।

सुपूदत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्कृधि । अ. १।२।४

आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रखो ।

हमारे बालबच्चोंके लिये आनन्द प्राप्त हो ऐसा करो ।

इमां देवा व्यसायिषुः सौमगाय । अ. १।१।२

इस कन्धाको देवोंने सोमगायके लिये गायक ही है ।

शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्ये मम ।

अ. १।१।४

‘मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके लिये

नीरोगिता हो ।

अग्नि च विभ्यंशमुपयम् । अ. १।१।२

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपादवि स्त्रोकेन क्षेमिन्तम् ।

स नाकमभ्यारोदति यत्र शुद्धको न क्रियते

अवलेन वलीयसे ॥ अ. ३।२।३

जो लोगोके समाहित, हिंसकोंका नाश करनेवाले मरकट

करमारके देता है, वह शुद्ध शक्ति त्यागको प्राप्त करता

है, जहाँ निर्दलको बलवाचके लिये बल नहीं देना होता है ।

हम तरह सुख प्राप्त हुआ तो मनुष्यकी भायु दीर्घ होती है। रोग दूर हो, स्वास्थ्य प्राप्त हो, मन आनन्द प्रसन्न रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

### दीर्घ आयु

हम प्रकरणमें आये मन्त्रोंका विशेष उपयोग है। इन मंत्रमार्गोंका जप करनेसे लाभ होता है—

शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। अ. ३।१।१६  
हमका शरीर और इसके अवयव वृद्धावस्थातक पहुँचाओ।

ये देवा विधि छ, ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्ष  
ओपधीयुपशुष्वन्तः। ते कृणुत जरसमागुरसै  
शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ अ. १।३।०३

जो देव पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर हैं। जो औप-  
धिओं और पशुओंमें हैं। वे देव इसके लिये वृद्धावस्था-  
तककी भायु करें। सैकड़ों अन्य प्रकारके मृत्यु दूर हों।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।

अ. २।१।१४

सब देव तेरी भायु सौ वर्षकी करें।

तं मियासं बहु रोचमानो दीर्घायुस्वाय शत-  
शारदाय। अ. ३।५।४

उस मियको प्राप्त कर, बहुत प्रकाशित होकर, सौ वर्षका  
दीर्घायु प्राप्त करू।

दशमीमुग्रः सुमना वज्रोह। अ. ३।४।७

तू यहाँ उग्रवीर तथा उत्तम मनवाला होकर दसवीं  
दशक तक सब राजकी अपने वशमें (अर्थात् अपने अनु-  
कूल) कर।

परि घत्त, घत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत  
दीर्घमरायुः। अ. २।१।२२

हमारे इस पुरुषको धारण करो, तेजसे युक्त करके इसकी  
धारण करो, दीर्घायु इसकी देकर जरावस्थाके पश्चात् इसकी  
मृत्यु हो पेशा करो।

शतं च जीय शरदः पुरुचीं, रायस्पोपमुपसं-  
ध्यपस्य। अ. ३।१।३

सौ वर्षतक पूरे रीतिसे जीवो और घन और पोषण  
वचन रीतिसे प्राप्त करो।

इन्द्र पता रखने विदो अग्र ऊर्जा स्वयाम-

जरां, सा त एवा। तथा त्वं जीव शरदः  
सुवर्चा, मा त आ सुन्नोद्भिपजस्ते अकन् ॥

अ. २।२।७

इन्द्रने भक्ति करनेपर अन्न, बल, धारकशक्ति, अक्षीणता  
आदिको वापस किया, यह शक्ति मुन्हारे लिये है। इससे  
तू युक्त होकर बहुत वर्ष जीवित रह, तेजस्वी बन, तेरे लिये  
न्यूनता न हो। वैद्योंने तेरे लिये यह रसयोग बनाया है।

धमि त्वा जरिमाहितं गामुक्षणमिष रज्या।

अ. ३।१।८

जिस तरह गाय और बैलको रज्जुसे बांधते हैं वैसे  
वृद्धावस्था तेरे साथ बंधी रहे।

जराये त्वा परिददामि। अ. ३।१।७

वृद्धावस्थाके लिये तुझे देता हू।

वि देवा जरसावृत्तम्। अ. ३।३।११

देव जरासे दूर रहते हैं।

स्वस्त्येनं जरसे वहाय। अ. १।३।०२

इसको वृद्ध भायुतक सुखसे पहुँचा दे।

विश्वेदेवा जरदृष्टिर्ययासत्। अ. २।२।१५

सब देव यह वृद्ध होनेतक जीवे, पेशा करें।

जरायै निधुवामि ते। अ. ३।१।१०

वृद्धावस्थातक तुझे पहुँचाता हू।

जरा त्वा भद्रा नेष्ट। अ. ३।१।१७

तुझे वृद्धावस्था सुख देवे।

वि यक्षमेण, समायुषा। अ. ३।३।११-११

यक्षमरोगसे मैं दूर रहू। दीर्घायुसे मैं संयुक्त रहू।

मित्र पत्नं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां  
संविदानौ। अ. २।२।२

मित्र तथा शत्रुनाशक वरुण जानते हुए इसकी जराके  
पश्चात् मृत्युको प्राप्त होनेवाला दीर्घायु करें।

दीर्घायुत्वाय महते रणायारिप्यन्तो वक्षमाणः  
सदैव। मणिं विष्ण्वधूपत्नं जङ्घिं विभ्रमो  
घयम् ॥ अ. २।४।१

दीर्घायु प्राप्त हो, बड़ा आनन्द प्राप्त हो, वीरकरो  
दूर हो इसके लिये जंगल मणिको, हम सब विनष्ट न होने-  
वाले और अपना बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले सदैव  
प्राण करते हैं।

रायस्पोषं सवितरा सुवास्रमै शतं जीवाति  
शरदस्तघायम् । अ. ११२९१२  
धन और पोषण, हे सविता ! इसे तू दे । और यह तेरा  
घनकर सौ वर्ष जीवित रहे ।

हन्द्रो यथैन शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरि-  
तस्य पारम् । अ. ११११३  
सब पावजनित दु खके पार इसको हन्द्र के जाय और  
यह सौ वर्षकी आयु इसे मिले देना करे ।

शतं जीव शरदो वर्धमानाः शतं हेमन्तान्  
शतसु घसन्तान् । अ. ११११४  
सौ वर्षतक बढ़ता हुआ जीवित रहे । सौ हेमन्त, सौ  
वसन्त और सौ शरद ऋतुतक जीवित रहे ।

सहस्राक्षेण शतवर्षीणं शतायुषा हविषा  
हाप्येमेतम् । अ. ११११३  
सहस्रों शक्तिपौसे युक्त, सौ वर्षोंसे युक्त, शतायु करने  
वाले हवनसे इसको मैं मृत्युसे वापस लाया हूँ ।

शतायुषा हविषाहाप्येमेतम् । अ. ११११४  
सौ वर्षकी आयु देनेवाले हवनसे मैं इसे वापस  
लाया हूँ ।

शत जीवाति शरदस्तघायम् । अ. १११०१२  
तुम्हारा यह मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहे ।  
आयुरस्मै घेद्वि जातवेद । अ. ११२९१२  
हे जातवेद ! इसको दीर्घायु दे ।

यस्तथा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपादाया ।  
तं ते सत्यस्य दत्ताभ्यां उदमुञ्चदृष्टस्पतिः ॥  
अ. ११११८  
जिन मृत्युने तुझे उलपन्न होते ही बांध रखा है बस  
तुम्हको वृहस्पति सत्यके हाथोंसे तुम्हा देगा है ।

तुभ्यमेव जरिमानं वर्धतामयं मेममन्ये मृत्ययो  
दिसिषुः शत ये । अ. ११२८११  
हे वृद्धावय ! तेरी आयुतक यह मनुष्य बढ़े । वे जो  
मेकठो मृत्यु हैं वे इसको हिंस न करें ।  
इममन्न आयुषे वर्धसे नय त्रिपं रेतो यदण  
मित्र राजन् । अ. ११२८१५

हे भग्ये, हे वदण, हे मित्र राजन् ! इसको दीर्घायु  
बढ़ने दीर्घायु तथा मेकठे मति के आ ।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरतिकं  
नीत एव । तमा हरामि निकर्तैरपस्थादस्वार्प  
मेनं शतशारदाय ॥ अ. ११११२  
यदि इसकी आयु समाप्त हुई हो, यदि यह मृत्युके  
समीप पहुँचा हो, तो भी बिनाशके पाससे मैं इसको वापस  
लाता हूँ और इसको सौ वर्षतक मैं जीवित रखता हूँ ।

यो विभर्ति दाक्षायण हिरण्यं स जीषेषु  
वृणुते दीर्घमायु । अ. ११२५१२  
जो दाक्षायण सुवर्णं शरीरपर धारण करता है वह  
जीवोंमें दीर्घायु धारण करता है ।

परि त्वा रोहितैर्धेनेर्दीर्घायुव्याय दभसि ।  
यथायमरणा असदद्यो अहरितो भुवस्व ।  
अ. ११२२१२  
लाल रंगके किणोंमें मैं तुझे दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये  
धरता हूँ । इससे यह नीरोग होगा और पीडिमा भी  
इससे दूर होगी ।

उदायुषा समायुषोदोपधीनां रसेन ।  
अ. ११२११०  
आयुषसे उच्च घन, दीर्घायुसे युक्त हो, औषधिपौके  
रससे उच्चतिका प्राप्त हो ।

कृत्यादृषिरयं मणिरयो अरातिदृषि ।  
अयो सहस्वाङ्गद्विद. प्र ण आयुषि तारिषत् ॥  
यह जगिद मणि हिंसाने बचनेवाला है, मनु मूण रोगीको  
दूर करनेवाला है और बर बचनेवाला है, यह हमारी  
आयुको बढ़ावे ।

यदा यशन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीवाय सुम  
नस्यमानाः । तस्ते यशाम्यायुषे वर्धसे वलाय  
दीर्घायुव्याय शतशारदाय ॥ अ. ११२५११  
उत्तम मनवाले बरकी वृद्धि करनेकी कामना करनेवाले  
धेष्ठ पुत्र मिकठो बर प्राप्त करनेके लिये शरीरपर सुवर्ण  
( का आयुषण ) रखते हैं । वह सुवर्ण दीर्घायु, नेत्रविद्या,  
बल, औषधोंकी दीर्घ आयु दम्भं प्राप्त हो इसलिये तेरे  
शरीरपर बांधता हूँ ।

एवम्ये यन्तु मृत्युषो यानाहुरितरान् शतम् ।  
अ. ११११५,०  
तेहरी वरवाले मृत्यु वा दु ख करने दूर हो ।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्यामामृता वयम् ।

अ. ३।३।१।११

पर्जन्यकी वृष्टिजलसे हम ठषाठिको प्राप्त हो और हम ममर बनें । हमें क्षीम मृत्यु न आवे ।

इद्वैद्य स्तं प्राणापानौ माप गातमितो यूयम् ।

अ. ३।१।१।६

हे प्राण और अपान यहाँ टहरो, मुम इससे दूर न जाओ । प्राणेन प्राणतां प्राणेद्वैव भव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।१।९

जीवित रहनेवालोंकी जैसी प्राणदाक प्राण कर और यहाँ जीवित रह, मम मर जा ।

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः । अ. २।२।८।४  
प्राण तथा अपान द्वारा सुरक्षित होकर यह सौ हिम-  
काण्ड-भी यदं-जीवित रहे ।

प्राण्यमतामायुष्टतां प्राणेन जीव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।१।८

दीर्घ आयुवालों और आयुष्य बढ़ानेवालोंकी जैसी प्राण-  
दाकसे जीवित रह, मम मर जा ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं । अ. २।१।६।१

हे प्राण और अपान ! मृत्युसे मेरी मुक्ति करो ।

म पिदातं प्राणापानायनद्यादायिव मजम् ।

छु पिता और शपिनी माता ज्ञानपूर्वक इसको जराके पश्चात् मृत्यु हो देता करें ।

मनुष्य दीर्घ आयु चाहता है । इसलिये दीर्घायु वाहने-  
वाला मनुष्य यहाँ दिये, वचनोंका जप करें, वारंवार उपासा-  
रण करें, वारंवार भजन करें । लाम अवश्य होगा जैसा—

शरीरं अस्याङ्गानि जरसे चहृतं— इसका शरीर  
और इसके अंग वृद्ध अवस्थातक पहुँचा दो ।

यह वचन अपने शरीरके विषयमें भी वारंवार बोला जा  
सकता है । मनके दृढ विश्वाससे लाम होता है । तथा—

कृणुत जरसें आयुः अस्मै— इसकी आयु वृद्ध  
अवस्थातक करो ।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतं— सब देव  
तो वर्षोंकी मुम्हारी आयु करें ।

दशर्मा उग्रः समना यशोह— यह सप्तवीर बनकर  
दसवीं दशकतक जीवित रहे ।

जराभृष्टं कृणुत दीर्घमायुः— इसकी दीर्घायु काके  
जराके पश्चात् मृत्यु हो ।

शतं च जीव शरदः पुरुचीः— सौ वर्षकी दीर्घायु  
इसे निके ।

एवं जिव शरदः सुवर्चाः— उत्तम तेजस्वी होकर  
सौ वर्ष जीवित रह ।



आयुरस्मै घेहि— इसको आयु प्रदान करो ।  
 भेममन्ये मृत्युधो हिंसिपुः शतं ये— सैकड़ों मृत्यु  
 इसका नाश न करे ।  
 इमंन आयुषे वर्चसे नय— हे भगने ! इसे आयु और  
 तेजके लिये ले जा ।  
 अस्पर्धमंनं शतशारदाय— सौ वर्षकी आयुके लिये  
 मैं इसे स्पर्धा करता हूँ ।  
 तत्ते चभ्रामि आयुषे— आयुष्यकी प्राप्तिके लिये तुझे  
 यह मणि बांधता हूँ ।  
 मा मृधाः— मत मर ।  
 प्राणेन जीव— प्राणसे जीवित रह ।  
 प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं— प्राण और अपान मृत्युसे  
 मुझे बचावे ।

जरा मृत्युं कृणुतां— जराके पश्चात् मृत्यु हो ।  
 इस तरह अन्याय्य बचनोंका भी उपयोग हो सकता  
 है । कोई बीमार पका हो, तो पवित्र होकर सिरकी ओरसे  
 पवित्रक अपने हाथोंको घुमाना और ये मंत्रभाग बोलना,  
 भगनें ही निमग्नपूर्वक बोलना । धारंवार बोलना । अपने  
 हाथोंमें बीमारी दूर करनेकी शक्ति है ऐसा मानकर  
 इससे बीमारी दूर होगी ऐसे विश्वाससे यह करना ।  
 रोगीका भी साथ-साथ विश्वास हो तो लाभ शीघ्र होगा ।  
 अन्य वचन अन्य समय बोलनेके लिये हैं । यह विचार  
 करके पाठक जान सकते हैं ।

### वनस्पति

शं नो देधी पृक्षिपण्यंशं निर्झाल्या अकः ।

अ. २।२५।३

हे शक्तिपूर्ण देधी, हमारे लिये कल्याण कर, और  
 व्याधिघ्नोको दुःख प्राप्त हो ।

अरायमस्तृक्पावानं यश्च स्कार्ति जिहीर्षति ।

गर्भार्दि कण्ठे नाशाय पृक्षिपर्णि सहस्र च ॥

अ. २।२५।३

पोभा हशनेवाला, रक्त पीनेवाला, जो पुष्टिको हटाता है,  
 गर्भको क्षानेवाला जो रोगबीज है उसका नाश कर । हे  
 शक्तिपूर्ण ! दुःखको दूर कर ।

धीरुत् क्षेप्रियनाशायप शेषिपमुच्छ्रुतु ।

अ. २।२६।२-५

आनुवंशिक रोगको दूर करनेवाली यह औषधि आनु-  
 वंशिक रोगको दूर करे ।

श्यामा सरूपं करणी पृथिव्या अशुद्रता ।

इदमूयु प्र साधय पुनः रूपाणि कल्पय ।

अ. ३।२४।४

श्यामा वनस्पति सरूप करनेवाली है, पृथिवीसे ऊपर  
 उछाड़ी गयी है, इस कर्मका उत्तम साधन कर और पुनः  
 पूर्ववत् शरीरका रंग कर ।

शं सोमः सहौपधीभिः । अ. २।३०।२

औषधियोंके साथ सोम कल्याण करनेवाला हो ।

इदं जनासो विदथ महद्मह्य वदिष्यति ।

न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ।

अ. ३।३२।१

हे लोगों ! यह जानो कि ज्ञान बड़ी घोषणा करके  
 कहेगा । जिससे वनस्पतियां जीवित रहती हैं वह पृथिवीमें  
 नहीं है और न पुत्रोर्कमें है ।

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।

असिन्त्यासि ओषधे तिरितो नाशया पृषत् ॥

अ. ३।३३।३

तेरा छयस्थान कृष्ण है और मास्थान भी कृष्णवर्णका  
 है । हे औषधे ! तू काले वर्णवाली है, इसलिये तू हमके  
 श्वेत धर्ये दूर कर ।

सरूपशृत्त्वमोषधे सा सरूपामिदं पृथि ।

अ. ३।३४।३

हे औषधे ! तू सरूप रचकाको करनेवाली है । अतः तू  
 स्वचाको सरूप कर ।

### वधु

सोमजुष्टं प्रल्लजुष्टं अर्यग्णा स्रुभृतं भगम् ।

घातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिषेदनम् ।

अ. २।३४।२

आत्मज्ञानसे सेवित, मादृगों द्वारा सेवित, श्रेष्ठ मन-  
 बलिने हृष्टा किया यह घन है, घाता देवके मन्त्र नियमा-  
 नुसार पतिकी प्राप्तिके लिये मैं इसकी सुषोष करता हूँ ।

इदं दिरण्यं सुन्दुरस्यमीश्रो भयो मयाः ।

पते पतिभ्यस्सयामदुः प्रतिवामाय पेष्ये ।

अ. २।३५।०

यह उत्तम सुवर्ण है, यह बेरु है, और यह घन है ।

ये पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये तेरे पतिको देते हैं ।

आ नो अग्रे सुमति संभलो गमेदिमां कुमारीं  
सह नो भगेन । अ. २।३६।१

हे अग्रे ! धनके साथ उत्तम वक्ता पति हम उत्तम बुद्धि-  
मती कुमारीके प्रति जा जावे ।

यदन्तरं तद्वाह्यं यद्वाह्यं तदन्तरम् ।  
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥

अ. २।३०।४

जो अन्दर हो वही बाहर हो, जो बाहर हो वही अन्दर  
हो । विविध रूपवाली कन्याओंका मन प्रहण कर ।

या श्रौहानं ज्ञापयति कामस्येपुः सुसघ्रता ।

अ. ३।२५।३

कामका बाण लगनेपर श्रौहाको बोधित करता है ।

यथेदं भूम्या अधि तृण वातो मथायति ।

एवा मन्नामि ते मनो, यथा मां कामिन्यसौ,

यथा मन्नापगा असः ॥ अ. २।३०।१

हे स्त्री ! जैसा यह पृथ्वीपरका धान वायु दिखाता है  
वैसा मैं तेरे मनको दिखा देता हूँ, तू मेरी इच्छा करनेवाली  
हो, मुझसे दूर जानेवाली न हो ।

दिया मय पुण्येभ्ये गोभ्यो अश्वेभ्यः दिया ।

दिवार्षम सयर्षम क्षेत्राय दिया न इदेषि ॥

तास्त्वा पुत्रविधाय देवी प्राचन्त्वोपधयः ।

अ. ३।२३।४

वे दिव्य औषधियां पुत्रप्राप्तिके लिये तेरी रक्षा करे ।

एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सप्रिया पत्या-

विराघयन्ती । अ. २।३६।४

ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिको प्रिय और पतिले  
विरोध न करती हुई यहाँ रहे ।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।

भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥

अ. ३।२३।३

पुरुष पुत्र उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही होते रहें ।  
तु पुत्रोंकी माता हो, जो हो तुके तथा जो होनेवाले सब  
पुत्र ही हों ।

तं त्वा धातरः सुवृधा चर्धमानमनु जायन्तां

यहयः सुजातम् । अ. २।१३।५

उस तुझ उत्तम जन्मे हुए बहते हुएके पीछेसे बहुतसे  
बहनेवाले भाई उत्पन्न हों ।

पति-परनी

ॐ परि त्वा परितन्नुनेक्षुणामामविद्विये ।

यथा मां कामिन्यसौ यथा मन्नापगा असः ॥

अ. १।३५।५

कार्य कर । सब कार्य उसके दाहिनी ओर कर, जो वर तंत्री कामनाके अनुकूल है ।

देवा गर्भं समैरयन् संव्यूर्णयन्तु सूतवे ।

अ. १।१।२

देव इस गर्भको घेरना करें, प्रसूतिके लिये उस गर्भको घेरित करें ।

ब्रह्मसिंह सहमानाथो र्वमसि सासद्विः ।

उभे सहस्रवती भूरवा सपत्नी मे सहाचरैः ॥

अ. ३।१।५

मैं विजयी हूँ और तू विजयी है । दोनों विजयी होकर सपत्नीका पराभव करेंगे ।

पला सौमगत्वमस्त्वस्यै । अ. २।३।१

इस कुमारीको इस पतिसे सौभाग्य प्राप्त हो ।

इयमग्ने नारी पतिं विद्रेष्ट सोमो हि राजा  
सुभगां कृणोति । अ. २।३।३

हे अग्ने ! यह नारी पतिको प्राप्त करे, राजा सोम इसको उच्चम भाग्यवती करे ।

वृक्षं यद् गावः परिपस्वजाना अनुस्फुरं शर-  
मर्चन्त्यभूमू । अर्थ १।१।३

वृक्षं परिपस्वजाना गावः ऋभुं शरं अनुस्फुरं  
मर्चन्ति— वृक्ष ( से उत्पन्न धनुष्यके साथ रहकर ) गौ ( घर्मसे बनी टोपिया ) सीधे बाणको स्फूर्तिके साथ जिन तरह फेंकती हैं ( इस तरह धनुषके साथ मिलाकर रहनेवाली बिना स्फूर्तिके बौर पुनको धनुष पर भेजें । )

धनुष्यकी छड़की पुरा है, डोरी धीरे है, इनका पुत्र बाण है । जिस तरह धनुष धनुषा बाण फेंकता है उस तरह गृहस्थ अपने पुत्रको बलवान् बनाकर धनुष पर भेजें और धनुषा पतामर करें ।

रटैयाभि चि तनु उभे आरतो इय उपया ।

अर्थ १।१।३

( उभे जानी उपया इय ) धनुष्यके दोनों ओर बैठे रीतिसे तने रहने हैं, इस तरह ( इह एव अग्नि विष्णु ) वही ही दोनोंको तनारो । ( धनुष्यकी डोरी धनुष्यके दोनों ओरकी तनाकर रखती है, जिससे बिजय मिळता है । इस तरह इस संसारे दोनों-ब्रह्म-शिव, भीमस हृदि,

विद्वान् अविद्वान्- कार्य करनेके लिये जिन देवोंमें सिद्ध रहने हैं, वह देश विजयी होता है । )

रव्या दुद्विषे चहसुं ( चि ) युनाक्ति । अ. ३।३।५  
पिता पुत्रको दहेज देनेके लिये बलव करके रखता है ।

### सुसप्तसूति

आ ते योनिं गर्भं एतु पुमान् चाण ह्येषुधिम् ।

अ. ३।२।२

जैसा बाण भातेमें जाता है वैसा यह पुरुषका गर्भ ठेरे गर्भाशयमें आवे । ( बाण दानुनाश करता है वैसा यह गर्भ वीर बने, धनु नाश करे । )

आ योनिं गर्भं एतु ते । अ. ३।२।३

ठेरे उतरसे पुरा गर्भ होवे ।

### रक्तस्राव दूर करना

तेभिर्मै सयैः संस्त्रायैर्धनं सं श्यावयामसि ।

अ. १।१।५।३

उन सब घोवोंसे हम सब धनको सम्पत् रीतिसे हथकूट करते हैं ।

### नियमसे चलना

चाचस्पतिर्नियच्छतु । अर्थ १।१।३  
विद्वान् नियमसे चलावे । ( विद्वान्के नियमसे अन्य लोक चले, जिससे उनकी उन्नति होगी । )

### गणि धारण

परीदं पातो अधिधाः सन्तये । अ. २।१।३  
इस ब्रह्मको अपने ब्रह्मपाण्डे लिये धारण करो ।  
जङ्घिदो जम्भाम् विदाराम् विरभंघाम्मिशो-  
चनात् । गणिः सदृशयोः परि नः पानु  
विश्रुतः ॥ अ. २।१।२

यह अग्नि गणि सदृश नीचोंसे युक्त होनेके कारण जग-  
हार्द, क्षीरसा, शीतल रोग, तथा शोक करनेकी रोगप्रद-  
गिसे, सब आरामे हमारा हथकूट करे ।

अयं विश्वान्धं सद्गनेऽयं याचते अग्निप्रपः ।  
अयं जो विश्वमेपत्तो जङ्घिदो पाण्डेत्ता ॥

अ. २।१।३

यह अग्नि गणि शीतल रोगसे बचता है, यद्गण अथवा

करनेवाले क्रिमियोंको बाधा पहुंचाता है, यह सब औपधी शक्तियोंसे युक्त है यह पापसे हमें बचावे ।

शाणश्च मा जगिडश्च विष्कधादभि रक्षताम् ।

अरण्याद्य-आभृत कृप्या अन्यो रस्तेभ्य ॥

अ २।४।५

शाण और जगिड ये दोनों शापक रोगसे मेरा रक्षण करें । एक वनसे लाया है और दूसरा खेतोंके रसोंसे बनाया है ।

### काम

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि, कामंतत्ते । अ ३।२९।७  
कामसे तुझ लेता हू । यह सब है काम । तेरा कर्तव्य है ।

### पापसे बचना

यदेनश्चकृद्यान्, यद्द एव, त विश्वकर्मन् प्रमुञ्चा स्त्रस्तये । अ. २ ३।५।३

इसने पाप किया, इसलिये यह बद्ध हुआ है । हे विश्वके रचना करनेवाले प्रभु ! उसको कष्टदाण प्राप्त हो इस लिये उसे मुक्त कर ।

पापमार्जित्यपकामस्य कर्ता । अ २।१२।५

अनिष्ट कार्य करनेवाला पापको प्राप्त होये ।

मातेव पुत्र प्रमना उपस्थे मित्र एन मित्रिया

स्वारवहस । अ २।२८।१

जैमी माता प्रेमसे पुत्रका गोदमें लेती है । उस तरह मित्र मित्रसबधि पापसे इसको बचाव ।

ते नो निर्ऋत्या पाशेभ्यो मुञ्जताहसो-अहस ।

अ १।११।२

ये देव विनाशके पाशोंसे तथा पापसे इसे मुक्त करें ।

विश्व शुभ्र निचिकेपि द्रुग्धम् । अ १।१०।२

हे उग्र वीर ! सब पापको तू जानता है । पाप कहा रहता है यह तू जानता है ।

व्याकृतय प्यामितशयो चित्तानि मुह्यत ।

अथो यदधैपा हृदि तदेषा परि निर्जदि ॥

अ ३।२ ४

इस शत्रुओंके सदस्यों और इनके चित्तोंको मोहित करो । और आ इनके हृदयमें विचार है उन सबका नाश करो ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना । अ. ३।३।१-५, १०-११  
सब पापोंसे मैं दूर रहता हू ।

वि शक्र. पापकृत्यया । अ ३।३।२

समर्थ मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है ।

सजातानुग्नेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ।

अ १।१०।४

हे उग्र वीर ! स्वजातियोंसे घोषणा करके कष्ट दे कि हमारा ज्ञान ही दोषोंको दूर कर सकता है ।

### आत्मरक्षण

तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । अ २।१३।५

सब देव तेरी सुरक्षा करें ।

सूरिरसि, वर्चोधा असि, तनूपानोऽसि ।

अ २।११।४

तू ज्ञानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीरका रक्षण करने वाला है ।

### अन्न-जल

तोल्लस्य प्राशान । अ १।७।२

तोलकर खाओ । ( मित्र भोजन करो )

क इद कसा अदात् काम कामयादात् ।

अ ३।२९।७

किसने यह किसको दिया । काम ही कामके लिये देता है ।

दानाय चोदय । अ ३।२०।७

दानके लिये प्रेरणा कर ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स फिर ।

अ ३।२४।५

शत हस्तोंसे प्राप्त कर और हजार हाथोंसे दान कर ।

घृत पीत्वा मधु चाक गन्धम् । अ २।१३।१

मीठा सुन्दर गीका घी पीओ ।

इह पुष्टिरिद रस इह सदद्यत्सातमा भव ।

पशन् यमिनि पोषय ।

अ ३।२८।४

यहाँ पुष्टि और यहाँ रस है । यहाँ हजारों लाभ देनेवाली होकर रह । हे शत्रुओंके बन्ध देनेवाली नो । यहाँ पशुओंको पुष्ट कर ।

सा न आयुधमूर्तो प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।

म. ३।१०।३;८

बह दू हमारी दीर्घायुवाकी जनको जनकी दुहिते युक्त कर ।

भविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपाःस्वधा ।

म. ३।११।१

बह ( सोलहवां भाग कर ) दिया हुआ रक्षक जनकर  
द्विजकोति रक्षण करनेवाला तथा भवनी धारणा करनेवाला  
होता है, और वह दुःखसे युक्त कराता है ।

दुर्गा मे पञ्च प्रदिशो दुःहासुर्धो यथावलम् ।

म. ३।११।२

ये बन्धी पांच दिशाएँ यह शूची यथानतिक मुझे साम-  
र्थ्य देवे ।

एष चां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुघ्न मा हृषत् ।

म. ३।११।३

हे द्यावापृथिवी ! यह तुम्हारे समीप रहता हुआ क्षुधासे  
न भया तथासे दुःखी न हो ।

### गृहनिर्माण

शृद्धानलुभ्यतो ययं संपिप्तोमोप गोमत्तः ।

म. ३।१०।११

हमारे घरोंमें बहुत माँसे हों और शिबीपदार्थकी ग्यूनता  
न रहे ।

तं स्या शाले सर्वघोराः सुघोरा मरिष्टवीरा  
उपसंचरेम ।

म. ३।११।१

हे घर ! तरे चारों ओर हम सब उत्तम वीर, उत्तम  
पराक्रम करते हुए तैयार करते रहेंगे ।

इदेष भुधा तिष्ठ शालेऽभ्याघर्तो गोमतीसूनु-  
तायती । ऊर्जस्वती घृतयती पयन्तासुच्युर्यस्य  
मदते सोमगाय ॥

म. ३।११।२

हे घर ! तू यही रह, यही शक्ति रह, गौमीति युक्त,  
घोहीति युक्त, मधुर भावमते अघडात् घोते युक्त, दूधसे युक्त  
होकर महान् सोमगायति युक्त होकर यही शक्ति रह ।

मा तथा घातो गमेद्वा सुधार आघेनयः स्वाप-  
मार्णम्मानाः ॥

म. ३।११।३

आरे पात बघडा नीर कबडा तथा दूधनी दूरं गीरे  
पार्श्वदाय आ त्रिव ।

घरुपयसि शाले वृहच्छन्दा प्रतिघान्मा ।

म. ३।११।३

हे घर ! तू बड़े छतवाला भीरुपतिर धाम्यवाला होकर  
धारणाकित्से युक्त होकर रह ।

सुणं यसना सुमना अलसर्थ्य ।

म. ३।११।५

पासकी पहनेवाला तू घर हमारे लिये उत्तम मनवाला  
हो ।

मानस्य पतिन शरणा स्योना देधी देधेभिर्नि-  
मित्तस्यमे ।

म. ३।११।५

संनानका रक्षक, रहने योग्य, सुलकर पह दिव्य घर  
देवीद्वारा पहिले बनाया गया था ।

श्रुतेन स्थूणामधि रोह घंश्रोमो विराजतप्र  
चूंक्ष्य शश्रूम् ।

म. ३।११।५

हे नील ! बनने तीधरनही बनने आचारपर घडा रह ।  
उम्रवीर बनकर शश्रूमीको हटा दे ।

शाले शान्तिं जियेम दारदः सर्वघोराः ।

म. ३।११।६

हे घर ! सब वीर पुरोंति युक्त होकर हम सब शान्तिक  
जीवित रहेंगे ।

एमां कुमारस्तदण मा घासो जगता सद् ।

एमां परिष्कृतः सुम्भ आ दत्तः वल्लक्ष्मिः ॥

म. ३।११।७

हम परहे पाप कुमार जाने, तदन जाने, बघड़े सार  
वकनेवासे गो आदि प्राणी जाने, इवहे पाप मधुर रसते  
या पछा दहीके कलतीरे माप आ कां ।

असौ यो मघराद् गृहः तत्र तत्रमघरापः ।

तत्र सेदिन्वंच्यतु सपांघ पातुपापः ॥

म. ३।११।८

जो यह मीच घर है, वही विघनियों रहे, वही क्रम हो,  
तब पापना वही रहे ।

मा मे रिपनुपससागे शृद्धानाम् ।

म. ३।११।८

हे घर ! मेरे आधरने रहनेवाले विघन न हों ।

पूर्वं नादि म भर कुम्भमेने घृतस्य धारणम्  
तेन रंशुनाम् । इमां पापकर्मनेना समस्यर्षि-

शश्रूमीमिह वृहच्छन्दाम् ॥

म. ३।११।८

हे घर ! हूँ तुम्हें अरे बहनेके तथा कर्मसे अती वीही

घाराको अच्छी तरह भरकर ले आओ । पीनेवालोंको अच्छी तरह भर दे । यज्ञ और अन्नदान इस घरका रक्षण करते हैं ।

गौ

स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ।

यद् वृक्षमारी प्रजा, आत्मा, गौर्वो और प्राणोंके विषयमें जागता रह ।

इहैव गाव पतनेहो अक्रैव पुष्यत ।

इहैद्योत प्रजायध्यं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥

अ. ३।११।३

हे गौर्वो ! यज्ञ आओ, सारके समान पुष्ट बने, यज्ञ अच्छे उत्पन्न करो और आपका प्रेम मुझपर रहे ।

मया गावो गोपतिना संचध्यं अयं वो गोष्ट

इह पोपयिष्णुः । रायस्योपेण बहुला भवंती-

र्जावा जीघन्तीरुप वः सदेम ॥ अ. ३।११।६

हे गौर्वो ! मुझ गोपतीके साथ मिली रहो । तुम्हारा पोषण करनेवाली यह गोशाला यहाँ है । शोभायुक्त वृद्धिके साथ बहुती हुई, जीवित रहनेवाली तुमको हम सय प्राप्त करते हैं ।

संजग्मना अविभ्युपीरस्मिन्गोष्टे करीयिणीः ।

विधती सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥

अ. ३।११।३

इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, निर्भय होकर गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली, शांति उत्पन्न करनेवाले रस-दूध-का धारण करती हुई हमारे पास हमारे समीप गौर्वें आ जाय ।

दिवो वो गोष्टो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैद्योत प्रजायध्यं मया वः संवृजामसि ॥

इमं गोष्टं पशवः सं स्रवन्तु । अ. २।२६।१

इस गोशालामें पशु रहें ।

अध्वावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमु-

च्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ अ. ३।१५।७

कल्याण करनेवाली उपायें घोटों और गौर्वोंके साथ तथा वीर पुर्वोंके साथ हमारे घरोंको प्रकाशित करें । धी देवें, सब ओरसे संतुष्ट होकर आप सदा हमें कल्याणोंसे सुरक्षित रहें ।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंग आ मा प्राणेन सह

वर्चसा गमेत् ।

अ. ३।१३।५

यह मधुरतासे भरा तीव्र जलरूप रस, प्राण और तेजके साथ युक्त प्राप्त हो ।

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती घत्तं पयो अस्मै पयस्वती

घत्तम् । ऊर्जमस्मै घावापृथिवी अघातां विश्वे-

देवा मरुत ऊर्जमापः ॥ अ. २।२९।५

अन्नवाली ( घावापृथिवी ) इसे अन्न देवे, दूधवाली इसे दूध देवे, घावापृथिवी इसको घल देवे, सब देव, मरुत और जल इसे वाक्कि प्रदान करें ।

आ हरामि गवां क्षीरं आहार्यं घान्यं रसम् ।

आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥

अ. २।२६।५

मैं गौर्वोंका दूध लाता हूँ, घान्य और रस लाता हूँ । हमारे वीर आगये हैं, ये पत्नियाँ हैं और यह घर है ।

सं सिचामि गवां क्षीरं समाज्येन वलं रसम् ।

सं सिक्ता अस्माकं वीरा भुवा गावो मयि गोपती ॥

अ. २।२६।५

यदि नो गां हंसि यद्यश्चं यदि पुरुषम् ।  
तन्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अविरहा ॥  
अ. ३११६४

यदि हमारी गौका वध तू करेगा, यदि घोड़ेका या यदि पुरुषका वध करेगा, तो तुझे सीसेकी मोलीसे वेध करूंगा, जिससे हमारे समीप कोई धीरोंका नाश करनेवाला नहीं रहेगा ।

### कृपि

सीते वन्दामहे त्वावाची सुमये भव ।  
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥  
अ. ३११७०

हे हलकी रेपा ! तुझे हम वन्दन करते हैं, तू संसुख हो, और भाग्यवाली हो । तू उत्तम हृष्टावाली हो और सुफल देनेवाली हो ।

शुनं वाहाः, शुनं नरः, शुनं कृपतु लांगलम् ।  
शुनं वस्त्रा वध्यन्तां शुनमप्टामुदिङ्गम् ॥  
अ. ३११७६

बैल सुखी हों, मनुष्य प्रसन्न रहें, हल सुखसे जमीन खोदें, रस्सियों सुखसे बांधीं जाय, और वायूक सुखसे चलाया जाय ।

घृतेन सीता मधुना समक्का विश्वैर्वैरनुमता  
मरुद्भिः सा नः सीते पयसाभ्याविवृत्स्वोर्ज  
स्वती घृतघणित्व्यमाना ॥  
अ. ३११७९

घी और मधसे सिंचित हलकी रेपा सब देवों और वायु-कोंसे अनुमोदित हुई । हे हलकी रेपा ! तू घीसे सिंचित होकर हमें सब देनेवाली होकर दूधसे युक्त कर ।

शुनं सुफाला धि नुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा  
अनुयन्तु वाहान् । शुनासीरा हाविया तीश-  
माना सुविप्लवा गोपधीः कर्तमस्से ॥अ. ३११७९

सुन्दर हलके पाऊ भूमिकी उत्तम रीतिसे खोदें । किमान सुखसे बैलोंको चलावें । हे वायु और सूर्य ! तुम हविसे समृद्ध होकर हमके लिये उत्तम फलवृक्ष धान्य देवें ।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।  
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥  
अ. ३११७९

इन्द्र हलकी रेपाकी रक्षा करे, पूषा उसकी चारों ओरसे रक्षा करे । यह रसयुक्त होकर आगेके देवोंमें हमें अधिक अधिक रस प्रदान करे ।

नेदीय इत् रण्यः पफमायन् । अ. ३११७९

हंसूये परिपक धान्यको हमारे निकट ले आवें ।  
विराजः श्रुष्टिः सभरा वसन्नः । अ. ३११७९

अन्नको उपज हमारे लिये भरपूर हो जावे ।  
सीरा युञ्जति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।  
धीरा देवेषु सुन्नयौ ॥ अ. ३११७९

जो शानियोंमें उत्तम मनवाले बुद्धिमान् कवि हैं वे हल जोते हैं । और शर्मोंको पृथक् करते हैं ।  
भगो नो राजा नि कृपि तनोतु । अ. ३११८४

राजा भग हमारे लिये हृषिको बडावे ।  
युनक्त सीरा, धियुगा तनोत, कृते योनौ वप-  
तेह धीजम् ॥ अ. ३११७९

हल जोतो, सुधीरो फैला दो, भूमि तैपार करनेपर बीज वर्षां को दो ।

### जल

अप्सु मे सोमोऽप्रवात् । अन्तर्विभ्वानि भेपजा ॥  
अथर्व ११६१२

सोमने मुखे कहा कि जलमें सब औषधियां हैं ।  
अप्सन्तरमृतं अप्सु भेपजम् । अथर्व ११६१४

जलमें मद्य है, जलमें औषधि गुण है ।  
आपः पूर्णीत भेपजं वरूथं तन्ये मम । अ. ११६१३

हे जलो ! मुखे औषध से और मेरे शरीरको संरक्षण दो ।  
ईशाना वार्याणाम् । क्षयन्तीश्वर्पणीनाम् ।  
अपो याचामि भेपजम् ॥ अथर्व ११६१४

वरणीय सुखोंका स्वामी तू है । प्राणियोंका निवासक जल है । इस जलसे मैं औषधकी याचना करता हूँ ।  
आप इहा उ भेपजीरापो अमीषचातनीः ।  
आपो विश्वस्य भेपजीस्तास्त्वा मुञ्जन्तु क्षेत्रियात् ॥  
अ. ३११७९

जल औषधी है, जल रोग दूर करनेवाला है, जल सब रोगोंकी औषधी है, इस जलसे आनुवंशिक रोगसे तुझे मुक्त करता हूँ ।

अपं तेजो ज्योतिरोजो घलं च पनस्पतीनामुग  
धीयाणि । अग्निप्रधि धारयामा । अ. ११६१६

अलका तेज, प्रकाश, जोर, बल और वनस्पतियोंके पीर्य ( रस सुवर्णमें है ) उनका हम धारण करते हैं ।  
( आपः ) मद्ये रणाय चक्षसे ( दधानन ) ।  
अथर्व ११६१९

जल बरी हमनीपडाते द्वांनते लिये हमें धारण करे ।  
( हमारे अन्दा हमनीपठा रथे )

ता न आपः सं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।१-४  
वे जल हमारे लिये सुखदान्ति देनेवाले हैं ।

इमा आपः प्रभराभ्ययश्मा यश्मनाग्निनाः ।  
शृद्धानुप्रसोदाभि अमृतेन सदाग्निना ॥

अ. ३।१२।९

ये रोगनाशक और रोगरहित जल मैं भर लाता हूँ ।  
अमृत, अन्न और अग्निके साथ मैं घरोंमें जाकर बैठता हूँ ।

सं नः खनित्रिमा आपाः । अ. १।६।४

खोदकर निकाला जल हमें सुख देवे ।

श्रिया नः सन्तु वार्षिकीः । अ. १।६।४

वृष्टिसे प्राप्त जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

शम्भु सन्तु अनूप्याः । अ. १।६।४

जलपूर्ण प्रदेशका जल हमें शान्ति देवे ।

शम्भु या कुम्भ आभूताः । अ. १।६।४

जो जल घडेमें रखा है वह हमें शान्ति देवे ।

शं न आपो घन्वन्वाः । अ. १।६।४

रेतीले प्रदेशका जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

घृतश्च्युतः शुच्यो याः पावकास्ता न आपः

शं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।४

तेजस्वी, पवित्र, शुद्धता करनेवाला जल हमारे लिये  
सुखदायी हैं ।

शंयोरभिध्वन्तु नः । अथर्व १।६।१

जल हमें शान्ति और दृष्ट प्राप्ति देनेवाला होवे ।

शियया सन्वोप स्फुद्दात त्यच्च मे । अ. १।३३।४

अपना कल्याण करनेवाले शरीरसे मेरी स्वच्छाको स्पृशं करो ।

( हे आपः ! ) यो वः शिवतमो रसः तस्य

भाजयते ह नः । अथर्व. १।५।२

हे जलो ! जो आपमें कल्याण करनेवाला रस है, उसका

हमें भागी करो । ( हमें वह कल्याण करनेवाला गुग्गुलु  
भाग मिले । )

आपो जनयथा च नः । अथर्व. १।५।३

हे जलो ! हमें ब्रह्मणो ।

आपो भयन्तु पीतये । अथर्व १।६।१

जल हमारे पीनेके लिये, रक्षणके लिये हो ।

शियेन मा चभुया पद्यतापः । अ. १।३३।४

हे जलो ! कल्याणकारी नेत्रसे आप मुझे देखो ।

आपो हि ष्टा मयो भुवः ता न ऊर्जं दघातन ।

अथर्व. १।५।१

जल सचमुच सुखदायी है, वह जल हमें शक्ति दे ।

शं नो देवीरभिमृष्ये । अथर्व. १।६।१

दिव्य जल हमें शान्तिसुख देवे ।

तस्मा अरंगमावयो यस्य क्षयाय जिन्वथ । ।

अथर्व. १।५।३

जिनके निवासके लिये आप यत्न करते हैं, आपसे  
पर्याप्त मात्रामें ( वह बल ) प्राप्त हो ।

अपामुत प्रदास्तिभिरश्वो भवथ वाजिनः ।

गावो भवथ वाजिनाः ॥ अथर्व. १।४।४

जलके प्रशंसनीय गुणोंसे घोडे बलवान् होते हैं और  
गौवें बलशालिनी होती हैं ।

### सुभाषितोंका उपयोग

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंके सुभाषित यहाँ दिये  
हैं । ये इतने ही हैं ऐसा नहीं । संख्यामें वे सुभाषित  
अधिक भी हो सकते हैं । वे किस तरह अधिक हो सकते हैं  
यह इस लेखमें बताया ही है । व्यवहारमें उपयोगी सार्थ  
मत्र भाग सुभाषित कदा जाता है ।

सूरिरसि, चर्चोचा असि, तनूपा नोऽसि ।

अ. २।१।१४

तू शानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीर रक्षक है । यह  
एकमंत्र है, पर इसमें तीन सुभाषित हैं ।

### सिसिकी गोली

'तं त्या सिसिन विध्यामाः' उस तुम्हको सीसेसे  
हम वेध करेंगे । सीसेसे वेध करनेका अर्थ सिसिकी गोलीसे  
वेध करेंगे । गौका वध करनेवालेको या पुरुषका वध करने-  
वालेको सीसेकी गोलीसे वेध करनेका दण्ड कहा है ।  
सीसा था, सिसिकी गोली थी और गोलीसे वेध करनेका  
साधन बंदूक जैसा हतु था ऐसा यहाँ पता लगता है ।

जलघिक्रिसासे सब रोग दूर होते हैं ऐसा पाठक जलके  
सुभाषितोंमें देखेंगे । सुभाषितोंका उपयोग करनेकी रीति  
यहाँ बताई है । वेदके उपदेशको मानवी आचार और  
व्यवहारमें छानेकी रीति यह है । पाठक इसका उपयोग  
करके वैदिक जीवनसे व्यवहार करके अपना लाभ प्राप्त करें ।





# अथर्ववेद

का

सुकोष्क भाष्यम् ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सावरकर,  
साहित्य-वाचस्पति, चेदाचार्य, गीतालयार,  
भाष्यश्रवण-स्वाध्याय मंडल, मानदाश्रम पारसी [ नि. सुरत ]

तृतीय वार

सं. २००६, इ. १८५१, ग. १९५०

# ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।  
यो वेदं परमेष्ठिनं यश्च वेदं प्रजापतिम् ।  
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥

(अथर्व० १०।१०।१०)

“ ( ये ) जो ( पुरुषे ब्रह्म ) पुरुषमें ब्रह्म ( विदुः ) जानते हैं, वे ( परमेष्ठिनं ) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है, और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो ( ज्येष्ठं ब्राह्मणं ) ज्येष्ठ ब्राह्मणको जानते हैं, वे स्कम्भको ( अनुसंविदुः ) उत्तम प्रकार जानते हैं । ”



- ६ साम्मनस्यम्—जनतामें ऐक्य, मिलाप, प्रेम, एकता आदिही स्थापना के उपाय ।
- ७ राजकर्म — राजके लिये कर्तव्योपयोग्य कर्म ।
- ८ शत्रुनाशनम्—शत्रुको वध पहुंचानेका उपाय ।
- ९ सप्रामविजय— युद्धमें विजय संपादन करना ।
- १० शस्त्रनिवारणम्—शत्रुओंके शस्त्रोंका निवारण करना।
- ११ परसेनामोहनोद्वेजनस्वभनोच्चाटनादृतिम् —  
शत्रुसामें मोह भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग-  
मय उत्पन्न करना, उनकी हलचलको रोकना, उनकी  
उखाड़ देना आदिका साधन ।
- १२ स्वमेनोऽसाहपरिरक्षणभयार्थानि — अपनी सेनासा  
उत्साह बढ़ाना, और उसको निभंय करना ।
- १३ सप्राने जयपराजयपरीक्षा — युद्धमें जय होगा या परा-  
जय होगा इसका विचार ।
- १४ सेनापत्यादिप्रधानपुरवचयकर्मणि — सेनापति मंत्री  
आदि मुख्य अधिकारियोंके विजयका उपयोग ।
- १५ परसेनापचरणम्—शत्रुओंके सेनामें संचार करके गुप्त  
रीतिमें सब शान प्राप्त करना और वहाँके अपने ऊपर  
शान्तिवाले अनिष्टोंको दूर करना ।
- १६ शत्रुप्रायश्चित्तस्य राज्ञ पुन म्वराष्ट्रप्रवेदानम्— शत्रु-  
दोषा उपादे गये अपने राजाको पुन स्वराष्ट्रमें  
स्थापन करनेके उपयोग ।
- १७ पापश्रयकर्म—पतनेके माधनोंको दूर करना ।
- १८ गोपमूद्रित्प्रिपुष्टितराणि—गो बैल आदिकोंका संवर्धन  
और कृषिसा गोपय करना ।
- १९ गृहगम्यराणि—घरकी चौभा पशुओंके कर्म ।
- २० श्रेययानि — रोगनिवारक औषधियाँ ।
- २१ गमांजानादि कर्म — (जय संस्कार)
- २२ गमाजयगमापनम्—गमामें जय, विजयमें जय और  
कहाँ शान करनेके उपाय ।
- २३ पृष्टिगाननम्—योग समयात् वृष्ट करनेका उपाय ।
- २४ उपायानकर्म—शत्रुपर बर्खास्त करना ।
- २५ शान्तिगम्यजम्—जय विजय आदिमें साम ।
- २६ शान्तिगम्यजम्—जय उत्पानना ।
- २७ शान्तिगम्यजम्—शत्रुके अथवा शयय करना ।
- २८ शान्तिगम्यजम्—शत्रुके नाशक उपाय ।
- २९ शान्तिगम्यजम्—गुणके दत्तकार्यमें प्रथम ।
- ३० शान्तिगम्यजम्—शत्रुके अनुपपत्ति ।
- ३१ शान्तिगम्यजम्—

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अन्वय-  
यन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है । ये सब उपाय और  
कर्म मनुष्यमानके अभ्युदय निःश्रेयसके साधक होनेके कारण  
मानव जातिके लिये लाभदायक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो  
सकता । परन्तु यहाँ विचार इतनाही है कि, ये सब विषय अथर्व-  
वेदके सूक्तोंसे हम किस रीतिसे जानकर अनुभवमें ला सकते हैं ।  
निःसंदेह यह महान् और गंभीर तथा कष्टसे ज्ञान होनेवाला  
विषय है । इसलिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग  
देगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है, और  
गुप्त विषय अधिक खुल सकता है । क्योंकि किसी एक मनुष्यके  
प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी उत्पत्ति होना प्रायः अशक्य  
ही है ।

### (४) मनका संबंध ।

अथर्ववेदद्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकप्रतीति  
उत्पन्न हुए सामर्थ्यसे ही किये जाते हैं, क्योंकि आत्मा, मन,  
शुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अतः शक्तियोंसे ही अथर्ववेदका  
विशेष संबंध है, इस विषयमें देखिये —

मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्थान्यतरं पक्षं संस्क्रोति

(गोपय मा० ३।१२)

तद्वाचा प्रथया विचयैकं पक्षं संस्क्रते । मनसैव ब्रह्मा  
संस्क्रोति ॥

(ऐतरेय मा० ५।३३)

अर्थात् “ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद द्वारा वागीपर  
संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद  
द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है ।”  
मनुष्यमें वाणी और मन ये ही मुख्य दो पक्ष हैं । उन दोनोंसे  
ही मानवी उत्पत्तिके साधक अभ्युदय निःश्रेयस विपदक कर्म  
होते हैं ।

घातके रोग दूर करना हो अथवा राष्ट्रका विजय संपादन  
करना हो, तो ये सब कर्म मानसिक सामर्थ्यसे ही हो सकते हैं ।  
इसी लिये अथर्ववेदमें मनःशक्तिकी अभिशुद्धि द्वारा उक्त कर्म  
और विविध पुष्टार्थ गिद्ध करनेके उपाय बताये हैं ।

### (५) शांतिवर्णक विभाग ।

गमाज तथा राष्ट्रमें शांति स्थापन करना अथर्ववेदका  
मुख्य विषय है । यैनमय, शत्रुता, द्वेष आदि भावोंसे दूर  
करके मित्रता, एक विचार, सुमानसता आदिही दृष्टि करना  
अथर्ववेदका गोप्य है । इसी कर्मकी गिद्धिके लिये अथर्ववेदका  
एतनि प्रकरण है । इन प्रकरणमें कई प्रकारकी शान्तियाँ हैं,  
त्रिभवा मोक्षणा चैनं ददां करना उचित है —

- १ भूचाल, विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति ।
- २ आयुष्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शान्ति ।
- ३ अन्त्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आग्नेयी शान्ति ।
- ४ रोगादि निवृत्तिके लिये भागवी शान्ति ।
- ५ ब्रह्मवर्चस-ज्ञानका तेज प्राप्त करनेके मार्गमें आने वाले विघ्न दूर करनेके लिये प्राक्षी शान्ति ।
- ६ राज्यलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अर्थात् क्षात्र और ब्राह्म तेज की वृद्धि करनेके लिये चाईसत्य शान्ति ।
- ७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु अन्न आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति ।
- ८ शुद्धि करनेके लिये सावित्री शान्ति ।
- ९ ज्ञानसम्पन्नताके लिये गायत्री शान्ति ।
- १० धनादि ऐश्वर्य प्राप्त करने, शत्रुसे होनेवाला भय दूर करने और अपने शत्रुको उखाड़ देनेके लिये आग्निरसी शान्ति ।
- ११ परचक्र दूर हो और अपने राष्ट्रका विजय हो तथा अपना बल, अपनी पुष्टि और अपना ऐश्वर्य बढ़े इसलिये वेन्दि शान्ति ।
- १२ राज्यविस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति ।
- १३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढ़े इसलिये करनेयोग्य कौवेरी शान्ति ।
- १४ विद्या तेज धन और आयुष्य बढ़ानेवाली आदित्या शान्ति ।
- १५ भयकी विपुलता करनेवाली वैष्णवी शान्ति ।
- १६ वैभव प्राप्त करनेवाली तथा धनु सत्कारपूर्वक महादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोपत्या शान्ति ।
- १७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टोंसे बचानेवाली रौद्री शान्ति ।
- १८ विजय प्राप्त करनेवाली अपराजिता शान्ति ।
- १९ शत्रुका भय दूर करनेवाली याम्या शान्ति ।
- २० जलभय दूर करनेवाली धारणी शान्ति ।
- २१ वायुभय दूर करनेवाली धापण्या शान्ति ।
- २२ पुरुषभय दूर करनेवाली और पुत्रवृद्धि करनेवाली सन्नति शान्ति ।
- २३ यथादि भोग बढ़ानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली ग्यार्दी शान्ति ।
- २४ बालकोंके दृष्टपुष्ट करके उनको अपशुश्रुते बचानेके लिये कौमारी शान्ति ।

- २५ दुर्गतिसे बचानेके लिये नैऋति शान्ति ।
- २६ बलवृद्धि करनेवाली मासद्गणी शान्ति ।
- २७ घोड़ोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये गान्धर्वी शान्ति ।
- २८ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति ।
- २९ भूमिके सन्धी कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति ।
- ३० सब प्रकारका भय दूर करनेवाली अभया शान्ति ।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तिया अथर्ववेदसे सिद्ध होती हैं। इनक नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्यका जीवन सुसमय करनेके लिये ही इनका उपयोग नि संदेह है। वेदमंत्रोंका मनन करके प्राचान ऋषि मुनि अपनी-उच्चति की विचारण किस रीतिसे सिद्ध करते थे, इसकी कल्पना इन शान्तियोंका विचार करनेसे हो सकती है। कई शान्तियोंके नामोंसे पता लग सकता है कि किस ऋषिजी खोजसे किस शान्तिकर्मकी उत्पत्ति हुई। यदि वैदिक धर्म जीवित और जामत रूपमें फिर अपने जीवनमें डालना है तो पाठकोंको भी इसी दृष्टिसे विचार करना अत्यावश्यक है।

विविध इष्टियां, याग, ऋतु, मेघ आदिकी जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त पाठकी सिद्धता करनेके लिये ही है। इन सबका विचार बैसा है और इनकी थिदि किंग रीतिसे का जा सकती है इसका यथावति विचार आगे किया जायगा। परन्तु यहाँ निवेदन है कि पाठक भी अपना मुदि-योंको इस दृष्टिसे काममें लावें और जो खोज होगी वह प्रकाशित करें। भौतिक अनेक बुद्धियोंके एकत्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रकट हो सकती है अन्त्या इसके प्रकट होनेका कोई समभव नहीं है।

( ६ ) मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।

( ७ ) सूक्तोंके गण ।

अथर्ववेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम " अमय गण, अपराजित गण, सामामिक गण " इस प्रकार अनेक हैं । प्रथम कांडमें अपराजित गणके सूक्त निम्न-लिखित हैं—

- १ विद्या शरस्य पितरं ० ( १ । २ )
- २ मा नो विदन् वि ध्यायिनः ० ( १ । १९ )
- ३ अदारसुद्रवतु देव ० ( १ । २० )
- ४ स्वस्तित्वा विद्यां पतिः ० ( १ । २१ )
- इसके पश्चात् पष्ठकाण्डमें अपराजित गणके सूक्त निम्नलिखित हैं—
- ५ अय मनुः ० ( ६ । ६५ )
- ६ निर्हस्ताः शत्रुः ० ( ६ । ६६ )
- ७ परिवर्मानि ० ( ६ । ६७ )
- ८ अभिमूर्धनः ० ( ६ । ९७ )
- ९ इन्द्रो जयाति ० ( ६ । ९८ )
- १० आभि त्वेन्द्र ० ( ६ । ९९ )

कौनसा सूक्त किस गणमें है, यह समझनेसे उसका अर्थ करना, उसके अर्थका मनन करना और उससे बोध लेना, बड़ा शुभम हो सकता है । तथा गणोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी शुभम हो जाता है । इसलिये इस गणोंका विचार वेद पठनेके समय अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये । हम आगे बतायेंगे कि कौनसा सूक्त किस गणमें आता है और उसका परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है ।

पूर्वोक्त शांतिधर्मि जिन जिन शान्तिश्लोकों संबंध राज्यव्यवस्थासे है, उन शान्तिधर्मोंके साथ अपराजित गणके मंत्रोंका संबंध है, इस एक बातसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं । एक एक गणके विषयमें हम स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका आर्थिक विचार आगे करेंगे । उसका अनुसंधान पाठक करें इसी लिये यह बात यहाँ दर्शायी है ।

अब इन छह गणोंका विचार हो जायगा तब ही वेद की रिटा ज्ञात हो सकती है, अन्यथा नहीं । यहाँ यह भी रटत करना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ सम्बन्ध नहीं रखते अपौरु वे स्वतंत्र हैं अथवा उनका सम्बन्ध गणसूक्तोंके समान किंवा अन्य सूक्तोंके नहीं है ।

"स्वतंत्र-गूढत" और " गण-गूढत " इनका विचार करनेके लिये स्वतंत्र गूढतके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र रीतिसे करना चाहिये, और गणगूढतके मंत्रोंका मनन गणसूक्तोंके संबंध-का विचार करते ही करना चाहिये ।

( ८ ) अथर्ववेदका महत्त्व ।

ऋग्वेदसे ज्ञान, यजुर्वेदसे उत्तम कर्म और सामवेदसे उत्तम पुरुषकी उपासना, इन तीन काण्डोंका अभ्यास होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान और बल प्राप्त करनेके मार्ग बतानेका कार्य अथर्ववेद करता है । इस कारण इसको " ऋग्वेद " अथवा " आत्मवेद " भी कहते हैं ।

उत्तम ज्ञान, प्रशस्त कर्म और उत्तम पुरुषकी उपासना द्वारा अंतःशुद्धि होनेके पश्चात् ब्रह्मका ज्ञान संभवनीय है, इसलिये यह पूर्वोक्त वेदत्रयीसे भिन्न यह " चतुर्थ वेद " कहा जाता है ।

उपासक लोग आत्माको जगतमें ढूँढते ढूँढते एक गये, उस समय उनको साक्षात्कार हुआ कि " आत्माको जगतमें कहाँ ढूँढते हो ? यहाँ आत्मा और "अपने पासही उसे ढूँढो । "

अथर्ववेदनेमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति, तद्यदमवीदुयावाँऽहूँन-मेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति, तद्यवाँऽभवत् ॥

( गोपथ-ब्राह्मण १-४ )

" अब पासही उसे ढूँढो ! " वह पासही है । यह बात इस अथर्व [ अय-अर्वाद्=अययो ( क् ) ] वेदने कही, इसी लिये इसका नाम " अथर्ववेद " हुआ है । यह गोपथ ब्राह्मणका कथन अथर्ववेदका ज्ञानोद्धार कहाँतक है इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें कर रहा है । आत्माका पता अपने पासही लगना है, यह यताना अथर्ववेदके ज्ञानक्षेत्रमें है । इसी लिये इसका नाम " ऋग्वेद " है क्योंकि यही ब्राह्मणका ज्ञान बताता है ।

" धर्व " शब्द चंचलताका वाचक है । और " अ-धर्व " शब्द शांतिका अथवा एकामताका द्योतक है । आत्मानुभव अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार जो होना है, वह चित्तकी चंचलता इतनेके पश्चात् और चित्तशुद्धियोंका निरीक्षण होकर उसमें शांति आनेके पश्चात् ही होना है । यह आत्मज्ञानके मार्गकी सूचना इस प्रकार अपने नामसे ही इस अथर्ववेदने बता दी है । वेदके नामोंका महत्त्व पाठक यहाँ देख सकते हैं ।

" अथर्वत " ( अय-अर्वाद् ) इस शब्दका अर्थ " अब इव भोर " ऐसा होता है । जगतमें दो पदार्थ हैं, एक मैं और दूसरा मेरेसे भिन्न संपूर्ण जगत् । हरएक मनुष्य समसता है कि मेरेसे भिन्न पदार्थोंके ही मुझमें शक्ति आती है, मैं स्वयं अशक्त हूँ और शक्ति दूसरोंके प्राप्त होती है । इस सर्वोपाकरण विचारसे भिन्न पंडु अर्यंत अन्य विचार जो अथर्ववेद जनताके सम्मुख रखना चाहता है, वह यह है कि " अब शक्तिसे भिने अपनी ओर " ही देखो । उस जगत्में यह नियम देखो

कि श्रद्धे अंदरसे होती है, वृक्ष अंदरसे बढ़ते हैं, बालक अंदरसे बढ़ते हैं, अर्थात् शक्तिकी श्रद्धे अंदरसे ही रहती है, इसलिये अपने अंदर अपनी ओर देखकर विचार करो । बाह्य जगतमें न देखते हुए, परंतु उसके साथ अपनी शक्तियोंको जोड़कर अपनी उन्नतिके हेतु अपने अंदर देखो, शक्ति अपने अंदर है न कि बाहर है । यह अथर्ववेदकी शिक्षा अत्यंत महत्त्वकी है ।

इस अथर्ववेदका स्वाध्याय करना है । ब्रह्मवेद होनेके कारण

यह वेद संपूर्ण रीतिसे समझना कठिन है, इसलिये इस वेदके जितने मंत्र समझमें आवेंगे, उनकाही स्वाध्याय करना है । जिनका ठीक प्रकार ज्ञान नहीं हुआ उनके विषयमें हम कुछ भी नहीं लिखेंगे । तथा जो मंत्र स्वाध्यायके लिये यहां लेंगे उनके विषयमें थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमेंही जो कुछ लिखना हो यह लिखेंगे अर्थात् बहुत विस्तार नहीं करेंगे । परंतु जहाँतक हो सके वहाँतक कोई बात संदिग्ध नहीं छोड़ेंगे । इससे स्वाध्याय करने वालोंको बड़ी सुविधा होगी ।



# अथर्ववेद ।

## प्रथम--काण्ड ।

इस प्रथम काण्डमें छ अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मन्त्र हैं ।

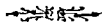
१ प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं, तीसरे सूक्तमें ९ मंत्र हैं; शेष पाच सूक्तोंमें प्रत्येकमें चार चार हैं। इस प्रकार इस अनुवाकमें २९ मन्त्र हैं ।

१ द्वितीय अनुवाकमें ( ७ से ११ तक ) पाच सूक्त हैं । सप्तम सूक्तमें ७ और ग्यारहवें में ६, शेष तिनमें प्रत्येकमें चार चार मन्त्र हैं । इस प्रकार कुल ३५ मन्त्र हैं ।

३ तृतीय चतुर्थ और पञ्चम अनुवाकों ( १२ से २० तक सूक्तों ) के प्रत्येक सूक्तमें चार मन्त्रवाले क्रमशः पाँच, पाँच और सात सूक्त हैं । इन तीनोंकी मन्त्रसंख्या ६० है ।

४ षष्ठ अनुवाकमें सात ( २१ से ३५ तक ) सूक्त हैं । २९ वें सूक्तमें छ मन्त्र और ३४ वें में पाँच मन्त्र हैं, शेषमें चार चार हैं । इस प्रकार कुल मन्त्रसंख्या ३१ है ।

इस ३५ सूक्तोंमें चार मन्त्रवाले सूक्त ३७ हैं, पाँच मन्त्रवाला एक, छः मन्त्रवाले दो, सात मन्त्रवाला एक, और नौ मन्त्रवाला एक है । यह सूक्त और मन्त्रविभाग देखनेसे पता लगता है कि यह अथर्ववेदका प्रथम काण्ड प्रधानतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका ढाँचा है। इसका प्रथम सूक्त यह है इनमें बुद्धि षडानेका विषय कहा है जिसका नाम “ मेधा-जनन” है—







# मेधाजनन ।

( १ ) बुद्धिका संवर्धन करना ।

( ऋषिः—अथर्षा । देवता—वाचस्पतिः । )

ये त्रिपुस्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्वेत्ता तेषां तन्वोऽग्र्य दधातु मे ॥१॥

अन्वयः— विश्वा रूपाणि विभ्रतः, ये त्रि-सप्ताः परियन्ति, तेषां तन्वः यत्ना वाचस्पतिः अद्य मे दधातु ॥१॥

अर्थ— सब रूपाँको धारण करके, जो तीन-गुणा-सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं, उनके धारणके बल वाणीका रक्षामी भाग मुझे देवे ॥१॥

पदार्थ दो प्रकारके हैं एक रूपवाले और दूसरे रूपरहित । आत्मा परमात्मा रूपरहित है और संपूर्ण जगत् रूपवाले पदार्थोंसे भरा है । पदार्थोंके विविध रूप जो मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति पाषाण आदि में दिखाई देते हैं—कौन धारण करता है, ये रूप कैसे बनते हैं ? इस स्रष्टाके उत्तरमें वेद कह रहा है, कि जगत्के मूलमें जो सात पदार्थ-पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और अहंकार—हैं ये ही संपूर्ण जगत् में दिखाई देनेवाले विविध रूप धारण करते हैं । ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओंमें गुजरते हुए जगत्के रूप और आकार धारण करते हैं । ( १ ) सत्य अर्थात् समापस्था, ( २ ) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था और ( ३ ) तम अर्थात् गतिहीन अवस्था, इन तीन अवस्थाओंमें पूर्वोक्त सात पदार्थ गुजरनेसे इत इतीव पदार्थ बनते हैं, जो संपूर्ण सृष्टिका रूप धारण करते हैं ।

सृष्टिके हर एक आधारधारी पदार्थमें यही शक्ति है । हमारा शरीर भी सृष्टिके अंतर्गत होनेसे एक रूपजन पदार्थ है और इसमें भी पूर्वोक्त " तीन गुण सात " पदार्थ हैं । और इन्हीं कारण शरीरके अंदरके इन इतीव तत्वों का संबंध बाप जगत् के प्रत्येक इतीव तत्वोंके साथ है । शरीरका रक्षाम्य या रोगीयन इन संबंधके शीक होने और न होनेपर अवलंबित है । शरीरान्तर्गत इन तत्वोंके बाप जगत्के तत्त्वोंके साथ योग्य संबंध रहने द्वाय अपना आरोग्य रिया करके अपना बल बढ़ाने बढानेकी सुचना इस मंत्रद्वारा यहाँ मिलती है । जेने बाप शुद्ध शत्रुसे अपना प्राणदा बल, बाप सृष्टि-प्रदायनी

अग्ने नेत्र का बल, इसी प्रकार अग्न्याय बल बड़ा कर अपनी शक्ति पराधाष्टातक बढानी चाहिये । यह अपर्ववेदका मुख्य विषय है ।

जगत्का तत्त्वज्ञान जानकर, जगत् का अग्ने साथ संबंध अनुभव करके, अपना बल बढानेकी विद्याका अभ्यसन करके, उसका अनुष्ठान करना चाहिये । यह उक्तविद्या मूल मंत्र इस प्रथम मंत्रमें बताया है । यहाँ प्रश्न होता है, कि यह विद्या कीनसे सम्बन्ध है ? उत्तरमें मंत्रने बताया है कि " वाचस्पति " ही उस ज्ञान देनेमें समर्थ है ।

" वाचस्पति " कीन है ? वाच्, वाच्, वाणी, बहवृत्, उपदेश, व्याख्यान ये समानार्थक शब्द हैं । बहवृत् करने-वाला अर्थात् उत्तम उपदेशक शुद्ध ही यहाँ वाचस्पतिसे अभि-प्रेत है । इस अर्थके लेनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रथा हुआ-

" मूल सात तत्त्व तीन अवस्थाओंमें गुजर कर गद्य जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाने हुए सर्वत्र फैल है । इनके बलोंको अपने अन्दर धारण करनेकी विद्या व्याख्याता शुद्ध माननी मुझे पढ़ाने । "

पुनरोहिं वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥ ।  
इहैवाभि वि तनुभे आर्त्ता इय ज्यया । वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

अन्वयः— हे वाचस्पते ! देवेन मनसा सह पुनः पुहि । हे वसोष्पते ! निरमय । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ २ ॥

ज्यया उभे आर्त्ता इव, इह एव उभौ अभि वि तनु । वाचस्पतिः नि यच्छतु । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— हे वाणीके स्वामी ! दिव्य मनके साथ सम्मुख आओ । हे वसुओंके स्वामी ! मुझे आनंदित करो । पढा हुआ ज्ञान तुझमें स्थिर रहे ॥ २ ॥

बोरीसे धनुष्यकी दोना कोटियोंकी तरह, यहाँही (दोनोंको) तनाओ । वाणीका पति नियमसे चले । पढा हुआ ज्ञान मेरेमें स्थिर रहे ।

इस मंत्रमें प्रारंभमें ही "पुनः" शब्द है । इसका अर्थ "वारंवार, पुनः पुन अथवा संमुख" है । शिष्य विद्याकी एक ओर और गुरु दगरी ओर होना है, इसलिये गुरु शिष्यके सम्मुख और शिष्य गुरुके सम्मुख होते हैं । इन दोनोंको इधी प्रकार रहना चाहिये । यदि ये परस्पर सम्मुख न रहे तो पढाई अर्थात् न रहे ।

गुरु (देवेन मनसा) देवी भावनासे गुरु मनसेही शिष्यके साथ बर्तान करे । मन दो प्रकारके हैं—एक देव मन, और दुसरा राक्षस मन । राक्षस मन जगत् में क्षणके उत्पन्न करता है और देव मन जगत्में शांति रखता है । गुरु देवमनसे ही शिष्यको पढाये ।

गुरु शिष्यसे ( नि रमय ) रममाण करे, अर्थात् ऐसा पढाये कि जिससे शिष्य आनंदके साथ पढता जाय । इस शब्दके द्वारा पढाईकी "रमण पद्धति" वेदने प्रकट की है । रमणे निज "शेदन पद्धति" है जिसमें रोते हुए शिष्य पढाये जाते हैं ।

"हे उत्तम उपदेश करनेवाले गुरु ! देव भावसे गुरुक मनसे ही शिष्यके सम्मुख जा । हे आन्यादि वसुओंके प्रयोग कर्ता गुरु ! तू शिष्यको रमाता हुआ उसे विद्या पढाओ । शिष्य भी कहे कि पढा हुआ ज्ञान अपने अंदर स्थिर रहे ॥"

अथर्ववेद पिप्पलाद-संहितामें मंत्रका प्रारंभ "उप नेह" शब्दसे होता है और "वसोष्पते"के स्थानपर "असोष्पते" पाठ है । असुपति ( असोः पति ) का अर्थ प्राणीका पति गुरु । "प्राणीका पति" अर्थात् योगादि साधनद्वारा प्राणीको स्वाधीन रखनेवाला उपाय योगी गुरु ही । यह शब्द भी गुरुका एक उपाय लक्षण बता रहा है ।

धनुष्यकी दोनों कोटियों बोरीसे तनी रहती हैं इस तनी हुई अवस्थामें ही धनुष्य विजयका साधन हो सकता है । जिस समय दोनों कोटियोंसे बोरी हट जाती है उस समय यह धनुष्य शत्रुनाश या विजय प्राप्त करनेमें अमर्ष हो जाता है । इधी प्रकार जाति या समाजरूपी धनुष्यकी दो कोटियाँ गुरु और शिष्य हैं, इन दोनोंकी विचाररूपी बोरी बांधी गयी है और इस बोरीसे यह धनुष्य तना हुआ अर्थात् अपने कर्ममें भिद्य रहता है । समाजको यह धनुष्य शत्रु सिद्ध रखना चाहिये । इधीकी सिद्धतासे जाति, समाज या राष्ट्र जातित, आमन और उन्नत रहता है । जिस समय विद्याकी बोरी गुरु शिष्यरूपी धनुष्यको हट जाती है उस समय अज्ञान-भ्रम हटानेके कारण जाति पतित हो जाती है ।

उपहृतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम् । सं श्रुतेर्न गभेमहि मा श्रुतेन वि राधिपि ॥ ४ ॥

अन्वयः— वाचस्पतिः उपहृतः । वाचस्पतिः अस्मान् उपह्वयताम् । श्रुतेन सद्गभेमहि । श्रुतेन मा वि राधिपि ॥ ४ ॥

अर्थ— वाणीका स्वामी बुलाया गया । वह वाणीका स्वामी हम सबको बुलावे । ज्ञानसे हम सब गुप्त हों । हम ज्ञानके साथ नहीं विरोध न करें ॥ ४ ॥

स्थिर रखनेके लिये अग्नि दृष्ट रहे । पहिले पडा हुआ ज्ञान स्थिर रहा तो ही आगे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । यह भाव ध्यानमें धरनेसे इस योगका अर्थ निम्न प्रकार होता है—

“ जिस प्रकार कोरीसे धनुषकी दोनों कोटियाँ विजयके लिये तनी होती हैं, उसी प्रकार गुरु और शिष्य वे समाप्तकी दो कोटियाँ बियासे सज्ज रखिये । आचार्य स्वयं नियमानुसार चलें और शिष्योंको नियमानुसार चलें । शिष्य अध्ययन किया हुआ ज्ञान हृदयकरके आगे बढ़े ॥”

“ उपहृत ” का अर्थ “ बुलाया, पुकारा, आह्वान किया ” अथवा पूछा गया ” है । उत्तम व्याख्याता गुरुको हमने बुलाया और उसे प्रश्न पूछे गये अर्थात् विद्याका व्याख्यान करनेके लिये उसे आह्वान किया गया है । गुरु भी शिष्यके प्रश्न सुनकर उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर देकर उनका समाधान करे । अर्थात् गुरु कोई बात शिष्यसे छिपाकर न रखे । इस प्रकार दोनोंके परस्पर प्रेमसे विद्याकी शक्ति होती रहे ।

हरएक अपने मनमें यह इच्छा रखे कि “ हम सब ज्ञानमें गुप्त हों, ज्ञानकी वृद्धि करते रहें और कभी ज्ञानकी प्रगतियों याथा न बालें, ज्ञानका विरोध न करें और मिथ्या ज्ञानका प्रचार न करें ।”

इस स्वस्वीकरणका विचार करनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है—

“ हम तत्त्व व्याख्याता गुरुसे प्रार्थना करते हैं । यह हमें योग्य उत्तर देवे । हम [ प्रश्नेत्तरकी रीतिसे हम सब ] ज्ञानमें गुप्त होते रहें और कभी हमने ज्ञानकी उन्नतियों याथा उत्पन्न न हो ।”

अंदर स्थिर करनेकी विद्या ] गुरु हमें मिलावे ॥ १ ॥ हे गुरु ! तुमने हमें शुभ संकल्प धारण करके हमारे सम्मुख था, हमें समाने [ हुए पदा ] प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ २ ॥ दोरीमें दोनों धनुषकोटियोंके तनाके समान यहां तु [ विद्यासे हम दोनोंसे ] तथा [ कर बांध दे ] गुरु नियमने चले और हमें चलाये । ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हम गुरुसे प्रश्न पूछते हैं, यह हमें उत्तर देवे । हम मय दानी बनें कोई भी ज्ञानका विरोध न करे ॥ ४ ॥

इन मंत्रोंका जितना मनन होगा, इनपर जितना विचार होगा, उतना ज्ञान बढ़ानेका उपाय— ( मैधाजनन )— हो सकता है । आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करें और अपने परिस्थितियोंमें अपने ज्ञानकी वृद्धि करनेके उपाय सोचें । इसमें निम्न-लिखित पांच बातोंका अवश्य विचार हो—

१ विद्या— जिसे जगत् बनता है उन गुरुवर्योंका ज्ञान प्राप्त करना और उनका अपने उत्तरिते संबंध देना तथा उनका अनुष्ठान करनेका विधि जानना, यही गौतमयोग्य विद्या है ।

# विजय-सूक्त ।

( २ )

यद् " अपराजित गण" का प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि " अथर्वा 'और देवता " 'पञ्चम्य' है ।

विद्वा शरस्य पितरं पञ्चम्यं भूरिधायसम् । विद्वो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिर्वपसम् ॥१॥

ज्यांके परि णो नुमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषास्या कृधि ॥२॥

वृक्षं यद्वावंः परिपस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्युभम् । शरुमस्मधावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजन्म् । एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

अर्थ— ( शरस्य ) शरका, बाणका पिता ( भूरि-धायसं पञ्चम्य ) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पञ्चम्य है यह ( विप्र ) हम जानते हैं । तथा ( अस्व ) इसका माता ( भूरि-वपसं ) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें ( सुविप्र ) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे ( ज्याके ) माता ! ( नः ) हम सब पुत्रोंको ( परि नम ) परिणत कर अर्थात् हमारे ( तन्वं ) शरीरको ( अश्मानं ) पत्थर जैसा सुदृढ ( कृधि ) कर ( वीडुः ) बलवान बनकर ( अ-राती ) अशानके भावोंको तथा ( द्वेषांसि ) द्वेषोंको अर्थात् सब शत्रुओंको ( वरीयः ) पूर्ण रीतिसे ( अप कृधि ) दूर कर ॥ २ ॥ ( यत् ) जिस प्रकार ( वृक्षं ) वृक्षके साथ ( परिपस्वजाना ) लिपटी हुई या बंधी हुई ( गावः ) गौएँ अपने ( अस्त्रं शरं ) तेजस्वी पुत्र शरको ( अनुस्फुरं ) पुर्णके साथ ( अर्चन्ति ) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! ( अस्मत् ) हमसे ( दिद्युं शरुं ) तेज-पुत्र बाणको ( यामय ) दूर बटा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार ( या ) सुलोक और पृथ्वीके ( अन्तः ) बीचमें ( तेजन् ) तेज ( तिष्ठति ) होता है, ( एव ) इसी प्रकार यह ( मुञ्ज ) मुंज ( रोगं च आस्त्रावं च ) रोग और सायके ( अन्तः ) बीचमें ( इत् तिष्ठतु ) निवचयसे रहे ॥ ४ ॥

भाषार्थ— धारण-पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पञ्चम्य है, कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे शर शरकंडा-पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ माता पुत्रके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओंको पूरा रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौएँ अपने बछड़े को वेगसे प्राप्त करना चाहती हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज शर हमसे आगे बड़े ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सुलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रवास होता है, उसी प्रकार रोग और साय-धाय के बीचमें शर ठहरे ॥ ४ ॥

५ गुरु शिष्य- शब्द धनुष्यके दोनों नोक जिस प्रकार झीरीसे लगे रहते हैं, उस प्रकार विद्यात्मी झीरीसे समाजके गुरु-शिष्य-रूपी दोनों नोक एक दूसरेमें पूर्णतया संबंध रहे । कभी उनमें श्लेषन न आजाये ।

यद् सब सूक्त शिष्यके सुखशान्ति उच्चारित होनेके समान है, इसमें अनुमान होगा है कि गुरुको जाने, रखने आदिके प्रबंधादि व्यवस्था उत्तरदायक शिष्यों या शिष्योंके संरक्षकों पर ही पूर्णतया है ।

## अनुवन्धान

इस प्रथम सूक्तमें " विधावनन " अर्थात् बुद्धि का संबंधन

करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुरु, शिष्य तथा विद्यालय आदिका संबंध किस रीतिसे करना चाहिये, गुरु किस प्रकार पढ़ावे, शिष्य किस ढंगसे पढ़े और दोनों मिलकर राष्ट्रकी उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार किया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढाई शुरू होती है, जिसमें अपराजित गणका सूक्त " विद्वा शरस्य पितरं " यह है । अथर्व-वेदमें यह द्वितीय सूक्त है । गुरुताय सूक्त जो इसी भागमें प्रारंभ होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार अब करते हैं—

यद् भाव में भी परिपूर्ण नहीं क्योंकि इन मंत्रोंके द्वारा एक भाग पीछे का संबंध देयकर जो भाव व्यक्त होता है, वह जानकर ही मंत्रोंका सत्ता भाषार्थ जानना चाहिये । यह भाव,

देखनेके लिये भागेका स्पष्टीकरण देखिये—

### (१) वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्तमें पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बतयि है—

- १ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो, ( मंत्र १ )
- २ शरीर बलवान बनाया जावे, ( मंत्र २ )
- ३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे, ( मंत्र २ )
- ४ शरीरमें कुर्त्ता लाई जावे, ( मंत्र ३ )
- ५ जगत्में अपना तेज फैलानेका यत्न किया जावे, ( मंत्र ४ )
- ६ शोषणों से रोगोंको दूर किया जावे, ( मंत्र ४ )

पाठक विचारकी दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करेगे तो उनकी उक्त छः भाव वैयक्तिक उन्नतिके साधन पूर्वोक्त चारों मंत्रोंके अन्दर गुमरूपसे दिखाई देगे। इनका विशेष विचार होनेके लिये यहाँ मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पष्टीकरण दिये जाते हैं—

### (२) पिताके गुण-धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं—“ पिता, पर्जन्य, भूरिधायस्, वृक्ष, यीः।” इनके अर्थोंका बोध होनेसे पिताके गुण धर्म कर्मोंका बोध हो सकता है; इसलिये इनका आशय देखिये—

- १ पिता - ( माता ) रक्षा, संभालनेवाला ।
- २ पर्जन्यः - ( पूर्ति+जन्म ) पूर्ति करनेवाला, पूर्णता करनेवाला । न्यूनताको दूर करनेवाला ।
- ३ भूरिधायस् - ( भूरि ) बहुत प्रशारसे ( धायस् ) धारण धोषण करनेवाला, दाता, उदारचरित ।
- ४ वृक्षः - आभार, स्वयं धूप सहकर दूसरोंको छाया देनेवाला ।

### (३) माताके गुण-धर्म-कर्म ।

“ माता, पृथिवी, भूरिवर्षस् उद्याका, गौ ” ये पाच शब्द पूर्वोक्त मंत्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंको प्रकट कर रहे हैं। इनका अर्थ देखिये—

- १ माता - बालकोंका दित करनेवाली ।
- २ पृथिवी - समाशाल, सहनशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली ।
- ३ भूरिवर्षस् - ( भूरि ) बहुत ( वर्षस् ) उद्योगतासे कर्म करनेमें समर्थ, कर्ममें अत्यंत कुशल, सदा कर्म करनेमें दक्ष, परिवारकी उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली ।
- ४ ज्या, ज्याका - ( ज्या-जया ) जयका धाधन करनेवाली, माता, पृथिवी, रक्षी, बलशालिनी ।
- ५ गौः - प्रगतिशील, दुग्धादिद्वारा पुत्रोंकी पुष्टि करनेवाली । किरण, स्वर्ग, रत्न, वाणी, सरस्वती, माता, जल, नेत्र, आकाश सूर्य आदिके शुभगुणोंसे युक्त ।

माताके गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं। अर्थान्—“ बालबच्चोंका दित करनेवाली समाशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये करनेयोग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहनेवाली, बहुतही कुशलतासे अपने पुत्रबच्ची उन्नति करनेमें समर्थ, बलशालिनी, गौके समान दुग्धादिद्वारा बालबच्चोंकी पुष्टि करनेवाली, किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली, स्वर्गके समान गुणदायिनी, रत्नके समान घरकी घोसा बढानेवाली, शुभ भाषण करनेमें चतुर, विदुषी, अलके समान गति बढानेवाली, नेत्रके समान मार्ग दर्शनेवाली, आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली, सूर्यके समान अहानान्धकार दूर करनेवाली माता होनी चाहिये।”

पिताके गुणधर्मधर्म पहिले बतये, और यही माताके गुण धर्म बतये हैं। ये आदर्श माता पिता हैं, इनसे जो पुत्र पैदा होगा और पाता तथा बडादा जयगा, बढेगा तथा ब. पुत्रही होगा तथा पुत्रो भी उही प्रकार बीता बनेगी हममें सब सदैव है !

४ ऋसुः—बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी ।

५ शरुः—शत्रुका नाश करनेवाला ।

६ द्विगुः—तेजस्वी ।

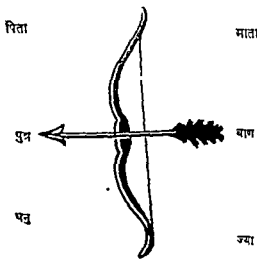
७ तेजनः—प्रकाशमान ।

८ सुजः—(सुभक्ति मार्जयति) शुद्धता और पावित्रता करनेवाला ।

पुन ऐसा हो कि जो “शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हो, सुदृढ अंगवाला हो, शर, बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी, यशस्वी और पवित्र आचारवाला हो।” माता पिताको उचित है, कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें ये गुणधर्म और कर्म बढें और इन गुणोंके द्वारा कुलका यश फैले ।

यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्वोक्त गुणधर्म कर्मोंसे युक्त मातापिता हमें तो उनके पुत्रों और पुत्रियोंमें ये गुणधर्म आ सकते हैं ।

### (५) एक अद्भुत अलंकार



इस सूक्तमें बाण, पशुपत्य और ढोरीके अलंकारसे एक महत्त्वपूर्ण बातका प्रकाश किया है । पशुपत्यका सक्त भाग विषयक ढोरी चर्माई जाती है वह पुरुषरूप समक्षिण, ढोरी नागरूप है और पुत्र बाणरूप है । पिताका बल और माताकी देला इनसे युक्त होकर पुत्र संसारमें पैदा जाता है । वह संसारमें जाकर अपने शत्रुओंका नाश करके यशका मागी होगा है । इस अलंकारका विचार पाठक करने तो जनकों

बढाही बोध प्राप्त हो सकता है । पुत्रकी उन्नतिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकारसे पाठकोंके मनमें आ सकती है ।

ढोरीके विना केवल धनु जैसा शत्रुनाश करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार खींके विना पुरुष असमर्थ है । तथा जिस प्रकार धनुके विना ढोरी कार्य करनेमें असमर्थ है उसी रीतिसे पुरुषके विना खीं असमर्थ है । माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षाद्वारा सुशिक्षित बना पुत्र ही जगतमें यशस्वी होता है । यह अलंकार गृहस्थियोंको बढाही बोधप्रद हो सकता है ।

पिताके सूचक “पर्जन्य, वृक्ष” आदि शब्द तथा माताके सूचक “पृथिवी” आदि शब्द उनका ऋतुगामित्व होकर प्रज्ञाचारी होनेकी सूचना कर रहे हैं । [ इस विषयमें स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित “ब्रह्मचर्य” पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी, पर्जन्य और वृक्षोंके ब्रह्मचर्यका प्रकरण अवश्य देखिये ]

### (६) कुटुम्बका विजय ।

व्यक्तिकी उन्नतिके विषयमें पहिले बतायाही है कि वैयक्तिक विजय की सूचनाएं इस सूक्तमें किस रूपमें हैं । कुटुम्बके या परिवारके विजयका संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा स्पष्टीकरणके देखनेसे स्पष्ट हो सकता है । कुटुम्बका विजय माता पिताके उत्तम कर्तव्य पालन करने और सुपूजा निर्माण करनेसे ही प्राप्त होना है ।

(मंत्र १) जैसा “अनेक प्रकारसे पोषण करनेवाला पर्जन्य पिता ऋतुगामी होकर वर्षा ऋतुमें अपने जलरूपी बौधका धिचन उत्तम उपजाऊ भूमिमें करता है और शररूपी विजयी संतानकी उत्पाति करता है,” तद्वत् माता पिता ऋतुगामी होकर वीर पुत्र उत्पन्न करें ।

(मंत्र २) “हे जयका साधन करनेवाली माता ! अपने पुत्रोंका शरीर पशुपत्य जैसा सुदृढ बना, जिससे पुत्र बलवान् बनकर अपने शत्रुओंको दूर कर सके ।”

(मंत्र ३) —“जिस प्रकार वृषके साथ बंधी हुई गीर्ष अपने तेज बढेकेको चाहती है” [ उभी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने शिष्य तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे ] । अथवा— “(पुरुष) पशुपत्यके साथ रहनेवाली ढोरी तेजस्वी ( शर ) बाण ही वेगसे छोडती है ।” [ उभी प्रकार पतिकी उत्पासना करनेवाली स्त्री वीर पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे ] । “हे (शत्रु) परमा-

धन् ! हमसे तेजस्वी ( शशः ) धाणके समान तेजस्वी पुत्र चले अर्थात् उत्पन्न हो । ” [ मातापिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र हो कि जो दूर दूर जाकर जगत्में विजय प्राप्त करे । ]

(मंत्र ४) - “ जिस प्रकार [ पिता ] युलोक और [माता] पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [ पुत्ररूपसे ] रहते हैं, ” [ उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी सुंदर बालक चमकता रहे । ] “ जैसा मुझ शर रोग और लावके घावके बीचमें रहना है ” अर्थात् उनको दूर करता है उसी प्रकार [ यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग घावके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे ]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड़ दिये हैं, जिससे पाठकोंके पता लग जायगा, कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है । जातिके या राष्ट्रके विजयकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबकी छुट्टियाँ तथा सुप्रजा निर्माणपर ही अवलंबित है । जो लोग राष्ट्रीक उन्नति चाहते हैं, वे अपनी उन्नतिकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबमें रखें । आदर्श कुटुंब-व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है ।

### (७) पूर्वापर-सम्बन्ध

पहिले सूक्तमें विद्या पढानेका उपदेश दिया है । इस द्वितीय सूक्तसे पढाईका प्रारंभ हो रहा है । विद्याका प्रारंभ बिल्कुल साधारण बातसे ही किया गया है । पास थी उपनिष्ठा विषय हरएक स्थानके मनुष्य जानते हैं । “ मेघसे पानी गिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है इसलिये घासका पिता मेघ और माता भूमि है । ” इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है । इतनी साधारण घटनाका उपदेश करते हुए “पिता-माता-पुत्र” रूपी कुटुंबकी उन्नतिकी शिधा किस ढंगसे बेदने बतायी है यह पाठक यहाँ देख चुके हैं । पासके अंदर मुझ या शर एक जातिका पास है । यह सर-कांठा स्वयं शत्रुका बध करनेमें समर्थ नहीं होता । क्योंकि कोमल रहता है । परंतु जब उसके साथ कठिन छोड़ेका संयोग किया जाता है और पीछे पर लगाने जाते हैं, तब वही कोमल शरकेटा घनुष्यपर चक्कर डोरतीकी गति प्राप्त करके शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है । इसी प्रकार कोमल बालक गुरु गुरुकी कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य पालनरूपी कठिन

वज्रसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिकी एक मार्गमें रखता हुआ अपने कुटुंबके, जातिके तथा राष्ट्रके शत्रुओंको भगा देनेमें समर्थ होता है ।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें घनुष्यकी उपमा देकर बताया है कि “गुह शिष्यरूपी घनुष्यकी दो कोटियाँ विद्यारूपी डोरीसे तनी हैं । ” प्रथम सूक्तमें यह अलंकार भिन्न उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका घनुष्यका दृष्टांत भिन्न उपदेश दे रहा है । दृष्टांतमें एकदेशी बातकी ही देखना होता है, इसलिये एक ही दृष्टांतसे भिन्न उपदेश देना कोई दोष नहीं है । प्रथम सूक्तके दृष्टांतमें भी डोरीका स्थान विद्या माता अर्थात् घरस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्व का सादृश्य है ।

जंगलमें वृक्षके साथ बंधी हुई गाय भी अपने बछड़ेका स्मरण करती रहती है, गायका बछड़ेके ऊपर का प्रेम सबसे बढिया प्रेम है । इस प्रकारका प्रेम अपने बालकके विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये । अपना बालक अति तेजस्वी ही, अति यशस्वी ही, यही भावना माता मनमें धारण करे और इस भावनाके साथ बढि माता अपने बालकको दूध पिलावेगी, तो उक्त गुण पुत्रमें नि संदेह उतरेंगे । इस विषयमें तृतीय मंत्र मनन करनेके योग्य है ।

### (८) कुटुंबका आदर्श ।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुंबका नमूना घन्मुख रखा है । युलोक पिता, भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक इनका पुत्र है । अपने घरमें भी यही आदर्श होवे । आकाश और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक चमकता रहे । कितना उच्च आदर्श है । हरएक गृहस्थी इसका स्मरण रखें ।

### (९) औपधिप्रयोग ।

मुझ पास अपने रत्न आदिसे अनेक रोगों और अनेक व्यर्थोंको दूर करता है, क्योंकि मुझ गोबध, सुदृढता तथा निर्मलता कामेवाला है । इसलिये स्पष्ट है कि यदि गोबधता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बनाया जाय तो रोगादि दूर रह करते हैं । हरएकके लिये यह सूचना अपनाने योग्य है ।

मुझ या शर औपधिप्र प्रयोग करके पावके रोग तथा मृत्पात आदि रोग दूर होते हैं । इस विषयका सूक्ष्म उप-देश इस सूक्तके अन्तमें है । वैय मोग इसका विचार करें ।

## (१०) राष्ट्रका विजय ।

व्यक्ति, कुटुंब, जाति, देश तथा राष्ट्रके विजयपूर्ण अभ्युदयके नियमोंमें समानता है। पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते हैं। व्यक्तिका कार्यक्षेत्र छोटा और राष्ट्रका विस्तृत है, छोटेपन और विस्तृतपन की बातको छोड़नेसे दोनों स्थानोंमें नियमोंकी एकरूपताका अनुभव आ सकता है।

उद्धृष्टवशा ही विस्तृत रूप राष्ट्र है, ऐसा मान लें और पूर्व स्थानमें एक घर या एक परिवारेके विषयमें जो उपदेश बताया है, वही विस्तृत रूपसे राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकोंको राष्ट्रीय उन्नतिकी नियम पूर्वोक्त रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा।

परमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है; घरमें माता प्रबंधकर्त्री है, राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रसभा प्रबंधकर्त्री है। घरमें पुत्र वीर बनाया जाता है और राष्ट्रमें बालचमुओंमें वीरता बढ़ाई जाती है। इत्यादि साम्य देखकर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णन किये हुए पिता, माता और

पुत्रके गुणधर्मकर्म यहाँ राष्ट्रीय क्षेत्रमें अतिविस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोंको अतिस्पष्ट हो जायगी। इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्नलिखित प्रकार होगा—

“ प्रजाका उत्तम धारणपोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही घरका सच्चा पिता और उसकी माता बहुत कमाकी प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि ! हम सबके शरीर अति सुदृढ हों, जिससे हम सब उत्तम बलवान बनकर अपने शत्रुओंको भगा देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार गौ अपने बछड़ेका हित सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर ! मातृभूमिके प्रेमसे बड़े हुए वीर आगे बढ़ें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें वीर चमकते रहें। तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि भयसे दूर हों ॥ ४ ॥

साधारणतः यह आशय अतिव्येक्ष्य है। पाठक इस प्रकार विचार करें और वेदके आशयको समझनेका यत्न करें।

## आरोग्य-सूक्त ।

(३)

पूर्व सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञान हुआ कि परमेश्वर पिता है, पृथ्वी माता है और इनके पुत्र वृक्षवनस्पति आदि सब हैं। यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि, क्या परमेश्वरके समान सूर्य, चंद्र, वायु आदि भी वृक्षवनस्पतियोंके लिये पितृस्थानीय हैं वा नहीं, क्या इनके न होते हुए, वेबल अकेला एक ही परमेश्वर तृणादि की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है ? इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है—

[ ऋषि—अथर्वा । देवता—( मंत्रोंमें उक्त अनेक ) देवताएँ ]

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्यम् ।

तेना ते तन्वेदुं शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं हिर्ये अस्तु बालिति ॥ १ ॥

विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्यम् ।

तेना ते तन्वेदुं शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं इहिर्ये अस्तु बालिति ॥ २ ॥

विद्या शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्यम् ।

तेना ते तन्वेदुं शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं इहिर्ये अस्तु बालिति ॥ ३ ॥



विद्या शरस्य पितर चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।

तेनां ते तन्त्रे इं शं करं पृथिव्यां तं निपेचनं ग्रहिष्टं अस्तु नालिति ॥ ४ ॥

विद्या शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।

तेनां ते तन्त्रे इं शं करं पृथिव्यां तं निपेचनं ग्रहिष्टं अस्तु नालिति ॥ ५ ॥

अर्थ— ( विद्या ) हमें पता है कि शरके पिता ( शत-वृष्ण्य ) सैकड़ों बलोंसे युक्त परमंय, मिन, बरुण, चंद्र, सूर्य ( ये पाच ) हैं। ( तेन ) इन पांचों की धीसे ( ते त-व ) तेरे शरके लिये मैं ( श कर ) आरोग्य करूँ। ( पृथिव्या ) पृथिवीके अन्दर ( ते निपेचनम् ) तेरा सिंचन हावे और सब दोष ( ते ) तेरे शरीरसे ( बाल इति ) शीघ्रही ( यदि अस्तु ) बाहर हो जावें ॥ १-५ ॥

भावार्थ— तृणादि मनुष्यपर्यंत सृष्टिकी माता भूमि है और पिता परमंय, मिन बरुण चंद्र, सूर्य ये पाच हैं। इनमें अन्त बल है। उनके बलोंका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके शरीरमें आरोग्य सिधर रह सकता है, मनुष्यका जावन दीर्घ हो सकता है और उसके शरीरसे सब दोष बाहर हो जाते हैं।

### आरोग्यका साधन ।

पांच मैत्रोंका मिलकर वह एकद्वारा रणमन है और इसमें मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्षवनस्पतियोंके आरोग्यके मुख्य साधन का दिये हैं। 'शर' शब्द पास वाचक होता हुआ भी सामान्य अर्थसे यहाँ उपलक्षण है और तृणसे लेकर मनुष्यतक सृष्टिका अंतर्गर्भ समझें हैं। विशेष अर्थमें "शर" सज्ञक वनस्पतिका गुणधर्म बताया जाता है यह बात भी स्पष्ट ही है।

इन मंत्रोंमें पाच पिता कहे हैं। "पिता" शब्द पाता अर्थात् रसा, संरक्षण करनेवाला इस अर्थमें यथा प्रयुक्त है। तृणादिते लेकर मानव-सृष्टिपर्यंत सब की सुरक्षा करनेका कार्य इनका ही है। ये पांचों सब सृष्टिकी रक्षा कर ही रहे हैं। देखिये १ परमंय वृष्टिद्वारा जलसिंचन करके सबका रक्षण करता है। २ मित्र प्राणवायु है और इस वायुसे ही सब जीवित रहते हैं। ३ बरुण जलकी देवता है और वह जल सबका जवन ही कहलाता है।

४ चंद्र औपधियोंका अधिपति है और औपधियों का

जाती है, पाठक विचार करें और लाभ उठावें—

### परमंयसे आरोग्य ।

परमंयका शुद्ध जल जो खाती आदि मध्य मध्योंस प्राप्त किया जा सकता है वह बड़ा आरोग्यप्रद है। दिनके पूरे लपन के समय यदि इसका पान किया जाय तो शरीरके सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते हैं और पूर्ण निरोगता प्राप्त हो सकती है। वृष्टि जलके झरनेसे शरीरके गुच्छ गुच्छ आदि मध्य निवारण होता है। अतिरिक्तमें शुद्ध प्राण विराजमान है वह वृष्टिके पत्राबंधुओंके साथ भूमिपर आता है। इसलिये वृष्टिजलका ज्ञान आरोग्य वर्षक है।

### मित्र (प्राण) वायुसे आरोग्य ।

प्राणवायुसे योगसाधनमें आरोग्यसाधनका जो उपाय वर्णन किया है वह यों अनुसंधेय है। दोनों नाभिका-न-मध्य नेतिमें, भ्रूजिकास अथवा जलकी नाभिके रज्जु धार मन्त्रित रतनेस प्राणवायु अर्ज जान और उतम वायुतारा करता है। गुली वायुमें मम १५३ उतार कर रतने भा वाला वायुपान बड़ा आरोग्यवर्षक है। जो मन्त्र ब्रह्म

प्राप्त होता है। चन्द्र जल अर्थात् तालाब, दूर, नदी आदिमेंके जलके स्नानमें उनमें उत्तम प्रकार केनेसे भी बड़े दोष दूर हो जाते हैं। जलवाक्त्राका यह विषय है वह पाठक यहाँ अनुमोधान करके देख। यह बड़ा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियाँ जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

### चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

चन्द्र औषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है। गोमादि औषधियोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकदि आचार्योंने अपने वैद्य प्रथमों लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम "वैद्य" है।

### सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणसे जीवनका तत्त्व सर्वत्र फैला है। सूर्यकिरणोंका स्नान नये शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर तपानेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बड़ा भारी शास्त्र है।

### पञ्चपाद पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य, पशुपक्षी, उरु, वन-रपति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। दूधवनरूपति और आरुष्यक पशु उरुत पंचपाद पितरों अर्थात् पाचों देवोंके साथ पांचों त्रि-ओंके पाच-पाचों श्वकोंके साथ निरुप रहते हैं, इस विधिसे सत् आरोग्यपत्र होते हैं। नागरिक पशुपक्षी मनुष्यके उरुतम बनावटअर्थात् जीवनमें संवर्धित होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जगत्-लोक प्रायः सदैव सादे रश्मिके कारण अधिक नाशग होत हैं। परन्तु नागरिक लोग कि जो सशतंग मन्त्रानाम रहते हैं सदा तंग वस्त्रोंसे ढाँपते होते हैं और जल वायु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपमें दूर रहते हैं, अर्थात् जो अपने पचपिपात्रोंमें ही विमुक्त रहते हैं वेदा अधिक-से आरिक् रोगी होते हैं और प्रति दिन इन तंगमें पाँचति नागरिक लोगोंमें ही विविध रोग बढ रहे हैं और अस्वास्थ्यसे वे ही सदा दुःखी होते हैं।

इसलिये वेद कहता है कि पंच-य, मित्र (प्राण) वायु, जलदेव वरुण, चंद्र, सूर्यदेव इन पांच देवोंको अपना पिता अपना अपना संरक्षक जानो और —

विचार करें और इस निरुगनिधमोंका पालन करके अपना आरोग्य प्राप्त करें।

### पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विशेषतः उक्त पाचों शक्तिगोचर ही निर्भर है। मंत्रका "नियेचन" शब्द "जीवनरूप बल" का सूचक है। इसलिये—  
ते प्रथिव्यां नियेचनम्।

इस मंत्रभागदा भाष्य "तेरा पृथ्वीमें जीवन" पूर्वोक्त पांचा देवताओंके साथ संबन्धित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का आरोग्य, शरीरका कल्याण करनेवाले हैं वेही जीवन अपना दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इनके द्वारा ही—  
ते बालू इति बहि वस्तु।

"तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जाय।" पूर्वोक्त पाचों देवोंके योग्य संबंधसे शरीरके सब दोष शरीरमें बाहर हो जाते हैं। देखिये—

- (१) वृष्टिजल पान पूर्वक लंघन करनेसे मूत्रद्वारा शरीर दोष बाहर हो जाते हैं।
- (२) शुद्ध प्राणके अंदर जानेसे रक्तशुद्धि होती है और उच्छ्वासद्वारा दोष दूर होते हैं।
- (३) जलचिकित्साद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।
- (४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि नाम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-धी) दोषोंको धोती हैं।
- (५) सूर्यकिरण पसीना खाने तथा अन्याय्य रीतियोंसे शरीरके रोग बीज दूर कर देते हैं।

इस रीतियों पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (शं करं) कल्याण करते हैं। आरोग्य देते हैं, (नियेचनें) जीवन बढ़ाते हैं, और (बहि) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

"शं" शब्द "शक्ति" का सूचक है। शरीरमें "शक्ति, समता, शुद्ध" आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव बता रहा है। ये देव "शं" करनेवाले हैं, इसका तात्पर्य यही है कि, ये आरोग्य बढ़ानेवाले हैं। आरोग्य बढ़ानेके कारण जीवन बढ़ानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शीघ्र बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मननसे अपने आरोग्यके मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया संक्षेप करके मूल्योच निव रणक्ष विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष-निवारण ।

यदान्त्रेषु गव्हीन्योर्बद्धस्तावधि संश्रुतम् । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बृहिर्वालिति सर्वकम् ॥६॥  
 प्र ते भिनाब्धि मेहेतं वस्त्रं वेदान्त्या इव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बृहिर्वालिति सर्वकम् ॥७॥  
 विपितं ते वास्तिविलं समुद्रस्योर्दधेरिव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बृहिर्वालिति सर्वकम् ॥८॥  
 यथेषुका परार्पतदवमृष्टाऽधि धन्वनः । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बृहिर्वालिति सर्वकम् ॥९॥

अर्थ— ( यत् ) जो ( आन्त्रेषु ) आंतोंमें ( गव्हीन्योः ) मूत्र नाहियोंमें तथा जो ( वस्तौ ) मूत्राशयमें मूत्र ( संश्रुतं ) इच्छा हुआ है। वह तेरा मूत्र ( सर्वकं ) सबका सब एकदम बाहर ( मुच्यताम् ) निकल जावे ॥ ६ ॥ ( वेदान्त्याः ) शीलके पानीके ( वस्त्रं ) बंधको ( इव ) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे ( वेहनं ) मूत्रदाहको ( प्र भिनाब्धि ) मैं खोल देता हूँ ॥ ७ ॥ समुद्रके भयवा ( उदधेः ) बड़े तालाबके जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तेषु ( वास्ति-विलं ) मूत्राशयका बिलं मैंने ( विपितं ) खोल दिया है... ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ ( इषुका ) बाण ( परा अपतत् ) दूर जाता है, उस प्रकार तेरा सब मूत्र शीघ्र बाहर निकल जावे ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाबका पानी सुखपूर्वक बाहर जाता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाहियों द्वारा मूर्धेदियसे बाहर निकल जावे ।

मूत्र खुली रीतिसे बाहर जानेसे शरीरकं बहुत दोष दूर हो जाते हैं । शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे हाते हैं और वे मूत्र बाहर जानेसे विष भी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसीलिये किमी रोगी का मूत्र अंदर दक जानेसे मूत्रकं विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है । इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका उत्सर्ग नियमपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है । यदि वह मूत्र मूत्राशयमें दक जाय तो मूत्र नलिकाकी खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है । इस कार्यके लिये चार या मुझ औषधिका प्रयोग करना सहायक है । वेच लोण इषुका उपयोग करें । इसपर दूसरा उपाय मूत्रदाह खोलनेका है, इसके लिये लोह शलाका, शरितपत्र ( Catheter कैथेटर ) का प्रयोग करनेकी सुचना इन धर्मों की उपमाओंमें मिलती है । यह मूत्राशय में प्रवेश, आर्द्रता या लोहिका बनाया जाता है, यह बाहरी नलिका आर्द्रता गोल ही होती है, आप्रकल यद् रबर आदि अत्याम्य पदार्थोंका भी बना बनाया मिलता है । इस समय इषुका हार्एक वाकटके पास पाठक देख सकते हैं । यह मूत्र र्धेदियमें मूत्राशयमें योग्य रीतिमें जाता है । यह बर्दा पशुंकेसे अंदर दक हुआ मूत्र इगके अंदर की नलीसे बाहर हो जाता है ।

करते हैं मूत्रदाहमें कोमा दूष अथवा जल आदि अंदर मूत्राशयमें खोचने और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढाते हैं । इसका अभ्यास धर्मोंसे न वेदक मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है, परंतु मूर्धेदिय नाहियोंमें समेत संपूर्ण कार्यवाह्यपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है । कर्पूरिका होनेकी निम्न इलीके योग्य अभ्यासमें प्राप्त होती है । योग्य लोण इम अभ्यासकी अतिगुप्त रगते हैं और योग्य परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास सिध्दनी तितराया जाना है । पूर्णप्रद्वन्य रहना इसी अभ्यासमें प्राप्त होता है । मूर्धेदियमें पातन करते हुए भी पूर्ण प्रद्वन्य पातन होनेकी संभावना इस अभ्याससे ही शक्य है ।

योगी लोण इषुका छहापनाये बभ्रुली आदि विनाये च ५

## पूर्वापपर सम्बन्ध

द्वितीय सूक्तमें आरोग्य धायनका विषय प्रारंभ किया था । उसी आरोग्यप्राप्तिरा विस्तृत नियम इस तृतीय सूक्तके प्रथम पाच मंत्रोंके गणमें बटा है । सबके आरोग्यका मानो यह मूल-मंत्र ही है । हरएक अवस्थामें सुगमताया आरोग्यसाधन करनेका उपाय इस गणमें वर्णन किया है । इस तृतीय सूक्तके अंतिम चार मंत्रोंमें मृत्नाशयके दोषको दूर करनेका साधन बताया है ।

इस सूक्तका "शत शृण्व्य" शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । "शृण्व्य" शब्द बल, बोर्य, उत्साह, प्रजननसामर्थ्य आदिका वाचक है । ये शेरुओं बल देनेवाले पूर्वोक्त पाचों देव हैं वह यहाँ इस सूक्तके स्पष्ट हुआ है । वायवर्षक अन्य उपायोंका अवलम्बन न करके पाठन यदि इन पाचोंकी ही योग्य रीतिसे वर्तित रहे तो उनकी अनुपम लाभ हो सकता है ।

त्रितीय सूक्तमें, "भूरि-धायस" शब्द है जिसका अर्थ 'अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला' पूर्व स्थानमें दिया है । यह भी पर्यन्तके साहचर्यके कारण इस सूक्तमें अनुवृत्ति से आगा है और पाचों देवोंका विशेषण बनता है । पाठक इस शब्दको से हर मंत्रोंका अर्थ देखे और बोध प्राप्त करें ।

"भूरि-धायन" शब्दका "शत शृण्व्य" शब्दस निकट संबंध है, मानो ये दोनों शब्द एक दूसरेके सहस्यक हैं । विरिष प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही शेरुओं धायोंको देनेवाला ही सकता है । कथोंक पुष्टिके साथ ही शलका संबंध है । इस प्रकार पूर्व सूक्तसे दम सूक्तका संबंध देखिये ।

## शारीरशास्त्रका ज्ञान ।

दम सूक्तके मननसे पठनेसे ज्ञान ही सिद्ध होगा कि शारी-

शास्त्रका ज्ञान अथर्ववेदिका यथावत् जाननेके लिये अत्यंत आवश्यक है । मृत्नाशयमें शलाकाका प्रयोग विना वहाँके अवयवोंके जाननेसे नहीं हो सकता । शारीरशास्त्रको न जाननेवाला मनुष्य शोगलक्षण भी नहीं कर सकता, तथा अथर्ववेदका ज्ञान भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता ।

यह "अभि-रस" का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंकाही यह अथर्वशास्त्र है । अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, अंगोंकी अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछ भी ज्ञान नहीं है वह अथर्ववेदासे बहुत लाभ प्राप्त नहीं कर सकता ।

डाक्टर लोग जिस प्रकार मुँहको खीर फाह करके शरीर-गोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और अथर्ववेदविद्याके पढनेवालोंको करना उचित है ।

हमने यहाँ सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित शलाकाके प्रयोगके लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोंद्वारा किया जावे, परंतु इससे कई लोग अधिक भ्रममें भी पड़ सकते हैं और जो चित्रोंको ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे उल्टाही प्रयोग करके दोषके भागी हो सकते हैं । इस भयको सामने देखकर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समयके लिये दूर कर दिया है । और हम यहाँ पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस प्रयोगका ज्ञान सुविश्ट डाक्टरोंसे ही प्राप्त करें तथा ऊपर दिये हुए योग-प्रविद्याका ज्ञान किसी उत्तम योगिके पास जाकर लें, क्योंकि अंगरस चिदित्तामें इन बातोंकी आवश्यकता है । इनके विना केवल मंत्रार्थ पढनेसे अथवा शाब्दिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो सकता ।

## जल-सूक्त ।

पूर्व सूक्तमें आरोग्यसाधन अथवा शरीरसे वर्णन किया है इसलिये अब उसी जलका विशेष वर्णन हमसे आनेके लिये सूक्तमें वर्णन है-

[४]

( ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता [अपानपात्, सोमः-] आपः । )

अम्वर्यां यन्त्वत्पामिन्नामर्यां अपरिप्यताम् । पृच्छन्तीर्मीधुन्तां पयः ॥ १ ॥

अम्वर्यां उप ययं यामिन्तां ययंः मुह । ता नो हिन्वन्त्वप्सुम् ॥ २ ॥

अपो देवीरूपं ह्ये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्ष्वं हविः ॥ ३ ॥

अप्सवः १ न्तरमृतमप्सु भेषजम् । अवाप्तु प्रशस्तिभिरश्वा भवेथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अर्थ— (अध्वरीयतां) यज्ञकर्ताओंके (जामयः) बहिनोके समान और (अभ्ययः) माताओंके समान जलनी नदिय, (अध्वामिः यन्ति) अपने मागोंसे जाती हैं जो (मधुना) मधु-शहदके साथ (पयः) दूध या जल (पृथग्गन्तीः) मिलाती हैं ॥ १ ॥ (वाः) जो (अमूः) ये नदिया (उप सूर्ये) सूर्यके सम्मुख होती हैं अथवा (यामिः) जिनके साथ सूर्य होता है । वे हम सबका (अध्वरं) यज्ञ (हिन्यन्ति) सांग करती हैं ॥ २ ॥ (यत्र) जहाँ हमारी (गानः) गौवें पानी (पिबन्ति) पीती हैं उन (वेवी. आपः) दिव्य जलोंकी (सिन्धुभ्यः) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण (उप ह्ये) मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ३ ॥ (अप्सु अन्तः) जलमें अमृत है, (अप्सु भेषजं) जलमें दवाई है ॥ (उव) और (अपां प्रदान्तिभिः) जलके प्रदानीय गुण घमोंसे (क्ष्वाः वाजिनः) घोड़े बलवान् (भवथ) होने और गौवें बलयुक्त होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जल उनके लिये माता और बहिनके समान दिताराक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं । जलकी नदियाँ बह रही हैं, मानो बह दूधमें शहद मिला रही हैं । जो जत्र सूर्योत्थरणसे शुद्ध बनता है अथवा जिसकी पवित्रता सूर्य करता है वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करे । जिन नदियोंमें हमारी गौवें जत्र पीती हैं और जिनके लिये हवि बनाया जाता है उनके जलका गुणगान करना चाहिये । जलमें अमृत है, जलमें औषध है, जलके शुभ गुण से घोड़े बलवान् बनते हैं और गौवें भी बलवती बनती हैं ।

[५]

( ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता-[अपानपात्र, सोमः] आपः ) ।

आपो हि सा मय्योभुवस्ता न ऊर्जे दधतन । महं रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

यो वः शिवर्तमो रमुस्तस्य भाजयतेह नः । उश्वतीरिव मातरः ॥ २ ॥

तस्मा अरं गामाम वो यस्य ध्यायं जिन्वथ । आपो जूनयथा च नः ॥ ३ ॥

ईशाना वावाग्ना क्षयन्तीश्वर्णीनाम् । अपो यांचामि भेषजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दे (आपः) जली । (हि) क्योंकि आप (मयोभुवः) गुप्तधारक (स्थ) ही इसलिये (ताः) ती गुप्त (ना ऊर्जे) हमारे बलके लिये तथा (महं रणाय चक्षसे) बड़ी रमणीयताके दर्शनके लिये हमें (दधान) प्रद करी ॥ १ ॥ (यः) जो (वः) आपके अंदर (शिवतम रमः) अत्यन्त कल्याणकारी रम है (तस्य) उगवा (न इह भाजयत) हमें यहाँ भागी करी (इव) श्रेणी (उश्वती मातरः) इच्छा करनेवाली माताएं करती हैं ॥ २ ॥ दे जलो । त्रिषुके (क्ष्वाप) निवासके लिये आप (पिन्यथ) वृत्ति करते हो (तस्मै) उसके लिये हम (वः अरं गामाम) आपकी पूर्णतया प्राप्त करने । और आप (नः) हमें (जूनयथ) बटाओ ॥ ३ ॥ (वावाग्नां) इच्छा करनेवाली युवोंके (ईशाना) स्वामी इच्छाके (श्वर्णीनां) प्राणिमात्रके (क्षयन्ती) निवासके हेतु ऐसे (अपः) जलोंके (अपं वावाग्नि) औषधकी मायना करता हूँ ॥

भावार्थ—जल गुप्तधारक है, उसमें बल बढ़ता है, रमणीयता प्राप्त होती है और पुष्टि भी है । जिन प्रदर पुत्रको माताके दूधसे पुष्टि का भाग मिलता है, वही प्रदर जलके अंदरके जलम गुप्तधर्मक रम हमें प्राप्त हो । जिनसे प्राणिमात्रकी वृद्धि होती है, वह रम हमें प्राप्त हो और उनसे हमारी वृद्धि होती रहे । अपने इन्द्र गुप्त प्राप्त होने के और प्राणिमात्रकी वृद्धि होती है, उस जलमें हमें औषध प्राप्त होना रहे ॥

[ ६ ]

[ ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता (अपांनपात्) आपः, २ आपः सोमो अग्निश्च ]  
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि संवन्तु नः ॥ १ ॥

अप्सु मे सोमो अन्नवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वयंभुवम् ॥ २ ॥

आपः पृणीत भेषजं वरुह्यं तन्वेष्टे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३ ॥

शं नु आपो धन्वन्त्याः शमु सन्त्वनुप्याः ।

श नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( देवी आप ) दिव्य जल ( न श ) हमें सुख दे और ( अभिष्टये ) इष्ट प्रातिके लिये तथा ( पीतये ) पीनेके लिये हो और हमपर शांति ( अग्नि स्रज्जु ) खोत चलावे ॥ १ ॥ ( मे ) मुझे ( सोम अन्नवीद ) सोमने कहा कि ( अप्सु अन्त ) जलमें ( विश्वानि भेषजा ) सब औषधिया हैं और अग्नि ( विश्व-श-भुवं ) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ ( आप ) जलो ( भेषज पृणीत ) औषध दो और ( मम तन्वे ) मेरे शरीरके ( वरुह्यं ) संरक्षण दे जिससे मैं सूर्यको ( ज्योक् इतो ) दीर्घकालतक देखू ॥ ३ ॥ ( न. ) हमारे लिये ( धन्वन्त्या आपः ) मरुदेशका जल ( श ) गुणकारक हो, ( अनुप्या ) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुखकारक हो, ( खनित्रिमा ) खोदे हुए ढूँँ आदिका जल सुखदायक हो, ( कुम्भे ) पड़ेमें भरा जल सुखदायक हो, ( वार्षिकी ) शुद्धिका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— दिव्य जल हमें पीनेके लिये मिले और वह हमारा सुख पत्रावे ॥ १ ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख बढ़ानेवाला है ॥ २ ॥ जलसे हमारी चिकित्सा होवे और शरीरका बचाव रोगोंसे होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ ३ ॥ मरुदेशका, जलमय देशका, ढूँँका, पृथिका तथा घड़ोंमें भरा हुआ जल हमारा सुख बढ़ानेवाला होवे ॥ ४ ॥

ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं । तीनों सूक्त इकट्ठे हैं इसलिये तीनोंका विचार यहां इकट्ठाही करेंगे ।

### जलकी भिन्नता ।

जल निम्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है—

१ देवी ( दिव्या ) आप ( ४।३ ) —आसारासे अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाला जल, इसी का नाम “वार्षिकी” भी है ।

२ वार्षिकी आपः ( १।४ ) —पृथिसे प्राप्त होनेवाला जल ।

३ र्विपुः ( ४।३ ) —नदी तथा समुद्रोंसे प्राप्त होनेवाला जल ।

४ अनुप्या आपः ( १।४ ) —जलमय प्रदेशमें प्राप्त होनेवाला जल ।

५ धन्वन्त्या आपः ( १।४ ) —मरुदेश, रेतीले देशमें, अथवा पौधों वृद्धि होनेवाले देशमें निकलनेवाला जल ।

६ खनित्रिमा आपः ( १।४ ) —खोदकर बनाये हुए कुए बावलीसे प्राप्त होनेवाला जल ।

पृथिसे प्राप्त होनेवाला जल भी देवीसे स्थान, कीनटकी मिट्टीके स्थान आदिमें गिरनेसे भिन्न गुण धर्मोंसे युक्त होता है । जिस स्थानमें साली साल भीचड़ बना रहता है, उसमें यज्ञे हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीमेंसे प्राप्त हुए पानीके गुणधर्म भिन्न है । इसी कारण ये सब जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होते हैं । जलका उपयोग आरोग्यके लिये करना हो, तो प्रथम मरने जलमय शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है ।

उपत जल जो बाहर प्राप्त होता है वह परमें लाल पड़नेसे रसनेके कारण उसके गुणधर्ममें बदल जाता है । अर्थात् पृथ्वीका ताप पानी जो गुणधर्म रखता है, वही घटने लाल (धुने आरुणाः १।४) पड़ेमें कई दिन रखनेपर भिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता संभव है । तथा प्रमादी नदीका पानी और ऋषिके सिंहा पानीके गुणधर्म भी भिन्न हो सकते हैं ।

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। यह दर्शनके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ( ४ । २ )

“वह जल जो सूर्यके सम्मुख रहता है, अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है।” अर्थात् सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्मवाला बनता है और सदा अंधेमें रहनेके कारण जिसपर सूर्यकिरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन धूर्वोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिनपर नहीं होती उनके जलोंके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा—

अभ्ययो यन्त्यध्वभिः । ( ४ । १ )

“नदियां अपने मार्गसे चलती हैं।” इसमें जलमें गतिका वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुणधर्मोंके युक्त होता है। स्थिर जलसे कुमिकाटक तथा सजावट होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिनी मंदता और तेजोंके कारण भी जलके गुणधर्मोंमें भेद होते हैं। तथा—

पृथग्गीर्मेधुना पयः । ( ४ । १ )

“मधु अर्थात् पुष्प-पराग आदिसे जलमें मिलावट होती है।” इससे भी पानीके गुणधर्म बदलते हैं। नदी तालावके तटपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फूल, फूलके पराग, पत्ते आदि गिरते हैं, जलमें सवते या मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे-जलके गुणधर्म बदलते हैं तथा—

यत्र गावः पियन्ति । ( ४ । ३ )

“जिस जलाशयमें गाँवें पानी पीती हैं,” जहाँ गाँवें, भैंसे आदि पशु जाते हैं, जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

जल देनेके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं, उनमें सबसे उत्तम अवस्थावाला जल ही पीने आदि कार्यके लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेदने से सब जलकी अवस्थाएं बनाकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो उत्तमसे उत्तम पवित्र जलही लेना चाहिये। पाठक इन अवस्थाओंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध ।

जलका नाम ही “अमृत” है अर्थात् जीवन रूप रस हो

ही जल है यही बात मंत्र कहता है—

अप्सु अमृतम् । ( ४ । ४ )

अप्सु भेषजम् । ( ४ । ४ )

“जलमें अमृत है, जलमें औषध है,” जल अमृतमय है और औषधिमय है। पारनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है, और शरीरके दोषोंको धोकर शरीरकी निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है—

शिवतमः रसः । ( ५ । २ )

“जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है।” केवल “शिवो रसः” कहा नहीं है, परंतु “शिवतमो रसः” कहा है, इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसे भी वेद स्पष्ट कर रहा है—

भापः मयोमुवः । ( ५ । १ )

“जल हितकारक है।” यहाँका “मयस्” शब्द “मुख, आनंद, समाधान, तृप्ति” आदि अर्थका बोध कराता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद बढ़ना असंभव है। इसलिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट भिन्न होता है र्शो-लिये कहा है।—

अप्सु विधानि भेषजानि । ( ६ । २ )

“जलमें सब दवाइयाँ हैं।” जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियाँ हैं। इसीलिये हरएक बीमारीका जलचिकित्सासे इलाज किया जा सकता है। योग्य वैद्य और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा, तो आरोग्य निःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है—

भापः शृणीत भेषजम् । ( ६ । ३ )

अथो यायाभि भेषजम् । ( ५ । ४ )

“जल औषध करता है। जलसे औषध मांगता हूँ।” अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगोंकी निग्रहि जलचिकित्सा से हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके ताप धातुओंमें समता स्थापित करना अल्पचिकित्सासे संभवनीय है।

समता और विषमता ।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी ध्वनना वेदके “सं, शांति” आदि शब्द करते हैं और विषमता दूर करनेका मांत्र “शोः” शब्द वेदमें कर रहा है। दोनों मिनकर “सं-शोः” शब्द बनना है। इगत्ता संतुक्त्वा तात्पर्य “समनाकी स्थापना और विषमताका दूर करना” है। इसलिये कहा है—

# धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः— चातनः । देवतः— अग्निः ( जातवेदाः ), ३ अग्नीन्द्राँ )

( ७ )

स्तुवानमग्र आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हुन्ता दस्योर्वभूविध ॥१॥  
 आज्यस्य परमोष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन । अग्रं तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥  
 विलपन्तु यातुधानां अत्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रतिं हर्षतम् ॥३॥  
 अग्निः पूर्वं आ रभतां प्रेन्द्राँ नुदत बाहुमान् । त्रयीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्यस्यं ॥४॥  
 पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानानृचक्षः ।  
 त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्ताच्च आ यन्तु प्रमुवाणा उपेदम् ॥५॥  
 आ रभस्य जातवेदोऽस्माकार्थीय जज्ञिये । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥  
 त्वमग्ने यातुधानानुपवद्वाँ इहा वह । अथैपामिन्द्रो वज्जेणापिं शीर्षाणि वृथतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( स्तुवानं ) स्तुति करनेवाले ( यातुधानं किमीदिन ) घातक शत्रुओंको भी ( शा यह ) यहां ले आ । ( हि ) क्योंकि हे देव । ( वन्दितः त्वं ) नमनको प्राप्त हुआ तू ( दस्योः ) डाकूका ( हुन्ता ) हनन या शक्ति करने वाला ( यभूविध ) होता है ॥ १ ॥ हे ( परमोष्ठिन् ) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले ( जातवेदः ) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और ( तनू-वशिन ) घीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू ( तौलस्य आज्यस्य ) तेले हुए घी आदि का ( प्राशान ) भोजन कर और ( यातुधानान् ) दुष्टोंके ( वि लापय ) विलाप करा ॥ २ ॥ ( ये ) जो ( यातुधानाः ) दुष्ट ( अग्निः ) भद्र करनेवाले और ( किमीदिन ) घातक हैं वे ( विलपन्तु ) विलाप करें । ( अथ ) और अब, हे अग्ने ! ( इदं हविः ) यह हवि तू और ( इन्द्र च ) इन्द्र ( प्रनिह-यंतम् ) स्वीकार करो ॥ ३ ॥ ( पूर्वं ) अग्निः आरंभतां पहिला अग्नि आरंभ करे, तथा पथान् ( बाहुमान् इन्द्र प्र नुदतु बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे, जिसे ( सर्वं यातुमान् ) सब दुष्ट लोग ( एव ) आकर ( मरीतु ) मारे, कि ( अयं अस्मि इति ) यह मैं हूँ ॥ ४ ॥ हे ( जातवेदः ) ज्ञानी ! ( ते वीर्यं पश्याम ) तेरा पराक्रम हम देखें । हे ( नृ-वपः ) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! ( यातुधानान् ) दुष्टोंको ( नः ) हमारा आदिष्ट ( प्र मूहि ) विधेय रूपसे कह दे । ( शया ) श्रुतमे ( पुरस्ताच्च ) पहिले ( परितप्ताः ) तपे हुए ( ते सर्वं ) वे सब ( इदं मुयागा ) यह कहते हुए ( उप आयन्तु ) हमारे पास आनायें ॥ ५ ॥ हे ( जातवेदः ) शूनी ! ( आरभस्य ) आरंभ कर ( अस्माक-+मार्थीय ) हमारे प्रयोजनके लिये तू ( अग्निं ) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [ यातुधानान् ] दुष्टोंका [ उपवदान् ] बोधे हुए अर्थोंका वाचकर [ इहा वा वह ] यहां लेआ । [ अथ ] और इन्द्र अपने वज्रमे [ एव' मीर्षाणि ] इनके मरतक [ वृथतु ] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबके पीछे जिनमें यथोक्ति इस सूक्तने कई शब्दोंके अर्थोंका विचार करने करना चाहिये । इस सूक्तमें हे देव इन्द्र भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं, और जबतक इनका निधिग

ठीक अर्थ ध्यानमें न आयेगा, तब तक इस सूक्तका उपदेश समझमें नहीं आयेगा । मन्त्रके प्रथम " अग्नि " शब्द हे देव इन्द्र



### अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये, इसका निश्चय धराने वाले ये शब्द इस सूक्तमें हैं—“जातवेद, परमेष्ठिन्, तनुवाशिन्, वृक्ष, वन्दित, इतः, देवः, अग्निः ।” इन शब्दों का अर्थ देखकर अग्नि का स्वरूप सबसे प्रथम हम देखेंगे—

१ जानवेद — [ जात वेति ] जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है । [ जात-वेदः ] जिसने ज्ञान प्राप्त किया है । अर्थात् ज्ञानी ऋषियेका और वास्तविकता का यथावत् जानने वाला ।

२ परमेष्ठिन्—( परमे पदे स्थान ) परमपद से टहरनेवाला अर्थात् समाधिकी अंतिम अवस्थाको जो प्राप्त है, आत्मानुभव जिसने प्राप्त किया है, सुर्या-चतुर्थ अवस्थाना अनुभव करनेवाला ।

३ तनुवाशिन्- ( तनु-वाशिन् ) अपने शरीर और इन्द्रियोंको स्वाधान धराने वाला, इन्द्रिय संश्रम और मनोनिग्रह करनेवाला, आत्मनाद योगा-वशसे जिसने अपनी कार्यासिद्धि की है । यही मनुष्य परमे-ष्ठिन् होना संभव है ।

४ वृक्ष — “ वृक्षन् ” शब्द स्पष्ट शब्दों द्वारा उपदेश देने का भाव बना रहा है । मनुष्योंको जो योग्य धर्म मार्गका उपदेश देता है ।

पर पहुंचाने वाला यह दूत धर्मका उपदेशक ही है ।

५ देवः—प्रकाशमान, तेजस्वी ।

८ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोगनी बढाने अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला । उष्णता ( गर्मी ) उत्पन्न करके हलचल करने वाला ।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार वेदमें “अग्नि” शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है । तथा ‘इन्द्र’ शब्द क्षत्रियका वाचक है ।

### ब्रह्म क्षत्रिय ।

“ ब्रह्म क्षत्रिय ” शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है । वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आगये हैं । यही भाव “अग्नि-इन्द्र” ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर व्यक्त कर रहे हैं । अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है । अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा, अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

### इन्द्र कौन है ?

खरों इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है, क्योंकि इसका अर्थ ही शत्रु नाशक है—

१ इन्द्रः— ( इन्द्रः ) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेवाला ।

२ बाहुमान्— बाहुवाला, भुजावाला, अर्थात् बाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध । हरएक मनुष्य भुजावाला होता ही है, परन्तु क्षत्रियको ही “बाहुमान्” इसलिये कहा है, कि उक्त कार्य

समान ही है। वास्तव में मासिन कण्ठे को ही धोकर स्वच्छ करना चाहिये, इसी तरह अपार्मिक वृत्तिके लोगों को ही धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यही सवा धर्म प्रचार है, यह बतानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है—“यातुधान, किमादिन्, दस्यु, अत्रिन ।” अब इनका आशय देखिये

१ यातु—“यातु” भटकनेवाले का नाम है। जिसको घरदार कुलमी नहीं है और जो व-य पशुके समान इधर उधर भटकता रहता है उसका नाम “यातु” है। भटकने का अर्थ बतानेवाला “या” धातु इसमें है।

२ यातुमान्— यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्, शब्दका भाव “यातुवाला” है अर्थात् जिसके पास बहुतेरे यातु (भटकनेवाले) लोग होते हैं। अर्थात् भटकने वालों के जमाव का सुबिधा।

३ यातुमावान्— बहुतेरे यातुमानों को अपने कावूमें रखनेवाला।

४ यातुधानः— यातुओंका धारण पोषण करनेवाला, अर्थात् भटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनको पोषण करनेवाला। “यातु धान्वा” भी इसी भावका वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा, कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको घरदार कौपुत्र आदि होते हैं, और जो कुटुंबमें रहता है, वह सतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता। जितना कि निवन्धा परदार कुलमी न हो, और जो भटकने वाला होता है। यह सदा भूला रहता है, किसी प्रकारका मनका समाधान उसको नहीं होता, इसलिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये वह तैयार होता है, इसी कारण “यातु” शब्द “बुरी वृत्ति वाला” इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दुष्ट, दासु, चोर, लुटेरे, बटमार आदि इसी शब्दके अर्थ आगे जाकर बने हैं। ये चोर दासु जबतक अकेले अकेले रहते हैं, तब तक उनका नाम “यातु” है, ऐसे दोचार डाकूओंको अपने बचमें रखकर बड़ा बालनेवाला “यातु-मान्, यातु-वान्, यातुमत्” अर्थात् यातुवाला किंवा दासुवाला बड़ा जाता है। पहिले भी अनेका इससे समाजको अधिक बुर प्रवृत्तते हैं। इस प्रकारके छोटे डाकूओंके अनेक भंडोरो अपने आधीन रखने वाला “यातु-मान्-वान्” अर्थात् डाकूओंकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वकी अवस्था अधिक बुर प्रामों और प्रामोंको भी प्रवृत्ता घटता है। इसके नाम “यातु धान्वा यातु-धान्वा” है। पाठक इससे जान सकते हैं, कि ये वैरिह शब्द

जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं, हीन और दुष्ट लोगोंके वाचक हैं। अब और दोषिये—

५ अत्रियन्— अत्री (अतति) सतत भटकता रहता है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव (अति) खानेवाला, सदा अपने मोंगके लिय दुर्गोंका गला काटनेवाला। जो थोड़ेसे धनके लिये खून करते हैं, इसप्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।

६ किमादिन्— (किं इदानो) अब क्या खाव, इस प्रकार की वृत्तिवाले भूखे किंवा पेटके लिये ही दूसरोंका घात पात करनेवाले दुष्ट लोग।

७ दस्यु— (दस् उपशये) घातपात करनेवाले, दुष्टोंका नाम करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग।

ये सब लोभ समाजके सुखका नाश करते हैं, इनके कारण समाजके लोगोंके कष्ट होते हैं। ये ग्राममें आगये, तो ग्राममें चोरों, डकैती, खून, लुटमार होती है, एही विषयक अ वाचार होते हैं, सज्जनोंको अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं इसलिये इन लोगोंको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यह इस सूक्तका आदेश है। जो घरदारले हीन हैं, जो जगलों और खेतों में रहते हैं, जो चोर डकैती आदि दुष्ट कर्म करते हैं। उनको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नगरिक हैं, जो पहिले ही धर्मके प्रेमी हैं उनमें धर्म की अज्ञानि कानी योग्य है; पातु जिनके पास धर्म की आचार्य नहीं पहुची और जिनका जीवन-कर्म ही धर्मोपाय मार्गमें सदा चलना रहता है, उनका सुधार करके ही उनको उत्तम नागरिक बनाया चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य क्षेत्र देखें।

धर्मोपदेशक के गुण, वाचन धर्म में निगुण सत्रिय के गुण, और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी अप्यत आवश्यकता है उनमें गुणधर्म इनके इस सूक्तके आधारले देखें। अब इन वाचनार्थके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

**दुष्टोंका सुधार ।**

प्रथम मंत्र—“हे धर्मोपदेशक! तुम्हारा प्रसंगा करने-वाले दुष्ट डकैती को बड़ा से भा, क्योंकि तू बदनाम मान करनेपर दस्युओंका नामक होगा है” ॥ १ ॥  
इस पहिले मंत्रमें ही विधान है—

समझा दे, उन दुष्ट धर्मों से उनको बड़ा निवृत्त करे, जब वे ठीक प्रकार जानें कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं और मानवीची रक्षा करनेवाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य धर्म इस धर्मोपदेशरसे प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास धृष्टा भक्तिमें आवेंगे, इसकी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने मिर झुकायेंगे अर्थात् इनको प्रणाम करेंगे। जब उनमें दृढनी श्रद्धाभक्ति बढेगी, तब उनका बाह्यपनका नाश या हनन स्वयं ही हो जायगा। इसलिये मंत्र कहता है कि "धर्मोपदेशक दुष्ट मनुष्योंके अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर अर्थात् अपने अनुयायी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे, और उनमें नमस्कार प्राप्त करके उनका घातक बने।"

"जिनसे नमस्कार प्राप्त करना उनकाही घात करना" प्रथम भिन्न या प्रतीत होता है, परन्तु अवार्थिक दुष्ट मनुष्यों के मुझार करनेवालेसे ऐयाही बनता है। जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक बन जाता है उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने अपना मिर झुकाता है और मिर झुकाने ही दुष्ट मनुष्यके रूपसे मर कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह मरने तथा ही मनुष्य बनता है। यदि एक शत्रुधर्मोपदेश सुनकर धार्मिक बन गया, तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अर्थ यही है कि एा मर गरा तथा और एक तथा धार्मिक मनुष्य तथा पैदा हुआ। अब हमारा मंत्र देखिये—

खाना चाहिये। ये उपदेशक सदा भ्रमणमें रहनेके कारण तथा जलवायुके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें बिगाड़ होना संभव है; अतः जितनी पाचक शक्ति होती है, उससे भी कम ही खाना इनके लिये योग्य है। इस कारण वेद कहता है, कि "उपदेशक तोलकर ही थी आदि पदार्थ खावें" कभी अधिक न खावें।

मंत्रमें दूसरी बात "दुष्टोंको हलाने" की है। यदि उपदेशक प्रभावशाली होगा, और यदि उसके उपदेशसे श्रोताओंकी अपने दुराचारका पता लगा तथा उनके अंतःकरणमें धर्म भावना जागृत हो गई तो उनके रो पड़नेमें तथा अपने पूर्व दुराचारमय नीचनके विषयमें पूर्ण पश्चाताप होनेमें कोई संदेहही नहीं है। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तीसरा मंत्र देखिये—

### दुष्टजीवनका पश्चाताप

तृतीय मंत्र— "दुष्ट लोग रो पड़ें, और हे धर्मोपदेशक! तेरे लिये यह हमारा दान है, क्षत्रिय भी इसका स्वीकार करे" ॥ ३ ॥

सच धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुःपचारका पश्चाताप होने और वे रो पड़ें। तथा जनता ऐसे धर्मोपदेशकोंके तथा उनके सहायक क्षत्रियोंको भी तथा शक्ति

ऐसा हो, कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारलें और खुले दिलके उपदेशकोंके पास आकर कहें कि " हम अब आपकी शरणमें आगये हैं ।" यही धर्म प्रचारका सार्वभ्य है । धर्म प्रचारसे दुष्टाचारी दुष्ट सुधर जाय और अच्छे धार्मिक बनें, वे अपने पूर्व दुराचारका पश्चात्तप करें, तथा जब पूर्व दुराचारका उनकी स्मरण आवे उस समय उनकी रोग आवे । क्षत्रियके बल की अपेक्षा न करते हुए केवल ब्राह्मण ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तिसे यह कार्य करें । पिछले क्षत्रिय उनकी मदत पहुंचावे । क्षत्रियके जोरसे जो धर्म प्रचार होता है, वह सत्य नहीं है, परन्तु ब्राह्मण अपने आत्वि क श्रुतिसे जो हृद्य पलटा देता है, वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है । इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय देखनेके पश्चात् अब अगला मंत्र देखिये—

### दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि ।

पंचम मंत्र— " हे ज्ञानी उपदेशक ! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे । हे मनुष्योंकी सम्मार्ग्य बतलानेवाले ! तुम दुष्टोंको हमारे धर्मका उपदेश करो । तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप की प्राप्ति हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैभवाही कहें । " ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त प्रकारका सच्चा धर्मोपदेशक त्रिम समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है, उस समय उसका गौरव कहते हुए लोग कहते हैं कि " हे उपदेशक ! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है, हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सद्गुणधर्मके कितने लोगोंके हृदयमें पलटा उत्पन्न करते हो और कितनों को सत्य धर्मकी दीक्षा देते हो । हमेंगे तुम्हारे पराक्रमका हमें पता लग जायगा । तुम ज्ञानी, हम तुम्हारा गौरव करते हैं । सत्यधर्मका संदेश सब जनता तक पहुंचाओ । तरे उपदेशकी शानामिते तपे हुए और पश्चात्ताप की प्राप्ति हुए लोग हमारे अंदर आवें और कहें " कि हमने अब धर्मोपदेश पीया है । और अब हम आपके घने हैं । "

" तप्त, संतप्त, परितप्त " ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं । तप शब्द तपकर शुद्ध होनेका सूचक है । क्षति तपकर सोना, चाँदी, तांबा आदि धातुओंसे शुद्ध करता है अर्थात् उनके मलोच्छेद करवाता है । इसी प्रकार यहाँका क्षति-जो शब्द धर्मोपदेशक है-यह अपनी शानामिते सब दुष्टोंसे तपना है और अच्छी प्रकार उनके मलोच्छेद करता है । शुद्धि यही यहाँ श्रुति है । भोगके जोषणको छोड़कर तपके जोषणमें आना ही धार्मिक बनना है । इस अर्थमें इस मंत्रका " परित-तप " शब्द

बड़े भावका सूचक है । अब छोटे मंत्रना भावार्थ देखिये—

### धर्मका दूत ।

षष्ठ मंत्र— " हे ज्ञानी पुरुष ! अपना कार्य आरंभ कर । हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें आगे किया है । हे उपदेशक ! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे रखा दे " ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकोंको लोग कहते हैं कि— " अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ कर दो । बिना कर देशदेशांतरमें जा और वहाँ सत्यधर्मका प्रचार कर । यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिये तुम्हें आगे भेजा जाता है, अथवा आगे रखा जाता है । हमारा धार्मिक संदेश जगत्में फैलाना है, इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दूत ही तू है । अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक श्रुतिसे रहते हैं, उनको अपने सद्गुणधर्मद्वारा शुद्ध करो और उनको अपने पूर्व दुराचारका पूर्ण पश्चात्ताप होने दो । उनके दिलोंमें ऐसा पलटा दों कि जिससे वे अपने पूर्वोपदेशका स्मरण करके रोग लेंगे । " इस प्रकार जगत्ना सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंको भेजा जाता है ।

### डाकुओंको दण्ड ।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो सुधरने नहीं और अपना दुराचार जारी रखे अथवा पूर्वोक्त प्रकारके श्रेष्ठ धर्मोपदेशकोंके पराकाष्ठाके प्रयत्न करनेपर भी जो अपना दुष्ट आचरण नहीं छोड़ते और जनतासे चोरी चक्रेनी आदिमें अयंन बण्ड देते ही रहेंगे, उनको योग्य दण्ड देना प्राप्नयका कार्य नहीं, वह कार्य क्षत्रियका है यह आशय अगले मंत्रमें कहा है—

सप्तम मंत्र— " हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी तुम डाकुआदि अपने दुराचार छोड़ते नहीं । उनको पंश कर पाई लो और पश्चात् क्षत्रिय उनके फिर तपारम्भे कार दे " ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ धर्मोपदेशक शाना धर्मोपदेशका प्रयत्न करें और

अन्योंको भी यह उपदेश मिल सकता है, कि हम भी धार्मिक बननेसे बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी वही अवस्था बनेगी।

### ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छ मन्त्र हैं और एकही मन्त्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आग करनेकी सूचित किया है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मसे कम छ गुणा प्रयत्न ब्राह्मण अपने अनुपदेशमें करें, दत्तेन प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरे, ब्रह्मसे कम छ बार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरे छ बार अवसर देने-पर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोड़ते, उनपर ही क्षत्रियका वज्र प्रहार होना योग्य है। क्योंकि जिनको जन्मसे ही दुष्टता जन्मे वा अभ्यास होगा वे एक बारके उपदेशसे पट्ट जायगे अथवा सुधरेगे यह कठिन अथवा अशक्य है। इसलिये भिन्न उपप्राप्ति उनको अधिक अवसर देने चाहिये। इतना करनेपर भी जो नहीं सुधरते उनको या तो बधन में डालना या शिरच्छेद करना चाहिये।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियभी करता है परन्तु दोनोंके हनन में बड़ा भेद है। पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और सप्तम मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बताई है। क्षत्रिय की रीति यही है कि लक्ष्य लेकर दुष्टका गला काट डालना, अथवा दुष्टोंकी काराशुद्धमें बन्धनकर रक्षना। ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है, ब्राह्मण उपदेश करता है, उपदेश द्वारा भीनाशोक दिलोंकी पलटा देता है, उनको अनुगामी बना देता है, उनके मनकी दुष्टता का नाश करता है। दोनोंका उद्देश्य दुष्टोंकी सन्ध्या कम करने का ही होता है, परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंकी सुधारनेका प्रयत्न करता है, हृदय मुक्त बनाता है और दुष्टोंकी सन्ध्या घटाता है। और क्षत्रिय उनकी बल करके उनका उच्छेद करता है। इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न श्रेष्ठ और क्षत्रियके दगरे दक्षकटे हैं।

वेदमें जहा "हनन, दहन, परिताप, विलाप" आदि शब्द आते हैं वहां सर्वत्र एकसाहस अर्थ लेना उचित नहीं। वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं वा क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये। हनन से शत्रुकी संख्या घटती है, ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों अपने अपने शत्रुसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बतायायाही है, कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा शत्रुका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा शत्रुको घटाता है। इसी प्रकार 'विलाप' भी दो प्रकार का है। क्षत्रिय शत्रुकी कतल करता है उरा समय भी शत्रुके लोग विलाप करत है और रीते पीटते ही है। उसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय श्रोताओंक हृदयमें भक्तिभाव और धर्मप्रेम उत्पन्न करने द्वारा कृत दुष्टकारका पक्षात्प्राप उत्पन्न करता है उस समय भी वे लोग रोते हैं और आसू बहाते हैं। इन दोनों आसू बहाने में बड़ा भेद है। जो इष्ट परिवर्तन प्राप्ति कर सकता है, वह क्षत्रिय वक्ष्यापि नहीं कर सकता। यही बात "परिताप, घन्ताप" आदिके विषयमें समझनी चाहिये।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्रह्मक्षत्रिय प्रमा-लीके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंके अर्थोंका बड़ा अनर्थ किया है। इसलिये पाठक इस भेदका पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश जाननेका यत्न करें। यह बात एकाग्र ठीक प्रकार समझमें आगई, तो मन्त्रोंका आशय समझनेमें कोई कठिनता नहीं होती, परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके क्रमदा बौधल और तीक्ष्ण मार्गोका भेद यदि ठीक प्रकार समझमें नहीं आया, तो अर्थान अनर्थ प्रतीत होगा। इसलिये दुष्टोंका सन्ध्या घटाएना जिस प्रकार घटाया है और क्षत्रियोंके प्रहार पटाया है, इसी प्रकार ये दोनों शत्रुओंको विप रीतिसे दण्डते हैं, तथापि हैं और जलाते हैं, यह पाठक अपने विचार से और यहा बताया मार्गसे ठीक समझें और ऐसे सूक्तोंका तात्पर्य जानें।

( ८ )

( ऋषिः—चावनः । देवता—अग्निः, वृहस्पतिः )

इदं वृचिर्पानुषानान् नदी फेर्नमिवा वंहन् । य इदं श्री पुमानर्करिह म स्तुवता जनः ॥१॥  
अपं स्तुत्रान आगमंदिमं स्म प्रनि ह्येत । वृहस्पते वदी लब्ध्यामीपोमा वि विचपनम् ॥२॥  
यानुषानंय गोमप लुदि प्रजा नयस व । नि स्तुत्रानंय पावय परमक्षुपुनार्चरम् ॥३॥

यत्रैषामग्रे जनिमानि वेत्थु गुहां सतामत्रिणां जातवेदः ।  
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जहोषिं शततर्हमग्रे

॥४॥

अर्थ— ( नदी फेन ह्व ) नदी फेन को जैसी लाती है उस प्रकार ( हृदं हविः ) यह दान ( यातुधानान् भावहन् ) दुष्टोंको यशो लये । ( यः पुमान् ) जो पुरुष अथवा जो स्त्री ( इदं अकः ) यह पाप करती रही है । ( सः जनः ) वह मनुष्य तेरी ( स्तवतां ) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ ( स्तुवानः अयं ) प्रशंसा करनेवाला यह डाकू ( आगमत् ) आया है, ( इमं ) इसका ( स्म प्रवि ह्वयत ) अवश्य स्वागत करो । हे ( बृहस्पते ) शानी उपदेशक ! इसको ( यसे लब्ध्या ) वशमें रखर, हे ( अग्नी-पोमी ) आग्नि और सोम ! ( वि निष्पतं ) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे ( सोमय ) सोमपान करनेवाले ! ( यापुधानस्य प्रजां ) दुष्टकी सन्तान के प्रति ( जहि ) जा, पहुँच और ( च नयस्व ) उन्हें लेना अर्थात् सम्मार्गसे चला । तथा ( स्तुवानस्य ) प्रशंसा करनेवालेका ( परं उत अवरं ) घेष्ठ और रनिष्ठ ( आग्ने ) आगो ( नि पातय ) नीचे फर दो ॥ ३ ॥ हे ( अग्ने जातवेदः ) तेजस्वी शानी पुरुष ! ( यत्र गुहां ) जहाँ कहीं गुफामें ( एषा ) इन ( अत्रिणां सतां ) भट करनेवाले सजनों के ( जनिमानि ) पुत्रों और संतानों को ( वेत्थु ) तू जानना है ( तान् ब्रह्मणा वावृधानः ) उनको ज्ञानसे यथाता हुआ ( एषां दाततर्हं जहि ) इनके सैन्यों कष्टोंका नाश कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्वसूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे यथाता है। दुष्ट लोगोंको क्रिय रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है। इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषप व्यागया है वद “बृहस्पतिः” है। इसका अर्थ ज्ञानपति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका पुत्र ब्राह्मण ही है; इसलिये इस विषयमें शंका ही नहीं है। “सोम” शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है। “सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना राजा।” ब्राह्मणोंका मुखिया सोम है, उसी प्रकार बृहस्पति भी श्रेष्ठ शानी ब्राह्मण ही है। पाठक इन शब्दोंको पूर्वेक सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंको साथ मिलाकर देखें और तबका मिलकर मनन करें, तो उनकी पता लग जायगा कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण किन गुणोंसे युक्त होना चाहिये। अथ ब्रह्मणः मन्त्रोंका आशय देखिये—

हों या पुरुष हों, जो भेद उत्तम पाशाकरण करनेवाला हो, वद उपदेश सुनते ही धर्म मानते पेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर, धर्मकी प्रशंसा करे और अपर्माचरण की निंदा करे। पाठक ध्यान रखें, कि हृदयके भाव परिवर्तित होनेका वद पहिला लक्षण है। धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्म-घंषके लोग तबसे नित प्रभार आचरण परे इस नियमका उप-देश द्वितीय मंत्रमें देखिये—

नचप्रविष्टका आदर ।

द्वितीय मंत्र—“यद् मनुनि करता हुआ भागया है, हमका स्वागत करो। हे ज्ञानी पुरुष ! उनको अपने वशमें रख कर, ब्राह्मण और उनकी मुखिया से उग्र पर ध्यान रखें ॥ २ ॥”

## वर्चःप्राप्ति-सूक्त ।

यह सूक्त "वर्चस्य-गण" वा प्रथम सूक्त है । वर्चस्यगणके सूक्तोंमें "तेज संवर्धन, बलसंवर्धन, धनकी प्राप्ति, दारीरत्नी पुष्टि, समाज या राष्ट्रमें सम्मानप्राप्ति" आदि अनेक विषय होते हैं । वर्चस्यगणमें कई सूक्त हैं, उनका निर्देश आगे उम्मी उती स्थानपर किया जायगा—

(९)

[ ऋषिः— अथर्वा । देवता-वस्वादयो नानादेवताः ]

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्स्त्वन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।	
इगर्मादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरास्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥	॥ १ ॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अमिहुत वा हिरण्यम् ।	
सुपत्ना अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकमर्धि रोहयेमम् ॥ २ ॥	॥ २ ॥
येनेन्द्राय समभरुः पर्यास्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।	
तेन स्वमेतद् ब्रह्म वर्धयेम संजातानां श्रेष्ठ्य आ धेहेनम् ॥ ३ ॥	॥ ३ ॥
एषां सुहृमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोपमुत चित्तान्यभे ।	
सुपत्ना अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकमर्धि रोहयेमम् ॥ ४ ॥	॥ ४ ॥

अर्थ — ( अस्मिन् ) इन पुरुषमें ( वसवः ) वसु देवता तथा इन्द्र, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि ये देव ( वसु ) धनकी ( धारय-  
न्तु ) धारण करें । आदित्य और विश्वे देव ( इमं ) इन पुरुषकी ( उत्तरास्मिन् ज्योतिषि ) अग्नि उत्तम तेजमें धारण करें  
॥ १ ॥ हे ( देवाः ) देवो । ( अस्य ) इन पुरुषके ( प्रदिशि ) आदिगमें ज्योति, सूर्य, अग्नि और हिरण्य ( अस्तु ) देवे ।  
( सपत्नाः ) सपुत्र ( अस्मद अधरे ) हमारे नाँचे ( भवन्तु ) हों और ( इमं ) इसको ( उत्तमं नारं ) उत्तम गुणमें ( अग्नि  
रोहय ) गुण बढ़ाओ ॥ २ ॥ हे ( जातवेदः ) शानी उपदेवक । ( येन उत्तमेन ब्रह्मणा ) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्रके लिये  
( पर्यासि समभरः ) सुखादि रत्न दिये जाते हैं ( तेन ) उस उत्तम ज्ञानसे, हे ( अभे ) तेजस्वी पुरुष । ( इमं ) इमको ( इदं )  
यदा ( वर्धय ) बढ़ाओ और ( एनं ) इसको ( समाजानां श्रेष्ठ्ये ) अपनी जानिमें श्रेष्ठ ग्यानमें ( आ भेदि ) स्थापित कर ॥ ३ ॥  
हे ( आने ) तेजस्वी पुरुष । ( एषां ) इनके यत्न, ( वर्चं ) तेज, ( रायः पोपं ) धनकी वृद्धि और चित्त आदिसे ( एतं  
आ वदे ) मैं प्राप्त करता हूँ । ( सपत्ना ) सपुत्र हमारे नाँचेके स्थानमें रहें और ( इमं ) इन मनुष्यको उत्तम गुणमें ( अग्नि रोहय )  
पुष्टिवा दो ॥ ४ ॥

व्यक्तिमें देवताका निवासक शक्तियाँ	समानमें देवता समागम्य-तिथी आठ शक्तियाँ	विश्वमें देवता ससवाः (अष्ट)
सूक्ष्मशरीर रक्षादि पाण्डु शरीरका तेज	मातृभूमि जल नदी नद आदि अग्नि विद्युत् आदि	पृथ्वी आप् तेजः ज्योतिः
पाण्य कान अन्नपान शक्यता	शब्द वायु स्थान औषधि, वनस्पति धान्यादि	वायुः आकाशः सोमः
इन्द्रिय गग शन आन्तेज पुष्टि शांतभाव मित्रभाव	साधारण जनता प्राज्ञग, ज्ञानी मनुष्य छत्रिय बीर राष्ट्रपौषक अधिकारी जन्मधिकारी	अहः नक्षत्राणि, देवाः महान् इन्द्रः पूषा वरुणः
मित्रभाव पाणी सातंत्र्य नेत्र, दर्शनराफि गम दिव्य गुण तेज	मित्र जन हृन्मी उपदेशक स्वतंत्र विचारके लोग सांशानिक विद्वान् सर्व विद्वान्, कारीगर धन	मित्रः अग्निः आदित्याः सूर्यः विश्वे देवाः दिव्यं
दुष्ट विचार आग्नेद सेत्रो मघ	वायु स्वाधानता " "	उपतन्वाः नाक ( स्वर्ग ) उत्तमं ज्योतिः मध्यमं " द्वयमं "

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही "अस्मिन्" पद है इसका अर्थ "इस मनुष्यमें" ऐसा है । प्रश्न होता है कि किस मनुष्यके उद्देश्यसे यह शब्द यहाँ आया है ? पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि इस शब्दका संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित "नवप्रविष्ट इन्द्र हुए" मनुष्यके सप ही है । जो मनुष्य मनकी दृष्टि बदलनेके कारण अपने धर्ममें प्रविष्ट हुआ है, उसकी सबसे अधिक उपाति करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्यही है । अपने धर्ममें जो धे-ष्टसे श्रेष्ठ प्राप्त है, वह उसको शीघ्र प्राप्त हो, इस विषयकी इच्छा मनमें धारण करनी चाहिये, अर्थात् उसको विशेष तेज प्राप्त हो ऐसा इच्छा धरना चाहिये । यद्यपि इस सूक्तका पूर्वा-पर संबंध देखनेसे यह सूक्त नव प्रविष्टकी तेजवृद्धिके लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि हारणक मनुष्यकी तेज वृद्धिके सा-मान्य निर्देश भी इसमें है और इस दृष्टिके यह सामान्य सूक्त सप मनुष्यके उपयोगी भी है । पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें ।

अब यहाँ पूर्वोक्त मंत्रोंका भावार्थ दिया जाता है और यह भावार्थ देनेके समय व्यक्तियों जो देवतांश हैं उनको संकरही दिया जाता है । पाठक इसकी तुलना पूर्वोक्त कोष्टकके करें-

### उष्मत्तिका मूलमन्त्र ।

प्रथम मंत्र " इस मनुष्यमें जो निवासक शक्तियाँ हैं तथा छात्र षल, पुष्टि, शान्ति, मित्रता तथा पाणी आदिकी शक्तियाँ हैं, ये सब शक्तियाँ इसमें धन्यता स्थापित करें । इसके स्वतंत्र विचार और इसकी सब इंद्रियाँ इसको उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ "

" मन्त्रार्थ " पुलकमें अंशान्तरका वैदिक भाग वर्णन किया है यह इस मन्त्र अक्षर पङ्क्तिसे । ( साध्याय मंडलद्वारा पङ्क्ति १ मध्य १॥ )



अंदर समता और शांति रखना, ( ५ ) मनमें मित्रभाव बढाना और द्वेषक भाव कम करना, तथा ( ६ ) वाणीकी शक्ति विकसित करना । इन छः शाक्तियोंके बढ जानेसे मनुष्य हरएक प्रकारका धन प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है । यहाँ का " वसु " शब्द धनवाचक है परंतु यह धन केवल पैसाही नहीं, परंतु यह बढ धन है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको भेष्ट पुरुषोंमें धन्य मान सकता है । इस वसुमें सब निवासक शाक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता आ जाती है । ( १ ) " निवासक शाक्ति, ( २ ) क्षान्तेज, ( ३ ) पुष्टि, ( ४ ) समता, ( ५ ) मित्रभाव, ( ६ ) वक्तृत्व, " इन छः गुणोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमाधमें दी है और दूसरे अर्थमें कहा है कि ( ७ ) इसके स्वतंत्र विचार और ( ८ ) इनकी इंद्रिय शक्तियाँ इनको उत्तमोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुँचायें । मनुष्यके स्वतंत्र विचारही मनुष्यको उठते या गिरते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ स्वाधीन रहतीं तो ही वह संयमी मनुष्य भेष्ट बनता है अन्यथा इंद्रियोंके आधीन बनकर दुर्भ्यसनी बना हुआ मनुष्य प्रतिदिन हीन होता जाता है । मनुष्यकी निःसंदेह उन्नति करनेका यह अष्टविध साधन प्रथम मंत्रने दिया है । वह हरएक मनुष्यको देखने-योग्य है । अब दूसरा मंत्र देखिये—

### विजयके लिये संयम ।

द्वितीय मंत्र—“ हे देवो ! इस मनुष्यकी आशामें तेज, नेत्र, वाणी और धन रहे । हमारे शत्रु नीचे हो जाय और इसको सुखकी उत्तम अवस्था प्राप्त हो ॥ २ ॥ ”

इस मंत्रमें “ ( अस्य प्रदिशि सूर्यः अस्तु ) इसकी आशामें सूर्य रहे ” यह वाक्य है । पाठक जान सकते हैं कि विलो भी मनुष्यकी आशामें सूर्य रह ही नहीं सकता, क्योंकि वह मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है, परन्तु सूर्यका अंश जो शरीरमें नेत्र स्थानमें रहता है और जिससे नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी पुरुषके आधीन रह सकता है । इससे पूर्व बौद्धिकी बात सिद्ध होती है कि व्यक्तिके नियममें विचार करनेके समय देवताओंके शरीरस्थानीय अंशही लेने चाहिये जैसा कि पहले मंत्रमें किया है और इस मंत्रमें भी करना है ।

तात्पर्य-मनुष्य इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी शक्तियोंको अपने आधीन रखे । अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है । इस प्रकारका आत्मावर्धनी मनुष्यही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है । यदि जगत्में विजय पाना है, शत्रुओंको दबाना है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंका सबसे प्रथम स्वाधीन करना चाहिये, यह महत्त्वपूर्ण उपदेश वहाँ मिलता है । अब तृतीय मंत्र देखिये—

### ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।

तृतीय मंत्र—“ जिस ब्रह्म ज्ञानसे क्षत्रियको उत्तमोत्तम रस प्राप्त होते हैं, हे धर्मोपदेशक ! उसी उत्तम ज्ञानसे यह ब्रह्म मनुष्यकी वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो ॥ ३ ॥

इन्द्रियोंको, इन्द्रोके अथवा राजाको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबके शत्रु समझा जाता है, वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी वैसाही अपनी जातिमें अथवा अपने राष्ट्रमें भेष्ट बन । राष्ट्रके हरएक पुरुषको भेष्ट ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन पुनः रदने चाहियें । वह मनुष्य नूनन प्र बष्ट हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो । तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्त्वकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके वैसाही भेष्ट बनूँगा, मैं अपनी जातिका नेता बनूँगा और अपने देशमें श्रेष्ठता प्राप्त करूँगा । यह मंत्रका आशय हरएकको निलस्वर्गमें रचना उचित है । अब अगला मंत्र देखिये—

# असत्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा ।

( १० )

( ऋषिः-अथर्वी । देवताः १ असुरः, २-४ वरुणः । )

अयं देवानामसुरो वि राजनि वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।

तत्स्परि ब्रह्मणा शार्शदानं लुप्तस्य मन्थोरुदिमं नयामि ॥ १ ॥

नर्मस्ते राजन्वरुणाम्भु मन्थवे विश्वं ह्यग्निं निचिकेपिं द्रुधम् ।

सहस्रमन्यान्प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदुस्तथापम् ॥ २ ॥

यदुवकभार्तं लिह्यां वृजिनं चक्षुः । राज्ञस्तथा सत्यधर्मणो मुश्यामि वरुणादुहम् ॥ ३ ॥

मुश्यामि त्वा नैश्वानुरादर्णान्महत्स्परिं । सज्जातानुग्रहा वंदे ब्रह्म चापं चिकीदि नः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अर्थ) यद्य ( देवानां असुरः ) देवोंकी भी जीवन देनेवाला ईश्वर ( वि राजनि ) प्रधातना दे । ( हि ) यकीदि ( राजः ) वरुणस्य ) राजा वरुण देव अर्थात् ईश्वर की ( यता ) इच्छा ( सत्या ) शल्य दे । ( ततः परि ) इतना होनेपर भी ( ब्रह्मणा ) ब्रह्मणे ( शार्शदानः ) शीघ्र बना हुआ भँ ( उग्रस्य मन्योः ) प्रचंड ईश्वरके गोपणे ( ह्यग्ने ) ह्य अग्नि ( उग्र मयामि ) ऊपर उठाता हँ ॥ १ ॥ हे ( वरुण राजन् ) ईश्वर । ( से मन्थवे ) तेरे गोपणे ( नम भरतु ) नमस्कार होने । दे ( उग्र ) प्रचंड ईश्वर ! वृ ( विश्वं द्रुधं ) सम द्रोहादि पापोंको ( निचिकेपिं ) ठीक प्रकार जाननादे । ( सहस्रं मन्यान् ) हजारों अर्थोंको ( सार्कं ) साथ साथ भँ ( प्रसुवामि ) प्रेरणा करता हँ । ( चापं ) यद्य मनुष्य ( तप ) तैरा बनकर ही ( सार्कं दारदः ) धी धर्म ( जीवामि ) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे मनुष्य । ( यत् ) जो ( वृजिनं ) अत्यन्त धीर पाप वचन ( जिह्या ) त्रिभुजे ( यदु उपवपम् ) यदुवक भार्तं वृजिना है, वसुधै कर्मा ( सम्पधर्मां ) सर्वे न्यायो ( राजः वरुणात् ) राजा वरुण देव ईश्वरके ( भद्रं ) मे ( त्वा ) मुश्यामी ( मुश्यामि ) छुडाता हँ ॥ ३ ॥ हे मनुष्य । त्वा मुश्यामी ( महतः वैश्वानुरात् धर्मणात् ) बड़े समुद्रके समान मंती ( विधनायक देवके परि मुश्यामि ) छुडाता हँ । हे ( उग्र ) धीर । ( ह्य ) यद्य ( सज्जातान् ) अपनी कतिगणोंकी ( भाष्य ) छप कह दे और ( नः ) हमारा ( मम ) शान ( अप चिकीदि ) तु जान ॥ ४ ॥

## पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां थोडाथा स्पष्टीकरण किया जाता है ।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्नलिखित है—

### एक शासक ईश्वर ।

( १ ) “ देवानां असुरो विराजति ”—सूर्यचंद्रादि देवोंको विविध शक्ति देनेवाला एक प्रभु ईश्वरही सब जगत्का परम शासक है । इससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है । ( मंत्र १ )

( २ ) “ राज्ञो वरुणस्य वता हि सत्या ”—उस प्रभु ईश्वरका मर्यादा शासन है । उर्रोंकी इच्छा सर्वोपरि है । उसके अपूर्व शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता । ( मंत्र १ )

( ३ ) “ विश्वं हयुम् निचिकेपि दुग्धम् ”—हे प्रभु ईश्वर ! तू हम सबके पापोंको यथावत् जानता है । अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता । क्योंकि वह सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके बुरे भले कर्म वह यथावत् उसी समय जानता है । ( मंत्र २ )

ईश्वरको सर्वोपरि मानना, सबसे सामर्थ्यशाली वह है यह धारणा रखना और उससे छिपाकर कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, यह निश्चित रीतिये समझना, पापसे बचनेके लिये आशुकर्य है । पापसे बचानेवाले ये तीन महत्त्वपूर्ण विश्वास इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनको अपने अंदर स्थिर करें । यही तीन भाव मनुष्यका पापसे बचाव कर सकते हैं ।

### ज्ञान और भक्ति ।

मनुष्यको पापसे बचानेवाले ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं । इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्नलिखित रीतिये किया है—

( १ ) “ ब्रह्मणा ध्यातदानम् । ” ज्ञानसे तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है । श्रद्धिके तथा आत्मिके यथार्थ विश्रानको “ ब्रह्म ” कहते हैं । यह ब्रह्म अर्थात् सृष्टिविद्या और आत्मविद्याका उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है । अर्थात् तेज बनाता है । जिस प्रकार तेज शूल चण्डिका नाश करता है उसी प्रकार ज्ञानका तेज शूल भी अज्ञान पाप आदि चण्डिका नाश करता है । मनुष्यकी सभी वस्तुतिका यही साधन है । ( मंत्र १ )

( २ ) “ समस्ते राजन् वदगास्तु मन्यवे । ”—हे ईश्वर ! तेरे बोधके सामने हम नमन करते हैं, तेरे धामनके सामने हम अपना धरि छुकाते हैं । अर्थात् हम तेरी धारणमें

आकर रहते हैं, हम अपने आपको तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं । तू ही हमारा तारनेवाला है । तेरे बिना हम किसी अन्धको धरण जनियोग्य समझते नहीं । ( मंत्र २ )

( ३ ) “ शतं जीवाति शरदस्तवायम् । ”—जो वर्ष जीवित रहेगा जो तेरा बनेगा । जो परमेश्वरका भक्त बनकर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है ? ( मंत्र २ )

पाठक इन तीन मंत्रभागोंमें ज्ञान और ईश्वरभक्तिसे पाप-मोचनकी संभावना देख सकते हैं । सृष्टिविद्याके नियमोंको जानकर तदनुकूल आचरण करना, आत्मविद्याको जानकर परमात्माको सर्वभौम धर्माधारों मानना, भक्तिसे ईश्वरके सम्मुख नम्र बनना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है । पाठक इस सूक्तमें यह मार्ग देखें । इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचनकी संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है ।

### प्रायश्चित्त ।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित्त भी यहां कहा है और वह यहां देखनेयोग्य है—

( १ ) “ ब्रह्म अपचिकीहि । ”—पूर्वोक्त ज्ञान जानकर अपना उत्तम ज्ञान प्राप्त करना, तथा संक्षेपसे जो नियम ऊपर बताये हैं उनको जानना यह उपातिक निश्चित साधन है । जब इस ज्ञानसे अपने अकर्मणोंका पता लगेगा, अपने दुःराचारका ज्ञान होगा तब पश्चात्पापसे शुद्धि करनेका मार्ग है, वह इस प्रकार है—( मंत्र ४ )

( २ ) “ सजातायुमेदा वद । ”—हे वीर ! तू अपनी जातिके पुत्रोंके सामने अपने सब अपराध कहे दे । यही प्रायश्चित्त है । अपनी जातिके ही पुत्रोंके सम्मुख अपने अपराधोंको न छिपाते हुए कहना, यह बड़ा भारी प्रायश्चित्त है और इसके मनुष्यके मनकी शुद्धि होती है । ( मंत्र ४ )

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् या जिस समय पश्चात्पाप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातिके सम्मुख कहना बड़ा धैर्यका तथा मनकी पवित्रताका ही कार्य है । हरएक मनुष्य इस प्रकार प्रायश्चित्त नहीं कर सकता । प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंको छिपानेका ही यत्न करते हैं परंतु जो लोग अपने दोषोंको जनताके सम्मुख कहे देते हैं वे शुद्ध बनकर धीमेधी बड़े महामा मन जाते हैं ।

इस सूक्तमें “ वरण ” आदि धर्मों द्वारा परमारमाका वर्णन हुआ है, “ मुखाभि ” आदि धर्मोंसे पापियोंकी पापसे

सुधानेवाला मधोपदेशक का वर्णन है और "इमं" आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है । धर्मोपदेशक पापियोंको पापसे बचानेका उपदेश परमेश्वरभक्तिका मार्ग बताकर कर रहा है, यह बात इस सूक्तके शब्दोंमें स्पष्ट होती है। अर्थात् धर्मोपदेशक इसी मार्गसे स्वयं पापसे बचे और दूसरोंको पापसे बचावे ।

### पापी मनुष्य ।

पापी मनुष्य सहस्रों प्रकारके पाप करना है, परंतु इस सूक्तमें कुछ मुख्य पापोंकाही उल्लेख किया है, वह भी यहाँ देखने-योग्य है—

( १ ) " विश्वं दुष्पं । " — सब देवदेह अर्थात् सब प्रकारका

घोषा । घोषा देना, काया-वाचा-मनसे विघ्नासथात करना, बड़ा पाप है। इसमें बहुतसे पाप आ जाते हैं : ( मं० २ )

( २ ) " यदुक्त्वपातृतं जिह्मया वृजिनं बहु । " — जिह्मसे अस्वस्थ तथा पापभावसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पापका कर्म है ( मं० ३ )

द्रोह करना और अस्वस्थ बोलना, इन दोनोंमें प्रायः सब पाप समाजाने हैं । इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना सम्भव है । धर्मोपदेशक तथा साधारण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको पापमोचनके विषयमें बहुतही योग्य शोध मिल सकता है ।

यह पापमोचन-प्रकरण समाप्त ।

## सुख-प्रसूति-सूक्त ।

( ११ )

[ प्रापिः—अथर्वा । देवता-पूषादद्या नाना देवताः ]

वपट् ते पूषस्मिन्स्रुतौर्वर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।

सिस्त्रतां नार्युतमंजातु वि पर्वाणि जिहत्तां स्रुत्वा तं ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूर्म्या उत । देवा गर्भं सर्मेरयन् तं व्यूर्ण्वन्तु स्रतवे ॥ २ ॥

सुषा व्यूर्णोतु वि योर्नि हापयामसि । अथर्वा स्रपणे त्वमव त्वं विष्कले स्रज ॥ ३ ॥

नेर्वं मसि न पीर्वसि जेर्वं मज्जस्वाहृतम् ।

अर्वेत्तु पृश्नि शेर्वलं शुनें जराय्वस्रवेऽर्वं जरायुं पघताम् ॥ ४ ॥

वि ते भिनस्रि मेहनुं वि योर्नि वि श्वीमिके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुंमारं जरायुणावं जरायुं पघताम् ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पृक्षिणाः ।

एवा त्वं दंशमास्य साकं जरायुणा पृतावं जरायुं पघताम् ॥ ६ ॥

अर्वे-हे ( पूषत् ) पीरक इंधर । ( ते वपट् ) तेरे लिये इस आना अर्पण करते हैं । ( आधिद् पृती ) इस प्रसूतिके बादमें गर्भवती होकर वेनाः ) आने यवनाया याया विषाला रंधर गरायता ( कुण्ड ) करे । ( अयवनाया ) निवपर्वेद कावरीसे

जन्म देनेवाली (गारी) स्त्री (सिखरा) पक्षपाते रहे । तब अपने (पर्वीय) शर्माको (सूतर्वे उ) सुवप्रसूतिके लिये (निजिह्वता) खाले करें ॥ १ ॥ (द्विः) आकाशकी (उत) तथा (भूयः) भूमि की (पतसः प्रविशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवीं (गर्भं समैरयन्) गर्भ को बनाया, इसलिये वेही (सूत्ये) उसकी सुवप्रसूतिके लिये (तं रि ज्युयन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर लुला करें ॥ २ ॥ (सूया) उतम संगत उत्पन्न करनेवाली-माता (व्युर्णोति) अपने अंगोंको लुला करे । हम (योनि) योनि (निहायमामसि) खोलते हैं । हे (सूपणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री । (स्यं) तू भी (श्रयय) शंकरसे प्रेरणा कर । और हे (विपकले) वीर स्त्री । (स्यं) तू (अवसृज) मातृको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ (न ह्य माले) नहीं तो गर्भमें, (न पीरवि) न चर्भों, और (न ह्य मज्जसु) न तो मज्जामें वह (आहर्त) लिपटा है । (प्राधि देवतं) नरम सेवारके समान (जरायु) जैली (शुने धत्तये) कुन्तके लिये खानेके (अवैतु) नीचे आवे, (जरायु) जैली (अवपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥ (ते मेहनं) तेरे गर्भके मार्गको, (योनि) योनि तथा (गर्भागिके) दोनों नाडियोंको (त्रि नि वि गिनसि) विशेष रीतिसे लुला करता हूँ । (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रको (त्रि) अन्न करता हूँ तथा (जुमारं जरायुणा वि) वनेको जैरिसे अलग करता हूँ । (जरायु) जैरी (अव पद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥ जैसे वायु, जैसे गन् और जैसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं (एव) इसी प्रकार है (दसमास्य) दस महिनेवाले गर्भ । तू (जरायुणा साकं) जैरीके माय (पत) नीचे आ तब (जरायु अवपद्यताम्) जैरी नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश । तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं । इस प्रसूतिके समय सब जगत्का निर्माता तूही हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी पक्षपाते रहे और इस समय अपने अंगोंको लुला करे ॥ १ ॥ आकाश और भूमि की चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्योदित सवपूर्ण देवीं इस गर्भको बनाया है । और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसकी सुव पूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लायें ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग लुला करें, सहाय करनेवाली धार्द योनि को छोले । हे स्त्री । तूही मनसे शंकरसे प्रेरणा कर और सुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ मास, चर्भ या मज्जामें विपका नहीं होता है । वह पानीमें पर्यारोप बननेवाले नरम सेवारके समान अति कोमल धैर्यमें लिपटा हुआ होता है, यह सब धैर्यकी घेली एकदम बाहर भावे और वह नालके साथ जैली कुन्तोंको खानेके लिये खा जावे ॥ ४ ॥ योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको डाला किया जावे, प्रसूति होनेही मातासे बचा अलग किया जावे और बगैरे जैरी नाल समेत अलग की जावे । नाल समेत सब जैली पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार गन् वेगसे विपयीं गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार सबमें महिनेमें गर्भ जैरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर भावे और जैरी आदि सब नीचे गिर जावे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका कुछ भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

### प्रसूति प्रकरण ।

इस सूक्तसे मया प्रकरण प्रारंभ हुआ है । यह प्रकरण विधिपतः त्रिषंके लिये और सामान्यतः व्यक्तके लिये विशेष लाभकारी है । विशेषकी प्रसूतिके जितने कष्ट सदेने पकेते हैं उनका दुःख त्रिषंही जानती है । प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे साम्य है । गर्भाधारणसे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भाधारणसे भी पूर्ण समयमें भी जो निम्न पालन करनीय है, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुतसे घट दना संभव है । इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है । यहाँ इस सूक्तमें जितना विषय भाषा है, उसको सब बताने हेतिये—

### ईशमक्ति ।

परमेश्वरकी भक्तिही मनुष्यको दुःखोंसे बच कर सकती है । यहस्वी स्वीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होंगे तो उन्हें पारवारकी त्रिषंकी प्रसूतिके कष्ट न होंगे, यह मतनेके लिये इस सूक्तके प्रथम भागके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी सामान्य पूजाका वर्णन किया है ।

“वपद्” शब्द “इवाहा” अर्थमें अर्थात् “आयसम-पद्”, के अर्थमें प्रयुक्त होता है । (हे पूज्य । ते वपद्) हे ईश्वर । तेरे लिये हम अपने आपको समर्पण कर रहे हैं । तू ही (अयं मा) अन्न सज्जनोंका भाग करनेवाला अर्थात् दितृर्त्ता है, तू ही (वेषा) मम मनुष्यका रक्षयिता और निर्माता है

और दूही ( दूध ) सब सुल्लोका दाता है । इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लियेही पूर्णतया समर्पित होते हैं ।

यहां पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके पुत्र ७ सुमंधानसे देखने योग्य हैं । " सब सूर्यादि देवताओंकी शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है । " इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहाँ देखिये । " सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा महायन्त्रा है, और मैं उसकी गोदमें हूँ " इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके भाव रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आगेयसे युक्त होता है और प्राय ऐसा मनुष्य सदा आनन्दमें रहता है ।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक दिव्य आधि है । कामविकारका नियमन हुआ तो जिनके प्रसूतिके दुःख भीमें नौवें कम होगे, क्योंकि कामकी भांति होनेसेही जिनमें अशक्त बनती हैं और अशक्तताके कारण प्रसूतिके बह अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पथावके क्षणदि रोग भी बह देत हैं । इसलिये कामभोगका नियमन परमेश्वर भांसिसे कनिका उपदेश द्वारा ही सुल्लोका यहाँ अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये ।

### देवोंका गर्भमें विकास ।

सूर्यादि देवताएं अपना अपना अंश गर्भमें रखी हैं, सब देवताओंका अंशरत्ता गर्भमें होनेके पथाव आत्मा उपमें आता है । इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है । [स विषयमें स्नाप्यायमंजल द्वारा प्रकाशित " प्रद्वार्वर्ष " पुस्तकमें " देवोंका अंशरत्ता " शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये । वहाँ विविध वेदमंत्रों द्वारा वह विषय स्पष्ट कर दिया है । ] तात्पर्य यहाँमें अंशरत्तसे अनेक देवताएं रहती हैं और उनका संश्लेष ब्रह्म देवताओंके साथ है । भूमि और आकाशकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली सब देवताएं अपने गर्भमें अंशरत्तपथे आनर्ह हैं, मानो उनका संमेलन ( समीकरण ) ही गर्भमें हुआ है और उनका आधिशाता आत्मा भी उसी गर्भमें है । यह हृदयविश्वास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये । अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने काल कामोपयोग का ही फल नहीं है, परंतु उसमें और विशेष मरुत्तपूर्ण आत्म-आधिका और देवी शक्तिका संश्लेष है । ऐसा जब गर्भवती होने स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भकर पोषण भी उत्तम होता है । गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आशुन किया जाता है । उन समयके मंत्र एवं चारों पाठक देखिये तो

१ ( अ. ६ भा. १ )

उनकी पता लगेगा कि गर्भाधान कामविकारके योग्यके लिये नहीं है परंतु उच्च शक्तियोंकी धारणा के लिये ही है । अस्तु ! गर्भिणी स्त्रियाँ अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएं गर्भका पोषण और सुख प्रसूतिमें अत्यंत सहायका देगी । अर्थात् इस प्रकार देवताओंकी सहायता और परमार्थों का आधार सुखे है इसलिये सुखे कोई बह नहीं होगे । पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढ़ें ।

### गर्भवती स्त्री ।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढ़तासे धारण करे । सब गर्भवती स्त्री अथवा पृथ्वीप्रथममें रहनेवाली स्त्री निर्दोष वातावरण चिचारे करे—

१ नारी-जो गर्भनीतिसे ( नृणाति ) चलती है अर्थात् गर्भ नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा ( नर ) पुरुषके मार्ग रहती है, वह नारा कहलती है । अर्थात् विवेक पृथ्वीप्रथमके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है । ( मंत्र १ )

२ ऋतमप्रजाता—( ऋत ) कल्पितमानुष्य ( प्रजाता ) प्रजनन करनेसे युक्त । अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्व परमोपयोगके अनुकूल होते हैं । ऋतुगामी होना, गर्भ धारणके पथाव तीन वर्षके उपरान्त अथवा बालक दुध पीना छोड़ दे तत्पश्चात् नानुगामी होना, इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुल्लोके प्रसूत होती है । ( मंत्र १ )

३ सूर्य, सूर्य्या-जिस स्त्रीके प्रसूतिके बह नहीं होने, अर्थात् जो सुल्लोके प्रसूत होती है । जिनकी सोम नियमोंके पालन द्वारा यह पुत्र अपनेमें माना चाहिये । ( मंत्र ३ )

४ चिन्कला-वीर स्त्री अर्थात् पर्यवसती स्त्री । जिनकी अपने अंदर पर्यवसना आवश्यक है । जोहने बह होने लगे तो पथराना नहीं चाहिये । यथेष्ट उनको धरना चाहिये । ( मंत्र ३ )

गर्भवती जिनकी इन शक्तियों द्वारा प्राप्त होनेवाला शिशु अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुल्लोकाके लिये इन शक्तियोंकी आवश्यकता है ।

### गर्भ ।

इस सूक्तमें गर्भका भाव " द्या म ह्य " आया है । इसका अर्थ " द्य मारुर्वा अनुकूलता " देना है । यह ६६१ वर्णित

गर्भका समय बना रहा है। दसवें माहिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है। दसवें माहिनेमें पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भभी अपना अवस्थामें होनेके कारण मानाके कष्ट बढाती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपान और गर्भजाव से सब मानाके कष्ट बढाने-पाते हैं और ये सब दुःख गृहस्थाश्रमी स्त्रीके नियमरहित यतीवसे ही होते हैं। जो गृहस्थाश्रमी स्त्री १२५ योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होता है।

### सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।

- १ स्त्री परदेखकी नाजि करे । ( मंत्र १ )
  - २ अपन गर्भमें दबनाओसा अभावतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे । ( मंत्र २ )
  - ३ ( निखला ) दस्तसे अपना व्यवहार करे । ( मंत्र १ )
  - ४ प्रसूतिके समय ( पचासि विजिहवा ) अपने अगोंको नीला करे । ( मंत्र १ )
  - ५ ( सूर्या व्यूर्गोतु ) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अगोंको बाला अपना सुला करे अर्थात् सप्त न बनावे । ( मंत्र ३ )
  - ६ ( सूर्यो ) खे श्रमय ) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मनकी इच्छा साफिते भा अंदरमें प्रेरणा करे, तथा मनसे प्रसूतिके अगोंको प्रेरित करे। यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्री को ही अंदरसे अपनी चाहिये । ( मंत्र ३ )
- ### घाईकी सहायता ।
- १ प्रसूतिके समय घाई की सहायता आवश्यक होती है। नष्ट घाई भी प्रसूत होनेवली स्त्रीको सख सुबनाएँ देती रहे और धीरे धीरे देती रहे। ' घामेधर तो। सद्यक हे और सब दबती दुःखारे पभने हैं अथ- उनकी भी सहायता सुन्द है "

इत्यादि वाक्योंसे उत्तका धोरक बढाये ।

२ आवश्यक्ता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे सुला करे। ( मंत्र ३ )

३ जेरीके अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेरी मान लादि सब बाहर आजाय और कोई उत्तका पदार्थ माताके गर्भमागमें न रहे जाय इस विषयमें घाई दस्तसे अपना काम करे। यह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुतही दुःख होता समन है। ( मंत्र ४ )

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिउले अवयव सुखे करने चाहिये। उनको यथायोग्य रीतिसे सुखे करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे। ( मंत्र ५ )

५ प्रसूति होतीही मानाके पाससे पुत्रको अलग करके उसपरका जेरीका बैठन हुंकर जो आवश्यक कार्य कला हो वह सब योग्य रीतिसे करे। ( मंत्र ५ )

### सूचना ।

यह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पांडित्यका नहीं है। इस सूक्तका अर्थ भा शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणके अनुसंधानी समझना उचित है। इसलिये जो वैद्य या शास्त्रज्ञ हैं, जिन्होंने सुख-प्रसूति शास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके समय अच्छा अनुभव भी है, उनको इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वेही इस सूक्तके " सिखतां, विजिहवा, व्यूर्गोतु " आदि शब्दोंके ठीक प्रकार समझते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

आशा है कि प्रसूति-शास्त्रके अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक निर्दोष व्याख्या कर सकेंगे।

## श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त ।

( १२ )

[ ऋषिः—भृगुर्गिराः । देवता—वसुदेवता ]

ज॒रो॒युजः प्रथ॑म उ॒त्तियो॑ वृषा वा॒तभ्र॑जा स्त॒नय॑न्नेति वृ॒ष्ट्या ।  
 स॒नो मृ॒डाति॑ त॒न्वृ॒ क्रजु॑गो रु॒जन् य एक॑मोर्ज॒स्त्रेधा वि॑च॒क्रमे ॥ १ ॥  
 अ॒ङ्गे-अ॒ङ्गे शो॒चिपा॑ शि॒श्रिया॑र्णं न॒मस्य॑न्त॒स्त्वा ह॒विषा॑ विधेम ।  
 अ॒ङ्कान्त॑स॒मङ्कान् ह॒विषा॑ विधेम॒ यो अग्र॑भी॒त्पर्वी॑स्य॒ ग्रभी॑ता ॥ २ ॥  
 मु॒ञ्च शी॑र्ष॒क्या सु॒त का॑स ए॒नं परु॑ष्प॒रुरावि॑वेषा॒ यो अ॑स्य ।  
 यो अ॑भ्र॒जा वा॑त॒जा यश्च॑ शु॒म्भो व॑न॒स्पती॑न्त्स॒चता॑ पर्व॒तांश्च ॥ ३ ॥  
 शं मे॑ पर॒स्मै गा॒त्राय॑ श॒मस्त॑व॒राय॑ मे । शं मे॑ च॒तु॒र्व्यो अ॒ङ्गेभ्यः॑ श॒मस्तु॑ त॒न्वेद॑म॒ ॥ ४ ॥



यह भावार्थ मंत्रोंके अर्थोंके अनुसंधानसे पाठक पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका ता पर्यं आजायगा क्योंकि यह सूक्त सरल और सुमंदा है। तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहाँ विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है। यह "तन्मनाशन गय" का सूक्त है अर्थात् रोगादिनाशक भाव इसमें है।

### महत्त्वपूर्ण रूपक ।

सबसे पहले प्रथम मंत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करनेयोग्य है। पूरुसूक्तमें "( जरायुजः दशमास्य पुत्रः ) जेरसे बहृत उत्पन्न होनेवाले दशमासतक गर्भमें रहनेवाले पुत्र" का वर्णन है। उसके साथ इस सूक्तका सबध मतानेके लिये इस सूक्तके प्रारंभमें ही "जगयुज प्रथमः" ये शब्द आगये हैं। यहाँ पुत्रका वर्णन यहाँ महत्त्वपूर्ण रूपकसे किया है। इस रूपकमें सूर्य ही "पुत्र" है सूर्यके पुत्र होनेका वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आगया है। यहाँका यह वर्णन सनत्तर्म आनेके लिये कुछ निवर्गकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

परंतु यहाँ नूननोरपज थालकका वर्णनही करना नहीं है, विदु जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन-पोषक रसिरसायन का वर्णन करना है। यह करनेका प्रस्ताव इस प्रकार इस सूक्तके प्रारंभमें किया है। और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध जोड़ दिया है।

प्रायः प्रसूतिके समय तथापश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आ जाती है और नाना रोगोंकी सम्भावना उत्पन्न होती है। इसलिये इस कष्टको दूर करना सुगमतासे किस रीतिसे माध्य होता है, यही बाताना सूक्तका मुख्यतया विषय है। मानो इस विषयसे आरोग्य का विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है।

### आरोग्यका दाता ।

सूर्य ही आरोग्यका दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें स्पष्ट कही है

स नो मृदाति तन्वे ऋजुगो रुजन् । ( मंत्र १ )

"वह (सूर्य) हमारे शरीरोंको आरोग्य देता है, सीधा जाने-

संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध । पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें ।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मूलमंत्र बताया है और उपमासे यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालकस्त्री सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें दिवस्वप्न सूर्यका उदय होता है । घर छोटा विश्व है तथा विश्वही बड़ा घर है । इसलिये इस घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये । आरोग्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् जहातक हो। सके वहांतक बालक को घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूर्यके खुले प्रकाशमें शनैः शनैः लानेका यत्न करना चाहिये, जिससे घरका सूर्य भी नारीय और बलवान बन सके ।

### सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा ।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि ( अंगे अंगे नोचिया सिंभियाणं ) शरीरके प्रत्येक अंगमें तेजके अंशसे यह सूर्य रहता है, उनको ( नमस्यन्तः ) नमन करना चाहिये, अर्थात् उमंग आदर करना चाहिये, सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढ़ाना चाहिये । जो लोग घरके अंधेरे कमरोंमें अपने आपकी बंद रखते हैं वे निरंतर होते हैं, प'नु जो लाली हवामें घूमते हुए सूर्यप्रकाशसे अपना तेज बढ़ाते हैं वे तेजस्वी होते आते हैं ।

शरीरके प्रत्येक ( पर्व ) जोड़में यह अंश रहता है, इस सूर्यके अंशसे इस स्थानपर ( प्रमीता ) अपना अधिकार जमाया है । इराक अथयवमें इसके ( मंकांन् ) चिट्ठोंको पढ़क बना चाहिये और ( समंकांन् ) मिले जुले चिट्ठोंकी भी पुरकतना चाहिये । जैसा आंसुम तेजकपने सूर्यका निज्जस है, अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोते है । यह सब जानना चाहिये । और जिस स्थानमें अनारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य-प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये । संकरके मंद सूर्यके प्रकाशमें तुली आंसुसे सूर्य विष देवते रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर होजाते हैं । विशेष नेत्रसंगोके लिये विशेष सुक्ष्म सूर्य-किरणका प्रयोग करना चाहिये । विशेष अंगके लिये भी विशेष सुक्ष्म सूर्य-किरणका प्रयोग करना होगा । माथापर आरोग्यके लिये बड़े विशेष आसपक सूर्यकिरणोंसे तपानेमें भी बहुतसा कार्य हो जाता है । इस

सुक्ष्मके केवल सूर्य किरणचिकित्सासे बहुतसे रोग दूर करना संभव है । यदि सहन हो सके इतने उष्ण सूर्य प्रकाशमें नगा शरीर कुछ देरतक तपाया जाय तो भी सर्वसाधारण शरीर की नीरोगता बढ़ती है । शीतकालमें यह करना उत्तम है, परंतु गर्मीके दिनों और उष्ण देशोंमें विचारसे और सुक्ष्म ही इसका प्रयोग करना चाहिये । नहीं तो आरोग्यके स्थानपर अनारोग्य भी होगा इसलिये यह सब अभ्यास सुक्ष्म ही बढ़ाना चाहिये ।

तृतीय मंत्रमें ( शिदिंशरयाः ) सिरदेदे, ( कासः ) खांसी, ( पदः ) शीपस्थानके रोग उक्त प्रकार इटानेकी सूचना दी है । ( घातजाः ) घात, ( शुष्मः ) पित्त, ( अन्नजाः ) कृष्णके प्रकोपके कारण उत्पन्न हुए ये तथा अन्य रोग भी उती सुक्ष्मसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है । ( पर्वतात् सचत्ता ) तथा पर्वतों पर रहकर ( वनस्पतीन् सचत्ता ) उचित बनी-पशियोंका सेवन करनेका भा उपदेश इन्हीं मंत्रमें है । बनीपशियोंका सेवन दो प्रकारसे होता है, एक वृक्षादिकोंके नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियोंके रसादि।। उपयोग करना । पर्वतोंके उष्ण शिखरोंपर निवास और वृक्षाके नीचे बैठना उठना बड़ा आरोग्यदायक है, यह बातें हमने कई रेपिथोरस सुक्ष्मसे अजमाई हैं और हमारे अनुभवसे बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं । पाठक भी इससे लाभ उठावें ।

चतुर्थ मंत्रमें सिर आदि उत्तमोग तथा पाक आदि अघोरोग-तापयें सब शरीरका स्वास्थ्य-पूर्वक रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्रद्वारा दी है ।

### सर्वसाधारण उपाय ।

इस सूत्रमें सर्व साधारणके लिये भी बड़ा बोध प्राप्त हो सकता है । सुष्ठु काठ वृक्ष के कि जो नीचे शरीर सूर्यके किरणोंमें घूमने हैं अर्थात् अपने शरीरको सूर्यकिरणोंसे तपाने हैं उनको धर्म गैर, खांसी, दमा तथा श्व आदि रोग होनेकी नहीं । ये सब रोग उनको होते हैं कि जो अंगे शरीरपर सूर्य-किरण नहीं लेते, अर्थात् मदा बध्मोसे बेहिस होकर तग मदाओंमें बैठते हैं । जो अपने बोध सैत वे इस सूत्रमें बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं । वेदमें इनीके परवा नामही " श्व " नाम है । यदि पाठक अपने पाशो " श्व " का कारण समझने को वे उल्लेख कइर अधिक देरतक रहने हीने सूर्यकिरणसे विनयेताना आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे ।

# अन्तर्यामी ईश्वरको नमन ।

( १३ )

[ ऋषिः- भृगुऋषिः । देवता-विद्युत् ]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्स्वने । नमस्ते अस्त्वशमने येना दृढाशे अस्पसि ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहमि । मृडया नस्तनूम्यो मर्यस्तोकेभ्यस्त्वाधि ॥२॥

प्रवतो नपाद्यम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुपे च कृणमः ।

विद्य ते धामं परमं गुहा यस्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

यां त्वां देवा असृजन्त विश्व इपुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।

सा नो मृड विदथे गृण्वाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

अर्थ- (विद्युते ते) विशेष प्रकाशमान तुलको (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे । (स्तनयित्स्वने ते नमः) गडगडानेवाले तुलको नमस्कार होवे । (अशमने ते नमः अस्तु) ओठे रूत तुलको नमस्कार होवे । (येना) जिसने तू (दृढाशे अस्पसि) दुःखदायीको दूर फेंकता है ॥ १ ॥ हे (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले! (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार होवे । (यतः) कर्षोके तू (तपः समूहसि) तपसं इच्छा करता है । (नः तनूम्यः मृडय) हमारे शरीरोंको सुख दे और (तोकेभ्यः मयः कृधि) बच्चोंके लिये सुख प्रदान कर ॥२॥ हे (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले! (तुभ्यं पूज नमः अस्तु) तुम्हारे लिये मैं नमस्कार होवे । (ते हेतये तपुपे च नमः कृणमः) तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं । (यत् ते धामं) जो तेरा स्थान (परमं गुहा) परम गुा अर्थात् हृदयरूपी गुहामें है वह हम (विद्य) जानते हैं । उस (समुद्रे अंतः) समुद्रके अंदर (नाभिः निहिता असि) तू नामि रूप रहा है ॥ ३ ॥ हे (देवि देवी) (असनाय) शत्रुघ्न फेंकनेके लिये (धृष्णुं इपुं कृण्वाना) बलवान सुन्दर बाण करनेवाले (विश्वे देवाः) सब देव (यां त्वा) जिस तुलको (अस्तु) प्रकट करते हैं, (तस्यै ते नमः अस्तु) उस तेरे लिये नमस्कार होवे । (सा) वह तू (विदथे गृण्वाना) तुझमें प्रशंसित होनेवाली (नः मृड) हमें सुख दे ॥ ४ ॥

भावार्थ- हे देवि ! ईश्वरी ! तू बिजली आदिमें अपना तेज प्रकट करती है, मेघोंमें गर्जना कराती है और अपनी शक्तिसे ओले भी बरसाती है, इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर कराती है, इसलिये तुझे हम सब प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाला देवी ईश्वरी ! तू तपोमय जीवनको हमारे अंदर इच्छा करती है अर्थात् हमारे तपशक्ति बढ़ाती है, उस तपसे हमें तथा हमारी सेतानोंमें सुखी कर, तेरे लिये प्रणाम करते हैं ॥२॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! हम जानते हैं कि तेरा स्थान हृदयरूपी श्रेष्ठ गुहामें है, वहाके समुद्रके अंदर तू मय आभावरूप होकर रहती है, इसलिये तेरा तेज और तेरे दुष्ट विघातक शस्त्राद्य अथ तू तेरी शक्तिके समुल्लस हम सिर झुकाते हैं ॥३॥ हे देवी ईश्वरी ! शत्रुघ्नो दूर करनेके लिये शस्त्राद्य बनानेवाले सब तपव्येच्छु लोग सदा तेरी भांकि करते हैं इस कारण तुझमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे । हम सब तुझे प्रणाम करते हैं ॥४॥

## सूक्त की देवता ।

इस सूक्तकी देवता "विद्युत्" है । यद्यपि विद्युत्का अर्थ मित्रही है, और इस सूक्तका प्रारंभ मेघस्थानीय विद्युत्के वर्णन

से ही हुआ है, तथापि विद्युत् का वर्णन करना मुख्य उद्देश्य इस सूक्तमें नहीं है । जिस प्रकार अन्यान्य सूक्तोंमें अग्नि आदि देवताओंके मिथसे परमात्माका वर्णन होता है, उसी प्रकार विद्युत् रूप ही देवताके मिथसे ईश्वरका, जगन्माता, आदिमाता

देवाके रूपमें, परमात्माका ही वर्णन यहाँ हुआ है, इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्रभाग यहाँ देवने-योग है ।

१ "प्रवतः न-पात्" — "प्रवत्" शब्दका अर्थ उच्च स्थान है । उच्च अवस्था, उच्चता आदि भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं । उच्चतासे न गिरानेवाला यह "प्रवतो न-पात्" का भावार्थ है । परमात्मा ही मनुष्यमात्रको उच्च अवस्थामें रखनेवाला और वहाँसे न गिरानेवाला है । (मंत्र २, १)

२ "ते परमं धाम युवा" — नेश परम धाम हृदय की शुद्धिमें है । हृदयमें आत्माका निवास है, वही उच्चपरम पवित्र निवास-स्थान है, यह उपनिषदादिमें अनेक बार आगया है ।

३ "समुद्रे अन्तः नाभिः निदित्वाऽमि ।" — उभी समुद्रमें मध्यभाग तू है । हृदय युवामें मानस शरीर है, समुद्र है, विचारका अथवा भावनाओंका महासागर है । उभरी नाभी उसका आधार स्थान, वही आत्मा है । क्योंकि इस समुद्रकी सब लहरें उसकी ही प्रेरणासे अथवा शक्तिसे उठती हैं और उभीकी शक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है ।

४ "यो एवा देवा अस्तुजन्त विभे ।" — त्रिषु देवकी सब देव प्रकट करते हैं । आत्माका देवोद्गाता प्रकाशित होना वेदमें अनेक स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है । शरीरमें नेत्रादि उच्च इंद्रियोंद्वारा आत्माका प्रकाशन हो रहा है । यदि नेत्रादि इंद्रियाँ न हों, तो आत्माका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं हो सकती । इस प्रकार सब इंद्रियादि देव शरीरमें आत्माको प्रकट करते हैं । विद्युत् सूर्यचंद्रादि देव परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं । मनुष्य समाजमें सब विश्व परमेश्वरकी प्रशंसा कर रहे हैं । इस प्रकार सर्वत्र देवोद्गाता आत्मा प्रकाशित होता है ।

इस सूक्तको परमात्माकी तैजस शक्तिवादी मुख्यतया वर्णन करना है । और वह वर्णन स्त्रीरूप देवाके वर्णनद्वारा यहाँ किया है ।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थायी आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है; इसी प्रकार अन्धान्त्र इंद्रियों आत्माकी शक्तिसे पेरित होकर ही अपना कार्य करता है । जैसी यह बात शरीरमें है, उसी प्रकार जगत्की सृष्टादि देवताएँ तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं । विद्युत्वायी परमात्माकी शक्ति लेकर ही सूर्य प्रकाशना, विद्युत् चमकती और मयु षडती है । इसलिये सूर्यप्रकाशमें, विद्युत्की चमकाइयें अथवा वायुके वेगमें न केवल इन देवताओंकी शक्तियाँ प्रकट हो रही हैं, परंतु परमात्माकी ही शक्ति प्रकट हो रही है । यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करे, तो उनको इस सूक्तमें विद्युत्की चमकाइयें परमात्माका तैजस फैल रहा है यहाँ भाव निहित होगा । इसी रीतिसे इन सूक्तका विचार करना चाहिये ।

प्रथम मंत्रमें विद्युत्की चमकाइयें, मेषोंकी प्रचंड गर्जना, मेषोंसे बर्कती हुई अथवा जलकी छूट्टे आदि द्वारा परमात्माका प्रचंड कार्य देवता उचित है । इसमें परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है । शृष्टिसे अन्न और जल प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंके अनंत संसार दूर हो रहे हैं । यही परमात्माकी कृपा है ।

## परमधाम ।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वरके परम धामका पता दिया है । परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, त्रिगोपनः अर्कके हृदयमें ही है । परमेश्वरके भक्त ही उस धामको जानने हैं और वर्णन करते हैं । तीन दूसरा उसको जान सकता है और वर्णन कर सकता है ? यही स्थान जानना और इसका अनुभव लेना मनुष्यका साध्य है ।

मनुष्य समुद्रके अंदर गिर पडा है, इस समुद्र की लहरें वही मारी लहरा रही हैं, प्रबंध वायु चल रहा है, धूवाधार मेघ बरस रहे हैं, बिजलियां चमका रही हैं, और वह मनुष्य ऐसे प्रभुब्ध समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है । उसका ख्याल है, कि सहायता बाहरसे आनेवाली है । यही मनुष्यका भ्रम है, यही अज्ञान है और यही कमजोरी है ।

यह तृतीय मंत्र स्पष्ट गार्होत्ते कह रहा है, कि उस प्रभुब्ध समुद्रका केन्द्र वही परमात्मा है और वह अर्कके हृदयमें विराजता है । हे भक्त ! यदि तू सबमुष्ण इसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमेंही उसे हृदयनेका यत्न कर, वही उच्च परम धाम है । और वहीही वह अपने धैर्यसे प्रकाश रहा है ।

पाठको । आप यह ध्यानमें रखिये कि आपमेंसे हरएक के हृदयमें वह आरामस्थिति है । वही सब उन्नति की सहायक शक्ति है । आप उसे पकड़ लीजिये, तो आपकी उन्नति निरिंद हो जायगी । सब जगत् अदरसे बड़ रहा है, बाहरसे नहीं । आपकी उन्नतिही ही यही नियम है ।

## युद्धमें सहायता ।

युद्धके समय, शत्रुका हमका होनेके प्रसंगमें, वरके समयमें



## कुलवधू-मूक्त

[ ऋषिः— भृगुशक्तिराः । देवताः-यमः । ]

(१४)

मर्गमस्या वर्षे आदिस्पधि वृषादिं सजंम् । महायुंत्न इत् पर्यतो ज्योक् पिद्वृषात्ताम् ॥१॥  
 एषा ते राजन्ऋष्या वृषिर्नि धृता यम । सा मातृर्षयर्षा गृह्येते आतुरयो विनुः ॥२॥  
 एषा मे कुन्परा रज्जनाम् तु परि दपसि । ज्योक् पिद्वृषात्ताम् आ श्रीर्ष्यः समोप्याव ॥३॥  
 अतिरत्तमे चष्टेता कद्रवर्षस्य गर्भस्य च । अन्तःकेऽशीर्षेव ज्ञामयोऽर्षि नद्यामि ते भर्गम् ॥४॥

इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं । मरण, दुःख आदिके कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं । इसीलिये बड़े सगुरुष्ण दुःखको स्वीकारते हैं और अन्नोंको सुख देते हैं । यही दुःखका महत्त्व है ।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है, कि “ सब देव उस तो प्रकट करते हैं । ” इसीका स्पष्टीकरण इसमें पूर्व किया जा चुका है । “ युद्धमें अपनी परांता या स्तुति प्रार्थना होती है ” इसका भी कारण स्पष्टतापूर्वक हमने देखा है । यह सब इसलिये करते हैं कि “ शत्रुकी दूर भगवान्के लिये प्रबल शक्ति प्राप्त हो । ” जो परमात्माके सचे भक्त होते हैं, या तो उनके सन्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता, अथवा जो उनकी शत्रुता करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है । अर्थात् परमेश्वर भाँकिही एक वही मारी शक्ति है, जो संशय शत्रुओंका नाश कर सकती है ।

## नमन ।

इस चार मंत्रोंके मूलमें परमेश्वरको सात बार नमन किया है, अर्थात् यद्दका अनेक बारका नमन सिद्ध कर रहा है, कि परमेश्वरकी सार्वभौम सत्ताके सामने सिर झुकाना, उसको सर्वत्र उपस्थित समझना, उसीको सर्वतोपरि समझना मनुष्यकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है । उसको छोड़कर किसी दूसरेको नमन न करनेके संबंधमें “ तुभ्यं एव नमोऽस्तु ” ( मंत्र १ ) यह मंत्रमात्र देखने योग्य है । “ मैं तुझे ही नमन करता हूँ । ” हेरेसे भिन्न किसी अन्यकी उपासना मैं नहीं करता, दे ईपर । तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूँ । मुझे अनुपरीत कर और हतार्य कर । इस रूपमें सर्वोत्कृष्ट उपासना कही है, पाठक इसका उपयोग उपासनाके समय कर सकते हैं ।

अर्थ—( वृक्षात् अथि कर्जं इव ) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंकी माला लेते हैं, उस प्रकार ( अस्याः भर्गं वचंः आदिपि ) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज में स्वीकारता हूँ । ( महादुग्धः पर्वतः इव ) वधे जटवाले पर्वतके समान स्थिरतासे यह कन्या ( पितृषु ज्योक् आस्तां ) मातापिताके घर बहुत समयतक रहे ॥ १ ॥ हे ( यम राजन् ) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! ( पृषा कन्या ) यह कन्या ( ते वधूः ) तेरी वधू होकर ( निभूयतां ) व्यवहार करे । ( अथो ) अथवा ( सा ) वह माताके, भाईके ( अथो ) किंवा पिताके ( गृहे बध्यताम् ) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे ( राजन् ) हे स्वामिन् ! ( पृषा ) यह कन्या ( ते कुल-या ) तेरे कुलका पालन करनेवाली है । ( तां ) उसकी ( उ ते परिदृशसि ) तेरे लिये देते हैं । यह ( ज्योक् ) उस समयतक ( पितृषु आस्तात् ) मातापिताके घरमें निवास करे ( आ शीर्ष्णः समोप्यात् ) जबतक सिर न सजाना जावे ॥ २ ॥ ( अलितस्य ) बंधन रहित, ( कश्यपस्य ) द्रष्टा ( च ) और ( भायस्य ) प्राण साधन करनेवाले ( ते ) तेरे ( प्रहृष्या ) ज्ञानके साथ मैं [ ते भर्गं अपि मह्यामि ] तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूँ, [ जामयः अंतः कौशं इव ] क्षिया अपनी पिशारीकी जैसे बांधती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ [ १ ] वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसी माला बनाकर लेंग, पढ़ते हैं उसी प्रकार इस कन्याका शौर्य और तेज में स्वीकारता हूँ और उससे अपने आश्रमको सजाना चाहता हूँ । जिस प्रकार बड़ी जटवाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निवृत्त होकर देरतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [ २ ] हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे । जिस समय वह आपके घर न रहेगी उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं । जबतक इसका सिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणोंकी स्वार्थीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका संबंध मैं करता हूँ । जिस प्रकार क्षिया अपने जेवर संकुचमें बंद रखती हैं, उस प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

### पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहले मंत्रमें मावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

“वृक्षवनस्पतियोसि पचे फूल और मंजरियां लेकर लोग माला बनाते हैं, और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं । इस प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंवाली वस्त्री है, इसके फूल और पत्ते ( मुखकमल और हृत्पल्लव ) अथवा इसका शौर्य और तेज में लेता हूँ और उससे मैं सुबोधित होना चाहता हूँ । अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूँ । जैसा पर्वत अपने विशाल आधारपर रहता है, उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधारपर रहे । अर्थात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे ( पतिके ) घर आजाये ।”

यह भाव प्रथम मंत्रघ है । इसमें मावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । मावी पति कन्याका शौर्य और तेज पसंद करता है और

उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है । अर्थात् मावी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है । और साथ यह भी ब्रह्मा है कि, कन्या कुछ समयतक मातापिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या मातापिताके घर रहे, तत्पश्चात् पतिके घर आवे । योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि, पुत्र्य अपनी सद्गुणव्यवहारोंको पसंद करता है । पुत्र्य अपनी रति के अनुसार कन्याको चुनता है और अपना मानस कन्याके मातापिताओंसे निवेदन करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और मावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं ।

परंतु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही भाग है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है ।

तिसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम [ ते तां परि द्रुमि ] तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं ।" बह मंत्रभाग राष्ट्र बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है । मंत्रमें दो बार आया है कि 'कन्या पिता माता अथवा भाईके घरमें रहे' अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि 'कन्या विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे । परन्तु वह अभी स्वतन्त्रतासे न रहे ।

जिस प्रकार दूधका आधार लसकी जड़े हैं, अथवा पर्वतका आधार उसकी अति विस्तृत धुनि-धाद है, उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मातापिता अथवा भाई है, और पश्चात्का आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी अन्यथा आधार को लेना उचित नहीं है ।

अर्थ यह लेना योग्य है ।) राजा शब्दका अर्थ " प्रकृतिका रंजन करनेवाला ।" गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी पुरुष की प्रकृति ही है । उस धर्मपत्नीका संतोष बढ़ानेवाला ।

३ असित — ( अ-सितः अकृदः ) बंधनरहित । अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है । गुलामीके भाव विषके मनमें नहीं है ।

४ कश्यपः— ( पश्यकः ) देखनेवाला । अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला ।

५ गवः— ( प्रागवल्युक्तः ) प्राणायामादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढ़ाया है ।

६ ब्रह्मगो युक्तः— ज्ञानसे युक्त । ज्ञानी ।  
ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं ।

पाठक वर परीक्षाके विषयमें इन बातोंका ध्यान रखें । अब वधु परीक्षा करनेके नियम देखिये—

### वधु-परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधुपरीक्षाके मित्रलिखित मंत्र मांग हैं—

१ कन्या— [कमनीया] कन्या ऐसी हो, कि जिनको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो। रूप तेज, अवयवोंकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब बातें, जिससे देखनेवालेके मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस शब्दसे ज्ञान ही जाती है।

२ वधु— [उद्यते पतिगृहं] जो पतिके घर जाकर रहना पसंद करती है। जो पतिके घरकी ही अपना रक्षा घर मानती है।

३ कुलपा-कुलका पालन करनेवाली। पितारके तथा पतिके कुलीनी मर्यादाओंका पालन करनेवाली। जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका रक्षा बढ़ाती है।

४ वे [पत्युः] भगवत्—धर्मपत्नी ऐसी होगी चाहिये, कि जो पतिके साथ बड़ावे। जिससे पतिके धन्यता अनुभव हो।

५ पितृषु आस्ताम्— विवाहके पूर्व अथवा आपरकालमें मातापिता अथवा भाई इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली। किसी अर्थके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये।

६ वृक्षात् छद्म—वृक्षके पुष्पमालाके समान कन्या हो, पितारके कुलकी रक्षाके पुष्पमालारूप कन्या सुगंधित करे।

ये छ. मंत्रमांग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं। पाठक इनका उचित विचार करें और इन उपदेशोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें।

### कन्याके गुणधर्म ।

कन्या मरुप तथा वैजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका रक्षा अपने सदाचरणसे बढ़ानेवाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली, धीमनके पूर्व पितारके घरमें तथा धीमन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी रक्षा बढ़ानेवाली हो। इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसकोही पसंद करना योग्य है।

परंतु जो बीबी, निस्तेज, दुर्गुण, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुष्टाचारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा

दोषयुक्त हो, वह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है।

### मंगनीका समय ।

इस सूक्तसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका श्रापक कोई प्रमाण यथा नहीं है। कन्या सिर सजानेके समयके पूर्व माताके घर देर तक रहे। इस तृतीय मंत्रके कथनसे मंगनीका समय ऋतुगणन होनेके पूर्व कुछ वर्ष-अधिकसे अधिक एक से वर्ष-तेरा संभव है। तथापि वधुपरीक्षाके जो छः लक्षण ऊपर बताये हैं, वे लक्षण स्पष्टतया व्यक्त होनेके लिये शीघ्र दशाकी प्राप्तिही अत्यंत आवश्यकता है। पतिके घर जानेकी क-पना जिस अवधिमें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था मंगनीकी प्रतीत होती है। ये छ शब्द अच्छी, शौध, प्रबुद्ध, करुण उपवर, कन्याकी अवस्था बना रहे हैं। पाठक सब शब्दोंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे, तो उनसे कन्या की निरा आयुमें मंगनी होगी चाहिये इस विषयस विज्ञ हो सकता है।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका सूत्र विचार करके भावी पतिके प्रस्तावका स्वीकार या अस्वीकार करें। इस सूक्तमें वरके मातापिताको तथा कन्याके अपना मत देनेका आधिकार है ऐसा माननेके लिये एक भी प्रमाण नहीं है। यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें भागे मिल जायगी, तो उस समय ही जायगी।

### सिरकी सजावट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है "उषोः पितृभ्यासाया का दीन्याः समोन्म्यात् ।" (देरतक मातापिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिर सजानेका समय आजावे।) यहाँ एक बात करना आवश्यक है, कि त्रिम समय ही ऋतुमती गति है, तब समय उसको "पुष्पवती" कहते हैं। पुष्पवतीका अर्थ फूलोंसे अपने आरुण्य सजाने योग्य। प्रथम (जबसे प्रथम ऋतु-प्राप्ति अथवा प्रथम पुष्पवती होती) उनका पूजाया सजानेकी तथा विशेषतः उसका सिर पूजनेसे सजानेकी प्रथा भारतीयमें इस समय से भी है। मैसूर और मद्रासकी ओरती वरने मर्यादाके प्रसंगके लिये मैसूरों हरबौक हून इन पुष्पवती स्त्रीको सजावटके लिये लाये जाते हैं। मुंबईमें भी कई जातिवर्ग इस प्रथा है। अन्य जातियोंमें कम है, परंतु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है। यह रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है। यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है। एक अन्यायकारण कारण और कुछ। वरारके अभाव के कारण यह रिवाज मूल हो रहा है।



वनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका सिर बहुत सजाते हैं । जिन प्रांतोंमें घूंण्ट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐंषा हमारा ख्याल है, परंतु घृच्छी बात बड़ा के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घूंण्टकी प्रथा अवैदिक कारणोंसे हमारे समाजमें सुख गई है ।

### मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है । प्रथम मंत्रमें घरसे पहला प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है । और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पण का विषय आगया है । देखिये—

१ पृषा कन्या ते वधुः निवृषत्ताम्—यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर निःशेष व्यवहार करे । तथा—

२ पृषा [ कन्या ] ते कुलया, तां उ ते परिदप्रसिः—

यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भगं अपिनद्भामिः— तेरा भाग्य [ इस कन्या के साथ ] बांधता हूँ, अर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्रमाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् शीघ्र ही विवाहका समय होता है । यद्यपि इसमें समय का साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [ १ ] मंगनी, [ २ ] कन्यादान की संमति, [ ३ ] शिरसजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवास का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनीके पश्चात् विवाह होनेके बाद ऋतुमती और पुष्पवती होनेके नंतर कन्याका पातेके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है । पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें । यह विषय अन्याय्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इसलिये इस विवाह-प्रकरणके सूक्त जहाँ जहाँ आँगे वहाँ वहाँ इसके साथ संबंधित देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा । पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों को सहायता दें, तो अधिक निर्दोष निबन्ध होना संभव है ।

## संगठन-महायज्ञ-सूक्त ।

[ ऋषिः- अथर्वा । देवता-सिंधुः ]

( १५ )

सं सं संवन्तु सिन्धवुः सं वाताः सं पंतृत्रिणः ।

इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुपन्तां संस्राग्व्येण हविषा जुहोमि

॥१॥

इद्वै हनुमा यात म इह संस्रावणा जुतेमं वर्धयवा गिरः ।

इहेतु सर्वो यः पृशुरस्मिन् तिष्ठतु या रुचिः ॥२॥

ये नृदीनां संस्रवन्तुपुत्सासुः सदमक्षिताः । तेभिर्मिं सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥

ये मूर्षिपः संस्रवन्ति शीरस्यं चोद्रकस्यं च । तेभिर्मिं सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

अर्थ— [ सिंधवः ] नदियां [ मं स श्यन्तु ] उत्तम रीति से मिनकर बहती रहें, [ वाताः सं ] वायु उत्तम रीतिसे मिनकर बहते रहें, [ पंतृत्रिण सं ] पत्नी जो उत्तम रीतिसे मिनकर बहते रहें । इहाँ प्रकार ( प्र दिवः ) उत्तम दिव्य जन ( मे इमं यज्ञं ) मेरे इस यज्ञमें ( जुपन्तां ) सेवन करें, क्योंकि मैं ( संस्राग्व्येण हविषा ) संगठनके अर्पणके ( नृदीनि ) क्षम कर रहा हूँ ॥ १ ॥ ( इह पृष ) यहाँ ही [ मे हर्षं ] मेरे यज्ञमें प्रति ( स्रावयामसि ) क्षम

( उच ) और हे ( संस्त्रावणाः ) संगठन करनेवाले [ गिरः ] वक्ताओ । [ इमं वर्षयत ] इस संगठनको बढाओ । [ यः पशुः ] जो सब पशुभाव है वह ( इह पशु ) यहाँ आवे और ( भस्मिन् ) इसमें ( या रविः ) जो संपति है, वह ( विष्टतु ) रहे ॥ २ ॥ ( नदीनां ) नदियोंके जो ( अक्षिताः उत्सासः ) अक्षय स्रोत इस ( सद्रं ) संगठन स्थानमें ( संस्त्रवन्ति ) बह रहे हैं, ( तेभिः मे सर्वैः संस्त्रावैः ) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब ( धनं ) धन ( संस्त्राययामसि ) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥ ( ये ) जो ( सर्पिणः ) धीकी ( क्षीरस्य ) दूधकी ( च उदकस्य ) और जलकी धाराएँ ( संस्त्रवन्ति ) बह रही हैं, ( तेभिः मे सर्वैः संस्त्रावैः ) उन सब धाराओंसे हम ( धनं संस्त्राययामसि ) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

मावार्थ-नदियाँ मिलकर बहती हैं, वायु मिलकर बहते हैं, पक्षी भी मिलकर उड़ते हैं, उस प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे यज्ञमें मिल जुलकर संमिलित हों, क्योंकि मैं संगठनके बढानेवाले अर्पणसे ही यह संगठनका मदायज्ञ कर रहा हूँ ॥ १ ॥ चाँधे मेरे इस संगठनके मदायज्ञमें आजाओ और हे संगठनके साधक वक्ता लोगो ! तुम अपने उत्तम संगठन बढानेवाले वस्तुओंके इस संगठन मदायज्ञको फैला दो । जो हम सबमें पशुभाव हो, वह यहाँ इस यज्ञमें आवे और हम सबमें धन्यताका भाव विस्मयलतक निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन मदायज्ञमें बह रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन-द्वारा बढाते हैं ॥ ३ ॥ क्या धी, क्या दूध और क्या जलकी जो धाराएँ हमारे पास बह रही हैं, उन सब धाराओंसे हम अपना धन इस संगठनद्वारा बढाते हैं ॥ ४ ॥

### संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

वह संगठन मदायज्ञका सूत्र है । इसके प्रथम मंत्रमें संगठनसे शक्ति बढनेका वर्णन है, वह संगठन करनेवालोंको देखना और उसपर खूब विचार करना चाहिये । देखिये—

१ सिंघवः—नदियाँ । जो जल बहती हैं उसको स्रोत कहते हैं । इस प्रकारके सैकड़ों और हजारों स्रोत जब इकट्ठे होते हैं और अपना भेदभाव छोड़कर एकरूप होकर बहते हैं, तब उसका नाम "नदी" होता है । नदी भी जिस समय महा-पूरसे बहती है, उस समय विविध छोटे स्रोतोंके एकरूप होकर बढनेके कारण जो महाशक्ति प्रकट होती है, वह अपूर्व ही शक्ति है । यह नदी इस समय बड़े बड़े शूर्योंको उखाड़ देती है, जो उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ पहा देती है । बड़े वृक्ष, बड़े मकान, बड़े पहाड भी मदानदीके वेगके सामने टूटच हो जाते हैं । यह वेग कहाँसे आता है ?

पाठक विचार क्यों तो पता लग जाना कि यह वेग छोटे स्रोतमें नहीं होता, पांतु जब अनंत छोटे स्रोत एकरूप होकर और अपना भेदभाव नष्टकर एकरूपसे बहने लगते हैं; अर्थात् अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं, तभी उनमें वह अपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है । इस प्रकार नदियाँ मनुष्योंको "संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढानेका उपदेश" दे रही हैं ।

२ वायुः—वायु भी इसी प्रकार मनुष्योंको संगठनक उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे वायु जिस समय बहते हैं उस

समय वृक्षके पत्ते भी नहीं दिलते, परंतु वही सब रूक होकर प्रचंड वेगमें जब बहने लगते हैं तब महारुख टूट जाते हैं और मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन संज्ञावातोंसे भी संगठनके बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार वायु भी संगठनका उपदेश मनुष्योंको दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी होता है तो उसको दूसरा कोई भी मार सकता है, परंतु जब सैकड़ों और हजारों चिरियाँ एक कलापमें रहकर अपना संगठन करती हैं, तब उनकी शक्ति बड़ी भारी होती है । इस प्रकारके पक्षियोंके कलाप बड़े बड़े सेतोंका घान अन्य समयमें प्राप्त करके खा जाते हैं । यह संगठनका सामर्थ्य पाठक देखें और अपना अंध बनाकर अपना ऐश्वर्य बर्बाद । पक्षी यह उपदेश मनुष्योंको अपने आचरणसे दे रहे हैं ।

इस प्रकार पहिले मंत्रमें ये तीन उदाहरण मनुष्योंके अंतुष्य रखकर संगठनका महत्त्व बताया है । यदि पाठक इन उदाहरणोंका उत्तम मनन करेंगे, तो उनको पता लग जाना कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।

### यज्ञमें संगतिकरण ।

"नतमं संगठन होय ही है । कोई मरू ऐसा नहीं है कि जिसमें संगतिकरण न हो । दहका मुक्त अर्थ संगठन ही है । प्रथम मंत्रके शिलोपार्थमें इष्टभिये कहा है, कि नदियों, वायुओं और पक्षियोंके संगठनकी शक्ति अमूल्य बरके उच. प्रकार बचने संगठन बनाते उरुतने हमारे समानके जगत् ।

हमारे देश, जाति या राष्ट्रके लोग, इस संगठन महायज्ञमें सम्मिलित हों। एक स्थानपर जमा होना पड़िली सीढ़ी है। इसके पश्चात् परस्पर समर्पण करनेसे संगठनकी शक्ति बढ़ने लगती है। हवनमें सात प्रकारकी समिधाएँ एकत्रित होती हैं और अग्निद्वारा प्रकाश करती हैं। यदि एक एक समिधा अलग होगी तो अग्नि बुझ जायगा। इसी प्रकार जातिके सब लोग संगठित होनेसे उस जातिके यज्ञ चारों दिशाओंमें फैलता है, परन्तु जिस जातिमें एकता नहीं होती, उसकी दिन प्रति दिन गिरावट होती जाती है। इससे यहाँ स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्परके लिये आत्मसमर्पणका भाव अवश्य चाहिये।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उत्तम उपदेश दिया है।

### संगठनका प्रचार ।

“ सब लोग यथा आजाय, उनकी एक परिपद् बने और संगठन बढ़ानेवाले उत्तम वक्ता अपने ऐक्यभाव बढ़ानेवाले षक्तृत्वसे इस संगठन महायज्ञका फैलाव करें।” यह द्वितीय मंत्रके पूर्वार्धका भाव है।

सभा, परिपद्, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्धमें कही है। सब लोग इसका महत्त्व जानते ही हैं। आगे जाकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह अवश्य शान्तदृष्टिसे योग्य है—

### पशुभावका यज्ञ ।

“ जो सब पशुभाव हम सबमें हों वह इस यज्ञमें आजावे, और यहीं रहे अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहे।” पशुभावकी प्रधानता जिन मनुष्योंमें होती है, उनमें ही आपसके झगड़े होते हैं। यदि पशुभाव संगठनके लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्वका भाव बढ़ाया जाय, तो आपसके झगड़े नहीं होंगे। इसलिये पशुभाव की यज्ञमें समाप्ति करनेकी सूचना इस द्वितीय मंत्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठनके लिये

वह अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना कोई संगठन हो ही नहीं सकता।

### पशुभाव छोड़नेका फल ।

पशुभाव छोड़ने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे तथा संगठनसे अपनी शक्ति बढ़ानेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

“ जो धन है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे।” संगठनका यही परिणाम होता है। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्यको धन्य बनानेवाले सब धन मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं। इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके नियम बताये हैं, वे ये हैं—

- १ एक स्थानपर सम्मिलित होना, सभा करना,
- २ उत्तम वक्ता जनताको संगठनका महत्त्व समझा देवे;
- ३ अपने अंदरका पशुभाव छोड़कर, पशुभावसे मुक्त होकर, लोग आपस जाय, सब लोग मनुष्य बनकर परस्पर बर्ताव करें।

इन बातोंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है। इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे, वे जगत्में धन्य हो जायेंगे।

तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें फिर नदियोंके और जलोंके लोतों का वर्णन आया है, जो पूर्वोक्त रीतिसे एकताका उपदेश पुनः पुनः कर रहा है। संगठन करनेवालोंको घी, दूध दही आदि पदार्थ भरपूर मिल सकते हैं, मानो उनमें इन पदार्थोंकी नदियाँ ही बहेंगी। इसलिये संगठन करना मनुष्योंकी उपातेका एकमात्र प्रधान साधन है।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्धमें कहा है, कि “ इन संप्रति प्रयत्नोति हम अपना धन बढ़ाते हैं।” संप्रति प्रयत्नोति ही यथा, धन और नाम बढ़ता है।

आशा है कि पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करेंगे और संगठनद्वारा अपनी पुढ्यार्थ शक्ति बढ़ाकर अपना यथा चारों दिशाओंमें फैलायेंगे।

# चार-नाशन-सूक्त ।

[ ऋषि-चातनः । देवताः अग्निः, इन्द्रः, वरुणः ]

( १६ )

चेंडमात्रास्यां३ रात्रिमुदम्युर्वा३जमत्त्रिणः । अग्निस्तुरीयो॑ यातुहा सो अस्मभ्युमा॑र्वं व्रवत् ॥ १ ॥  
 सीसायाध्या॑ह वरुणः सीसांया॑धिरुपां वति । सीसं॑ म इन्द्रः प्रायं॑च्छुत्तदुङ्ग यांतु॑चातनम् ॥ २ ॥  
 इदं॑ विष्कं॑धं सहत इदं चा॑घते अस्त्रिणः॑ । अनेन॑ विश्वा॑ ससहे या ज्ञा॒तानि॑ पिशा॒च्याः ॥ ३ ॥  
 यदि॑ नो गां हंसि॑ यद्यश्चं॑ यदि॑ पूरु॑षम् । तं त्वा सीसे॑न विष्प्या॒मो यथा॑ नोऽमो॑ अवीरहा ॥ ४ ॥

अर्थ—( ये ऋषिगः ) जो ऋक् चौर ( अमावास्या रात्री ) अमावस्यकी रात्रिके समय हमारे ( प्राज्ञ ) ममूरपर ( उद्दस्युः ) हमला करते हैं, उस विषयमें ( यातुहा सः तुरीयः अग्निः ) चौरों का नाशक वह चतुर्थ अग्नि ( अस्मभ्यं ) हमें (अधिप्रातः) सूचना दे ॥ १ ॥ वरुणने सीसेके विषयमें ( अघ्याह ) कहा है । अग्नि सीसेको ( उपावति ) रक्षक बना है । इन्द्रे तो ( मे ) मुझे सीसा ( प्रायच्छुत् ) दिया है । दे ( अंग ) । यय । ( तत् यातुचातनम् ) वह ऋक् इतनेगला है ॥ २ ॥ ( इदं ) यह अंघा ( विष्कंधं ) उखावट करनेवालोंको [ सहते ] इशारा है । यह सीसा ( अग्निगः ) ऋक्ओंको ( बाचते भीमा देना है । ( अनेन ) इससे ( पिशाच्या या विश्वा जातानि ) पिशाचों की जो आतिग हैं, उनको ( ससहे ) मैं हटाऊ हू ॥ ३ ॥ ( यदि नः गां हंसि ) यदि हमारी गायको तू मारता है, ( यदि अश्चं ) यदि घोड़ेको और ( यदि पूरुषं ) यदि मनुष्यको मारता है ( सं त्वा ) तो उस मनुष्यको ( सीसेन विष्प्यामः ) सीसेसे हम बंधते हैं, ( यथा ) जिससे तू ( नः अ-वीर-हा अस्त्रः ) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अमावास्या की अर्धेरी रात्रिके समय जो ऋक् हमारे सपर हमरा करते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानीसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलके रक्षक तथा उपदेशक सीसेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा देने हैं । शर चलने तो सीसेकी गोली हमें दे रही है । हे चतुर्मा । यह ऋक्ओंको हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीसेकी गोली ऋक्ओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे सूत्र बनेवाली अब जानियींको दूर भगाया जाता है ॥ ३ ॥ हे चौर । यदि तू हमारी गाय, हमारा घोटा अथवा मनुष्यका बंध करेगा, तो तुम्हारा हम गोली बंधावेंगे, जिससे तू हमारा नाश करनेके लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

## सीसेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीसेकी गोली का प्रयोग ऋक्ओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल "सीसे" शब्द है, गोलीका वाचक शब्द नहीं है । तथापि "सीसेन विष्प्यामः" ( सीसेके द्वारा बंध करेगे ) इस प्रयोगसे सीसे शब्दसे सीसेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीसेका उपयोग ऋक्ओंके नाशमें किंवा अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दखता है । ( विष्प्यामः ) बंध करनेका भाव सूत्रमें बंधनासीके समान निशाना मारना है । आशुतम सीसेकी गोली बंधकी जलामें रखकर दूरसे चतुर्को घेरते हैं । कान भी मनुष्यपरने दूरसे ही निशाने पर बंधा जाता है । तात्पर्य हम मंत्रीके शब्द बना रहे हैं कि सीसेकी

गोलीसे दूरसे ही ऋक्ओंका बंध करना चाहिये । मारती छोटीके समान यह पाठसे नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहाँ बताया है ।

## शुद्ध ।

"अग्निः, यातु" आदि शब्दोंके अर्थ समझनेके विषयमें किये हैं, पाठक यहाँ हो देखें । वे सब शब्द ऋक् चौर छठेरे अर्थात् समस्त ऋक्ओंके मानक हैं । इनमें मित्र मित्र शब्दोंका उचित पूर्व विचार नहीं हुआ ठवक विचार यहाँ किये हैं—

१ विष्कंध—अग्निबंध करनेवाला, उखावट उलट करनेवाला, बरतक शब्दमें मित्र उखावटवाला ।

२ विज्ञाच, पिशाची-रक्त पीनेवाले और कच्चा मास खानेवाले क्रूर लोग, जो मनुष्यका मास भी खाते हैं ।

ये सब तथा ( अग्निम् ) भूके ढाकू, ( यातु ) चौर ये सब समाजके शत्रु हैं । इनको उपदेशद्वारा सुधारनेका विषय पूर्व आये हुए ( का० १, सू० ७, ८ ) धर्मप्रचारके सूक्तोंमें आच्युक्त है । जो नहीं सुधरते उनको दंडके लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी सप्तम सूक्तके अन्तमें दी है । उपदेश और दण्ड इन दो उपार्थोंसे जो नहीं सुधरते उनपर संसिकी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है । अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये । जिनका आप्तममें उन्मत्त संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे, तो संभव है कि वे स्वयं ही मनुष्य हो जायेंगे । इसलिये “ प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर चढ़ाई ” यह निश्चय ध्यानमें रखना चाहिये ।

### आर्य वीर ।

अग्नि इन्द्र आदिके विषयमें सूक्त सातके प्रसंगमें वर्णन आया ही है । ( अग्नि ) ज्ञानो उपदेशक, ( इन्द्र ) शरवीर ये आर्यवीर हैं यह पहिले बताया है । इन दो शब्दोंसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंका बोध होता है यह बात पहिले बताया आच्युक्त है ।

( यद्यत्तृतीय अनुवाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ । )

इस सूक्तमें “ वरुण ” शब्द आया है । वरुण समुद्र अथवा जलका अधिपति वेदमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है । जलस्थान, नदी आदि तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह बोधदेदार है । जिस प्रकार “ अग्नि ” शब्द ब्राह्मणत्ववाचक, “ इन्द्र ” शब्द क्षान्धर्मका बोधक है उधी प्रकार “ वरुण ” शब्द जलमार्गसे आनेवाले और देशांतरोंमें व्यापार करनेवाले वैद्योंका अथवा वैश्यत्वका सूचक यद्यत्तृतीय होता है । इसलिये गोली चलानेके विषयमें ( अग्नि ) ब्राह्मण, ( इन्द्र ) क्षत्रिय और ( वरुण ) वैश्यने भी संमति दी है और ( इन्द्र ) क्षत्रिय ने तो संसिकी गोल्यां हमारेपास दे रखी हैं, इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है । सप्तम सूक्तमें दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि वे ढाकू सुधरते नहीं हैं, क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक बार देहदंड देनेपर भी इन दुष्टोंका सुधार नहीं हुआ, वैश्य तो छूटे जानेके कारण कहते ही रहे, इस प्रकार तीनों वर्गोंकी परिपक्वता जब गोली चलानेकी आज्ञा दी, तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलानी जा सकती है । पाठक यह पूर्वोपर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें ।

सूक्तकी दोष भाँते स्पष्ट हैं । इसलिये आधिक विवरणही आवश्यकता नहीं है ।

## रक्तसाव वंद करना ।

[ ऋषिः मद्रा । देवता-योषित् ]

( १७ )

अर्घ्या यन्ति योषितो हिरा लोहितमाससः । अन्नांतरं हव जामयस्वितर्हन्तु हुवर्षे चमः ॥१॥  
 विष्टानरे विष्ट पर उव त्वं विष्ट मषमे । फुनिष्कृता च विष्टति तिष्ठादिदु मनिर्मुही ॥२॥  
 नृतस्य घ्नमनीनां महर्षस्य हिराणां । अस्युनिर्मष्यमा कुमाः साकमन्ता अरंसव ॥३॥  
 परि युः सिक्तावती घ्नर्षेहर्षकमीत् । विष्टैल्यता स कम् ॥४॥

अर्घ्ये - ( अर्घ्यः पा ) यह भी ( लोहित-माससः ) रक्त मास करने पदनी हुई ( योषितः ) स्त्रियाँ दे अर्घ्य कर  
 शब्द लन से जोषित्यो ( हिराः ) चमनिर्षा इत्यादि हैं ( विष्टम् ) उदर प्राय अर्घ्य अपना चलना चद करे, ( हव ) मिग

प्रसर ( अ-झातरः ) विना माईके ( इत् वर्चसः ) निलेख बनी ( जाययः ) यहिनं ठहर जाती हैं ॥ १४ ( लवरे तिष्ठ ) हे नीचेको नाडी ! तू ठहर । ( परे तिष्ठ ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर । ( उत मध्यमे ) और बीच वाली ( रं तिष्ठ ) तू भी ठहर । ( कनिष्ठिका च तिष्ठति ) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा ( धमनिः इत् तिष्ठात् ) बड़ी नाडों भी ठहर जावे ॥ २ ॥ ( धमनीनां शतस्य ) सैकड़ों धमनियोंके और ( द्विराग्रा सहस्रस्य ) हजारों नाडियोंके बीचमें ( हृमाः मध्यमाः सप्त्युः ) ये मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । ( साकं ) साथ साथ ( अंताः ) अंत माग भी ( अरंसत ) ठीक हुए हैं ॥ ३ ॥ ( वृद्धी धनुः ) बड़े धनुष्यने ( वः परि अक्रमीत् ) तुमपर हमला किया है, अतः ( सिक्तापतीः तिष्ठत ) रेतवाली अथवा चर्करावाली बनकर ठहर जाओ, जिससे ( कं ) सुख ( सु हृद्यत ) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ—शरीरमें लाल रंगका रक्त शरीरपर पहुंचानेवाली धमनियां हैं । जब घाव लग जावे तब उनकी गति रोकनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रदित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली, ऊपरवाली, तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाडियोंको बंद करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकड़ों और हजारों नाडियोंमें आवश्यक नाडियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके फटे हुए अंतिय भाग टोक किये जावें ॥ ३ ॥ बड़े धनुष्यके बड़े बाणसे धमनियोंपर हमला होकर नाडियां फट गई हैं, उनको चर्कराके साथ संबंध कलिते शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

### घाव और रक्तसाध ।

शरीरमें छाछादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरकी और नीचेकी नाडियोंको बंदने बांधनेसे रक्तका स्राव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय करना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तस्राव इस प्रकार बंद किया जाय तो ही रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत स्राव होनेके कारण ही मृत्यु मर सकता है । इधरिसे इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

इसमें पूर्वे सूक्तमें शत्रुको गोलीने मारनेकी सूचना दी है । इस लडाईमें शरीरपर घाव होना समझ है, इसलिये इस रक्तसाधके बंद करनेके विषयमें इस सूक्तमें उपदेश दिया है “ सिक्तापती ” अर्थात् रेतवाली अथवा चर्करावाली धमनी कोसे रक्तस्राव बंद होता है । बायेंक मिथीकः बायेंक पूर्वं अगानेसे स्राव बंद होता है, यह कथन विचार करनेयोग्य है ।

पति जीवित रहनेपर जियां बड़े बड़े समारंभोंमें और उत्सवोंमें जा सकता है, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकता अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी, परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात् उनका प्रमग नहीं हो सकता ।

यहां अविषयक एक वैदिक मर्यादाका पता लगना है, कि पति मरनेके पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि शैली पतिके होनेके समय घूम सकती है । परमें रहना, दरवाजोंके आनंद प्रसंगोंमें न जाना, मंगलानुष्ठानोंमें भाग न लेना इत्यादि मृतपति स्त्रीके स्ववहार की रीति यहां प्रतीत होना है ।

मृतपति की स्त्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाई न रहनेपर पिंथा पिंथा माता न रहनेपर उनको दुःगम ही रहना होता है । इस समय यह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर भाँकसे अपना समय गुजारें और परोपकार का कार्य करें ॥

अन्यान्य रंग मिले जुने हों तो वैभे सब रंगने कपडे पहनती हैं। केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत वस्त्रा रिवाज सपूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है।

पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता है।

## सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।

( १८ )

( ऋषिः—द्रविणोदाः । देवता—वैनायकं सौभागम् )

निर्लक्ष्म्यं ललाम्भ्यं निररातिं सुवामसि ।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि

॥ १ ॥

निरराणि सविता साविपक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।

निरस्मभ्यमनुमती रराणां प्रेमां देवा असाविपुः सौभागाय

॥ २ ॥

यत्तं आत्मनिं तुन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणं वा ।

सर्वं तद्वाचापं हन्मो वयं देवस्त्वां सविता सूदयतु

॥ ३ ॥

रिश्यपदीं वृषदतीं गोपृधां विधमामुत ।

विलीढ्यं ललाम्भ्यं ता अस्मिन्नाशयामसि

॥ ४ ॥

अर्थ—( ललाम्भ्यं ) निरपर होनेवाले ( लक्ष्म्यं ) बुरे चिन्हको ( निः ) निःशेषतासे दूर करते हैं; तथा ( अ-रातिं ) कंजुसी आदि ( नि सुवामसि ) निःशेष दूर करते हैं। ( अथ या भद्रा ) और जो कल्याण का/क चिन्ह हैं ( तानि नः प्रजायै ) ये सब हमारी सत्ताके लिये हन प्राप्त करते हैं और ( अरातिं ) कंजुसी आदिमें ( नयामसि ) दूर भगते हैं ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा ( पदोः हस्तयोः ) पावों आर हातोंकी। ( अरामो ) पीढाको ( निः नि साविपुः ) दूर करें। ( रराणां अनुमति ) दानशैल अनुमानेन ( अस्मभ्यं निः ) हमारे लिये निःशेष प्रेरणा की है। तथा ( देवाः ) देवोंन (हमों) उस श्रोत्रो ( सौभाग्याय ) सौभाग्यके लिये ( प्र असाविपुः ) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ ( यत्तं आत्मनिं ) जो-तेरी आत्मामें तथा ( तुन्वां ) घातमें ( वा यत् केशेषु ) अथवा जो केशोंमें ( वा प्रतिचरणे ) अथवा जो दृष्टिमें ( घोरं अस्ति ) गमानक चिन्ह है ( तत् सर्वं ) वह सब ( वयं वाचा हन्मः ) हम वाणोंसे हटा देते हैं। ( सविता देवः ) सविता देव ( त्वा सूदयतु ) तुझे मिद करे अर्थात् पारपक बनावे ॥ ३ ॥ ( रिश्यपदीं ) हरणके समान पाववाली, ( वृषदतीं ) बेलके समान हस्तवाली, ( गोपृधां ) गायके समान चलनेवाली, ( विधमां ) विह्वल शब्द बोलनेवाली, त्रिलक शब्द कठोर है ऐसी थी ( उत ललाम्भ्यं विलीढ्यं ) और निरपरका कुलक्षण यह सब हम ( अस्मत् नाशयामसि ) अपनेसे नाश करते हैं ॥ ४ ॥

मात्रार्थ—निरपर तथा शरीरपर जो कुलक्षण होंगे उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजुसी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये, और जो कुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पाप स्थिर करना अथवा बढाना चाहिये। तथा कंजुसी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीढाको दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश दें। क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उतम भाग्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ दुष्टदृष्टि आता अथवा मनमें, शरीरमें, देशोंमें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम

घनसे ढकाते हैं । परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिके समान पाँव, बैलके समान दाँत, माथके समान चलनकी आदत, कठोर सुरा अथवा ह्रीना तथा सिरपरके अन्य इलक्षण यह सब हमसे दूर हों ॥ ४ ॥

### कुलक्षण और सुलक्षण ।

इस सूक्तमें गौरके तथा मन, बुद्धि, आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हों उनको दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षण-युक्त बनानेका उपदेश किया है । इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं—

( १ ) ललाम्य लक्ष्म्यं—सिरपरकी लक्षण, कपाल छोटा होना, मालपर बाल होने, सुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षण । ( मंत्र १ )

( २ ) ललाम्यं विक्षिप्त्यं—सिरपर कालोंके गुष्ठे रहने और उससे सिरकी सोमाश्वा विगाह आदि कुलक्षण । ( मंत्र ४ )

( ३ ) रिच्यपद्मी—हरिके समान कृश पाँव । ( मंत्र ४ )

( ४ ) घृष्यदही—बैलके समान बड़े दाँत । ( मंत्र ४ )

( ५ ) गोपिषा—गायके समान चलना । ( मंत्र ४ )

( ६ ) नि-धमा-कानोंकी सुरा लगनेवाला आवाज, जिसरा मीठा मंजुल आवाज नहीं । ( मंत्र ४ )

ये अतिम ( ३-६ ) चार कुलक्षण क्षीणिके निर्दोषके लिये बहुत घरे हैं अर्थात् क्रियोंमें ये न हों । अधू पदक केनेके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है ।

( ७ ) केनोपु घोरं—बालोंमें कुरता अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख कुरसा दोखना । ( मंत्र ३ )

( ८ ) मासिचक्षणे कूर्-नेत्रोंमें कुरता, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि । ( मंत्र ३ )

( ९ ) लम्बा कूर्-शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके टेढामेडा होनेके कारण भयानक दृश्य । ( मं. २ )

( १० ) आत्मनि कूर्-मन, बुद्धि, विज्ञान, आत्मानमें कुरताके माह होना । ( मंत्र ३ )

( ११ ) अ रादि—कञ्ची, उदारमावद्धा अमाह । ( मं १ )

( १२ ) परो हल्यो अ-रगिः—पाँव और हाथों की

इसविधे पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें । इन सुलक्षणोंमेंसे कई लक्षण केवल क्रियोंमें और कई पुष्टों तथा कई दानोंमें होंगे । अथवा सब लक्षण न्यूनाधिक भेदसे श्रीपुरुषोंमें दिखाई देना भी संभव है ।

ये कुलक्षण दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षण अपनानेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है । इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सरता है । जिससे शरीर सुदौर्घ दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये । हार्ण प्रवाह क्षिप्तो, मन, बुद्धि वाया आदिके भी सुलक्षण हैं । इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

### वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना ।

मंत्र ३ में " सर्वं तद्वाचाप हृन्मो वयं । " अर्थात् हम अं सब कुलक्षण वाणीसे दूर करने हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कदा है, तथा साथ साथ " देवतासा भविता सुदयत् " अर्थात् सविता देव तुम्हें पूरा सुलक्षणयुक्त बनव, कदा है । परमेश्वर कृपासे मनुष्य सुलक्षणोंमें युक्त हो सक्ता है, इसमें किसीकी भेदह नदी हो गइता, परन्तु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत ल गोठे र देह होना संभव है, अत इम विषयमें कुछ रशरीरका भी आशयकता है । वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आपुक्त है । इसलिये पाठक इसका सब विचार करें ।



करने योग्य है। "मैं हीन हूँ, दोन हूँ" आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे त्वचार मनमें प्रतिबिंबित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं। इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारण ही हमेशा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरे हुए मावोंसे कुछ शब्दोंका उच्चारण नहीं करना चाहिये। वाणीसे शुद्ध प्रेरणके विषयमें साक्षान् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं, इसलिये इस विषयमें यहाँ इतना ही लेख पर्याप्त है। अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने दुःखियोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्षणोंको बढाना हरएक मनुष्यको योग्य है।

### हाथों और पाँवोंका दर्द।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता ( सूर्य ), वरुण ( जल ), मित्र ( प्राणवायु ), अर्यमा ( आगका पाँधा ) ये हाथों और पाँवोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें। सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आकके पत्तोंका धेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारंबार आनेवाला है। आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है।

### सौभाग्यके लिये।

" इमा देवा असाविपुः सौमगाय । " इसकी देवाने सौमगायके लिये बनाया है। विशेष करके धीके चरित्रसे यह

मंत्रमाग है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है। अर्थात् मनुष्य मात्र जो हो या पुरुष हो वह अपना कर्माग साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीका सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा। हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे। अपनी उच्चतमको मिट्ट करना हरएकके पुरुषार्थपर अवलंबित है। यदि अपनी अवनति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें त्रुटी हुई है।

### सन्तानका कल्याण

यदि अपनेमें कुछ कुलक्षण रहे भी, तथापि अपनी संतानोंमें सब सुलक्षण आजाय ( या भद्रा तानि नः प्रजायै ) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक गृहस्थोंको ध्यानमें धरना चाहिये। अपनी संतान निर्दोष और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे कुछ बने यह भाव यदि हरएक गृहस्थोंमें रहेगा, तो प्रति पुत्रमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नति ही सौंदीयर चढेगा। यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने सुलक्षणोंको दूर करके अपने अंदर सुलक्षण बढ़ानेका प्रयत्न करें।

ॐ ११ ॐ

## शत्रु-नाशन-सूक्तः ।

( १९ )

( प्रायिः-प्रदा । देवता-ईश्वरः, प्रथ )

बाले बाण समूहोंको ( अस्मद् आराध पातय ) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ ( ये अस्याः ) जो फेंके हुए और ( ये च अस्याः ) जो फेंके जायेंगे, वे सब ( विष्वज्जः शरवः ) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र ( अस्मद् पतन्तु ) हमसे दूर जाकर गिरें ( वैवीः मनुष्येषवः ) हे मनुष्योंके दिव्य बाणों ! ( मम अग्निमान् ) मेरे शत्रुओंको ( विविष्यत ) बंध कर डालो ॥ २ ॥ ( यः नः स्वः ) जो हमारा अपना अथवा ( यः अरगः ) जो दूसरा परीय हो, किंवा जो ( स-जावः ) समान उच्च जातिवाला कुलीन ( उत ) अथवा जो ( निष्टयः ) भिन्न जातिवाला या संश्रु जातिका हीन ( अस्मान् अग्निदासति ) हमपर चढाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे, [ एतान् मम अग्निमान् ] इन मेरे शत्रुओंको [ रुदः ] हलानेवाला शैल [ शरम्यया विविष्यत ] बाणोंसे बंध करे ॥ ३ ॥ [ यः ] जो [ सपत्नः ] विरोधी और [ यः अ-सपत्नः ] जो प्रकृत विरोधी नहीं है । [ च यः द्विषन् ] और जो द्वेष करता हुआ [ नः शपाति ] हमको शपता है [ तं ] उसका [ सर्वे देवाः ] सब देव [ पूर्वन्तु ] नाश करें । [ मम अन्तर वर्म ] मेरा आंतरिक कवच [ प्रह ] प्रहस्तान ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ-हमारे शत्रुओंका शौर्ष ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले सब शत्रु हमसे दूरा रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें । उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें । और हमारे शत्रुओंपर ही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु, हमारी जातिवाला वा परजातीका, कुलीन या हीन, कोई भी क्यों न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश सज्जति करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकृत या द्विषा हुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें घुरे शब्द बोलता है सब सज्जन उसको दूर करें । मेरा आंतरिक कवच सत्य ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह "नाग्निक गण" का सूक्त है, इस कारण "अपराजित गण" के सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध है, अतः पाठक इस गणके सूक्तोंके साथ इसका भी विचार करें ।

### आन्तरिक कवच ।

इस सूक्तमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवचकी है । देशके कवच पर्वत, दुर्ग और समुद्र होते हैं, इनके होनेके कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते । प्रायिक कवच कितने होते हैं इनके कारण शत्रु प्रायमें घुस नहीं सकते । शरीरके कवच सोइके अथवा तारके बनये जाते हैं जिनके कारण शत्रुके दास शरीरपर लगते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है । शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है, मन, बुद्धि, चित और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है, इसकी साथ आत्माके लिये रहती है । इस "अन्तःकरण" के लिये "अंतः कवच" अथवा आश्रय, जो इस शत्रुनाशन सूक्तने "अग्नि वर्म अमान्तम्" शब्दोंद्वारा बताया है । "ज्ञानरूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच" है । जिसके आत्मा

विषयक आस्तिक्य सुद्विषुक्त ज्ञान" इतना अर्थ इस शब्दके समझना योग्य है ।

### इस सूक्तके दो विभाग ।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं, प्रथम विभागमें प्रारंभमें चतुर्थ मंत्रके तृतीय चरणतकके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें चतुर्थ मंत्रके चतुर्थ चरणका ही समावेश होता है । इन विभागोंको देखकर इस सूक्तका विचार करनेमें बड़ा बोध मिलता है ।

### वैदिकधर्मका साध्य । आत्म कवच ।

शक्ति का ही आश्रय करते हैं । अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाशवी शक्तिका विचार करते हुए साधारण जनका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रभाग आरिभक्त दिव्य शक्तिका मानवी अंतिम ध्येय बता रहा है ।

“ आरिभक्त शक्ति या आरिभक्त ज्ञान ही मेरा सबसे बड़ा कवच है, त्रिपते में सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूँ, मेरे अंदर अहिंसाका भाव पूर्ण रूपसे स्थिर रहा, तो जो जो मेरे पास आवेगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा ”

इत्यादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अन्तिम साध्य है, मनुष्यको यही बात अंतमें स्वीकारनी है, परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये, परंतु अंत-स्फूर्तिमेंही होना चाहिये, अपना स्वभाव ही ऐसा बनाना चाहिये । इसी भावसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है ।

### अन्य कवच । क्षात्र कवच ।

शारीक, नगरोंके तथा देशोंके अन्यान्य कवच उक्त विश्वासके अभावमें आवश्यक ही हैं । स्वर्णरक्षणके ऋत्वाज आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं । अर्थात् जबतक जनता पूर्वोक्त अधिकाके लिये योग्य नहीं होती, तबतक शस्त्रधार क्षत्रियगण राष्ट्रका संरक्षण इन शस्त्राधोसे करें । ये क्षात्र साधन हैं । ज्ञान कवचसे सुरक्षित होना ब्राह्मण साधन है और लौकिक कवचों तथा शस्त्राधोसे सुरक्षित होना क्षात्र-साधन है । ब्राह्मणसाधन स्वीकारने योग्य जनताकी उन्नति धर्मसाधनसे करनी चाहिये और जबतक वरुनी उन्नति नहीं होती, तबतक क्षात्रसाधनसे शत्रुओंका

प्रतिकार करना योग्य है । क्षात्रसाधनसे युद्धोंके बहुत होनेसे ही मनुष्य इन साधनोंकी कूताका अनुभव करता है और ब्राह्मणसाधनको स्वीकारनेका यत्न करता है ।

इस प्रकार युद्ध भी मनुष्यको ब्राह्मणसाधनतक पहुंचानेवाले मार्गदर्शक बनते हैं ।

### दासभावका नाश ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि “जो अपना या परया हमें दास बनाने की चेष्टा करता है उसका नाश करना चाहिये ।” राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीक दास भावका द्योतक है, इसके आंतरिक मानसिक, बौद्धिक तथा वाचिक, पारतंत्र्य भा है और ये सबसे अधिक घातक हैं । किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपने नाशका कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये, परंतु उसके कारणों दूर करना चाहिये । आर्थिकी दास कमी नहीं बनना चाहिये । स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है । ज्ञान और पुरुषार्थसे स्वाधीनता-बंधनसे मुक्ति-प्राप्त होती है, इसका भी आशय यही है । मनुष्यके सब दुःख दास्यके कारण हैं । इसलिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यको या राष्ट्रको दासत्वमें दबानेका यत्न न करे और यदि किसीसे ऐसा प्रयत्न हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें ।

दामभावसे हड़ानेका उपदेश पाठक इस सूक्तमें विशेष प्रकारसे देखें और उसको अपने जीवनमें धडावें । पाठक इस सूक्तके इस प्रकार विचार करनेसे बहुत ही बोध प्राप्त कर सकते हैं ।

## महान् शासक ।

( २० )

( ऋषिः—अथर्व । देवता—सौमः )

अदीरमुद् भवतु देव सोमाम्भिन्मुद्भे मरुतो मुद्धतां नः ।

मा नो विददग्निमा सो अशंस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥

यो अद्य सेन्यो युर्योऽज्वायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद्योवयत् परि ॥ २ ॥

इतश्च यद्भुतंश्च यद्दधं वरुण यावय । वि मुहच्छर्मं यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ३ ॥

शास इत्या मुहो अस्वमिप्रसाहो अस्तुतः । न यस्पर्इत्येते सरगा न ज्ञीयते कदा चन ॥ ४ ॥

अर्थ—हे ( देव भोग ) सोम देव ! ( अ-दार-स्य भवतु ) आपसकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो । हे ( महतः ) महतो ! ( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञमें ( नः ) सृष्टत ) हमें सुखी करो । ( अभि-भाः नः मा विद्द् ) परामव हमारे पास न आवे, ( अशस्तिः मो ) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो, ( या द्वेष्या वृजिना ) जो द्वेष बढानेवाले कुटिल हृत्स्य हैं व भी ( नः मा विद्द् ) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ ( अधायूनां ) पापमय जीवनवालोंका ( यः सैन्यः वधः ) जो सेनाके शूर वीरोसे वध ( अथ उदीरते ) आज हो रहा है । हे मातृ और वरुणो ! ( युवं ) तुम ( तं अस्मत् परि यावयतं ) उससे हमसे सर्वथा हटा दो ॥ २ ॥ हे ( वरुण ) सर्व श्रेष्ठ ईश्वर ! ( यत् हतः च यत् अमुतः ) जो यज्ञसे और जो वहाँसे वध होगा उस ( वधं यावय ) उन्को भी दूर कर दे । ( महत् शर्मं धियच्छ ) मझ सुख अथवा आश्रय हमें दे और ( वधं वरीयः यावय ) वधको अतिदूर कर दे ॥ ३ ॥ ( ह्य्या महान् शास ) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर ( अ-मित्र-साह अस्तुतः ) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हानेवाला ( अस्मि ) तू है । ( यस्य सखा ) जिसका मित्र ( कदाचन न हन्यते ) कभी भी नहीं मारा जाता और ( न जीयते ) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपसकी फूट बढानेवाला कोई कार्य हमसे न हो । इस सारकमेंसे हमें सुख प्राप्त हो । पराजय, अपकीर्ति, अवश, द्वेष आर कुटिलता हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! शत्रुओंके द्वारा जो पापियोंके वध हो रहे हैं, वैसे वधोंके प्रसंग भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरोंके अंदर वध करनेका भाव न रहे । वधका भाव ही हम सभसे दूर कर और तेरा बड़ा आश्रय—सुखपूर्व आश्रय—हमें दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेराही महान् सत्य शासन सबके ऊपर है, तुझी सखा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वदा अपराजित है, तेरा मित्र बनकर जो रहता है न उसका वध कभी होगा और नहीं उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

### पूर्व सूक्तसे संबंध ।

पूर्व सूक्तके अंतमें " ईश्वरमाकेयुक्त सत्यज्ञान हा मेवा सखा वयं च दे " यह विशेष बात कही है, उसीमें विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है । सबसे पहिले आपसकी फूटको दूर करनेकी सूचना दी है ।

### आपसकी फूट हटा दो ।

"अ-दार-स्य भवतु " हमारा भावरण फूट हटानेवाला हो, यह इस उपदेशका ता-पर्य है । देखिये—

दार=फूट ( दृ=रटना पातु )

दार+स्य=फूटका प्रयत्न, फूटका कार्य ।

अ-दार+स्य=फूट हटानेवाला कार्य ।

"अ-दार+स्य भवतु" अर्थात् "आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे ।" आपस की फूटके कारण शत्रु हमला करते हैं और शत्रुओंके हमसे हो जानेपर हमें शत्रुओंके भगनेका यत्न करना पड़ता है । इसलिये सुदृढा कारण आपस की फूट है । यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मनुष्य रहेंगे तो हमारे भोग हमला करनेके लिये भी होंगे । जो आश्रय फूट होता है वही शत्रुओंका हमला होगा है । इसलिये सुदृढा कारण आपसकी फूटमें रोकना और आपस की फूटके दूर करना

चाहिये । राष्ट्रीय सुखही यही मुनिवाद है ।

आपसकी फूट हट जानेके पश्चात् ही (सृष्टन् ) सुख होनेकी सम्भावना है । अन्यथा सुखही आशा नहीं है । आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्नलिखित प्रकारसे प्रथम मंत्रके उतरार्धमें वर्णन किया है ।

१ अभिभा नः मा विद्द्=पराजय हमारे पास न आवे,

२ अशस्तिः मो=दुकीर्ति हमारे पास न आवे,

६ वृजिना नः मा=कुटिल हृत्स्य हमसे न हों,

४ द्वेष्या नः मा विद्द्=द्वेष भाव हमारे पास न आवें ।

त्रिषु समय हम आपसकी फूट हटायेंगे, उस समय हमें किराके द्वेष करनेका कोई कारण नहीं रहेगा, किराके कपट-युक्त कुटिल व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, हमारा कभी परामव न होगा अथवा हमपर कोई आपत्ति नहीं आयेगी और हमारी अपकीर्ति भी नहीं होगी, अर्थात् अब हम आपसकी फूट हटाकर अपना उभय संगठन करेंगे और एकल के बनेसे आगे बढ़ेंगे, उस समय सब लोग हमारे मित्र बनकर हमारे साथ मित्रताका व्यवहार करेंगे, हम भी सबसे साथ चल व्यवहार करते जायेंगे, एकताके बाल हमारा बल बढेगा और उस हेतुसे कभी परामव नहीं होगा तथा हमारा वध क्लेश आदिका । ( मंत्र १ )

द्वितीय और तृतीय मंत्रमें जो सैनिक बाराह होनेवाले बुद्धिके संहारका वर्णन है, वह वर्णन भी हमारी आगवकी फूट के कारण ही कुछ लोग हमें सताते हैं और उनका बंध बन्नेका प्रयोजन उत्पन्न होता है, अर्थात् यदि हमारा समाज सुसंगठित होगा तो उस बंधी जड़ही नष्ट होनेसे वह बंध भी नहीं होगा और हमें ( मनुं चर्म ) बन्ना सुख प्राप्त होगा । "चर्म" शब्दका अर्थ "द्वेष और आश्रय" है । पूर्वोक्त संवेचने यहाँ परमेश्वरका आश्रय समझें है । क्योंकि सच्चा सुख जो परमात्माके आश्रयसे ही होता है । ( मंत्र. २, ३ )

**बड़ा शासक ।**

एक ईश्वर ही सबसे बड़ा शासनकर्ता है, उसके ऊपर

विश्वी अन्धकार अपिहार नहीं है, सब उसीके शासनमें कार्य करते हैं, बड़ी सजोगी है । वह शत्रुताका सखा नाशक और कभी पराजित न होनेवाला है । यदि ऐसे समय प्रमुखा मित्र बनकर खड़े रहे तो उसका कभी नाश न होगा, और कभी पराजय भी न होगा । अर्थात् प्रमुखा मित्र बनकर व्यवहार करनेवालेका यह सर्वत्र फैलेगा और उसका ही मान सर्वत्र होगा । ( मंत्र ४ )

पूर्व सूक्तमें जिस "हान-श्वच. ब्रह्म-वर्म" का वर्णन किया है वह ब्रह्म-श्वच यही है कि "परमेश्वरका शासन सर्वोपरि मानना और उसका सखा बनकर व्यवहार करना । "

आरा है कि पाठक इस प्रकार प्रमुके मित्र बननेका यत्न करेंगे,

**प्रजा-पालक-सूक्त ।**

( २१ )

( श्रापः—अथर्वा । देवता—इन्द्रः )

स्वस्तिदा विद्यां पतिर्विबुधा विमृषो वृशी । धृषेन्द्रः पूर एतु नः सोमपा अमयंकुरः ॥ १ ॥  
 वि न इन्द्र मृषो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । अधुमं रमया तमो यो अस्मिं अभिदासति ॥ २ ॥  
 वि रक्षो वि मृषो जहि वि वृत्रस्य हनुं रुज । वि मनुर्विन्द्र वृत्रहन्नामित्रैस्वामिदासतः ॥ ३ ॥  
 अर्पेन्द्र द्विपतो मनोऽपु विज्यासतो वृधम् । वि मुहच्छर्मं यच्छु वरीयो यावया वृधम् ॥ ४ ॥

अर्थ—( स्वस्ति-दा ) मंगल देनेवाला, ( विद्यां पतिः ) प्रजाओंका पालक, ( वृत्र हा ) पितेवाले शत्रुका नाश करनेवाला, ( वि-मृषो वृषी ) विषय दिखके वधमें करनेवाला, ( वृषा ) बलवान् ( सोम पाः ) सोमका पान करनेवाला, ( अमयंकुरः ) अमय देनेवाला ( इन्द्रः ) प्रभु राजा ( नः ) हमारे ( पूरः पदु ) आगे चले, हमारा नेता बने ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! ( नः मृषः ) हमारे शत्रुओंको ( विमहि ) मार डाल । ( पृतन्यतः ) सेनाके द्वारा हमारा हमला करनेवालोंको ( नीचा यच्छ ) नीचे प्रतिबंध कर । ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हमें दास बनाना चाहया है, या हमारा पाप करना चाहया है, उसको ( अथर्म समः मयय ) शील अंधधाममें पहुंचा दे ॥ २ ॥ ( इन्द्रः वृषः वि विमहि ) राक्षसों और द्विषदोंको मार डाल, [ वृत्रस्य हनुं विरुज ] घेरकर हमला करनेवाले शत्रुके क्षीर्ण अर्थात्को तोड़ दे । हे ( वृत्रहनु इन्द्र ) शत्रुनाशक मने ! ( अभिदासत्यः अभिमित्रस्य ) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके ( मनुर्विन्द्र ) उखाड़को तोड़ दे ॥ ३ ॥ हे ( इन्द्र ) प्रभो ! शत्रुन् ! ( द्विपतः मनः मय ) दोषीका मन बरत दे । [ विज्यासतः वर्ध मय ] हमारी आहुतियां नाश करनेवालेको पूर कर ( मनुं रमं विमृष्य ) बन्ना सुख हमें दे और ( वर्ध वरीयो यावया ) वधको दर कर ४ ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रजाओंका शिष्ट और संगत करनेवाला, प्रजाओंका उत्पन्न पालन करनेवाला, घेरकर नाश करनेवाले शत्रुको दर करनेवाला, राक्षस, अंधधाम करनेवाला, प्रजाको अमय देनेवाला राजा ही हमारा आग्रणी बने ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रजाके शत्रुका नाश

कर, सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुको दबा दे, जो पातपात और नाश करना चाहता है उसको मगा दे ॥ २ ॥ हितक शूर शत्रुओंको मारहाल, बेर कर सलानेवाले दुष्टोंको काट दो, सब प्रकारके शत्रुओंका उन्माद नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही बदल दे अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड़ दें, नाश करनेवालोंको दूर कर दे, पातपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

### शात्रघर्म ।

यह " अमयगण " वा सूक्त है । इस सूक्तमें शात्रघर्मका उपदेश और राजाके कर्तव्यों का वर्णन है उसका मनन पाठक करें । उत्तम राजाके गुण प्रथम मंत्रमें वर्णन किये हैं । इस मंत्रकी कवौदीसे राजा उत्तम है या नहीं इसका परीक्षा हो

सकती है । अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करनेका उपदेश है । सब प्रकारके अंतर्बाह्य शत्रुओंका प्रतिहार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है । यह सूक्त अति सरल है इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है ।

[ चतुर्थ अनुवाक समाप्त ]

## हृदयरोग तथा कामिलारोग

### की चिकित्सा

( २२ )

( ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः )

अनु सूर्यमुदयतां हृदयोतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥  
 परि त्वा रोहिषैर्वर्णैर्दार्घ्यायुत्वाय दध्मसि । यथाऽपमर्या असुदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥  
 ये रोहिणीर्देवत्वाद् गात्रो या उत रोहिणीः । रूपं रूपं यवो-वयस्ताभिर्द्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥  
 शुक्रपु ते हरिमाणं रोपणाकामु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ—( वे हृद-स्योतः च हरिमा ) तेरे हृदयकी जलन ( और पीतावन सूर्य अनु उदयताम् ) सूर्यके पीठे चलाने । गोके अथवा सूर्यके ( रोहितस्य तेन वर्णेन ) उस लाल रंगमें ( त्वा परि दध्मसि ) तुम सब प्रकारके हृदय पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ ( रोहिषैः वर्णैः ) लाल रंगोंसे ( त्वा ) तुमको ( दार्घ्यायुत्वाय परि दध्मसि ) दार्घ्य आयुसे जिये चाहते हैं । ( यथा ) त्रिनये ( अयं ) यह ( अपमर्या असत् ) नीरोग हो जाय और ( अ-हरितः भुवत् ) पीलक रोगसे मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ ( या-देवत्या रोहिणीः गात्रः ) जो दिव्य लाल रंगकी गौएँ हैं ( उत या रोहिणीः ) और जो लाल रंगकी धारणें हैं ( तामिः ) उनसे ( रूपं रूपं ) मृदात्मा और ( वयः वयः ) बलके अनुहार ( त्वा परि दध्मसि ) तुमसे चाहते हैं ॥ ३ ॥ ( नि हरिमाणं ) पीलक रोगकी ( शुक्रपु रोगमाकामु च ) तोते और पीलक रोगमें ( दध्मसि ) पालन करते हैं ( अथो ) और ते ( हरिमाणं ) तेरा जीवाणन पच ( हारिद्रवेषु ) ही बनहरानेमें ( नि दध्मसि ) रख देते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—( १ ) हृदयरोग और पीलक रोग सुविकारोंके नाश करनेके लिये प्राणायाम, लाल रंगकी गौएँ और सूर्यकी लाल किल्लें होनी हैं, इनके द्वारा मरिचिका हो चट्टी है ॥ १ ॥ लाल रंगके प्रयोगसे दार्घ्य आयुच मान होय है, पीलक रोग

दूर होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी गोबे और लाल रंगकी सूर्यकिरणें दिव्य गुणोंसे युक्त होती हैं । रूप और बलके अनुसार उनके द्वा । रोगी घेरा जधे ॥ ३ ॥ इस लाल रंगकी चिन्त्रियामे रोगीका पलापन तथा फीकापन दूर होगा और वह हरे पक्षा और हरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीने पाप फिर नहीं आवेगा ॥ ४ ॥

### वर्णचिकित्सा ।

यह सूत्र " वर्णचिकित्सा " के महत्वपूर्ण विषयका उपदेश दे रहा है । मनुष्यको हृदयका रोग और कामिला नामक पीला रोग कष्ट देते हैं । अपचन, पेटके विकार, तमाख, मद्यप्राशन आदि अनेक कारण हैं, जिनके कारण हृदयके दोष उत्पन्न होते हैं । तरुण अवस्थामें वीर्यदोष हानिके कारण भी हृदयके विकार उत्पन्न होते हैं । कामिला रोग रक्तके दूषित होनेके कारण उत्पन्न होता है । इन रोगोंके कारण मनुष्य कृश, निस्त्व, शरीर दुबल और दीन होता है । इसलिये इन रोगोंका हटानेका उपाय इस सूत्रमें वेद बताया है । सूत्रके रणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगवाली गोओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है ।

सूर्यकिरणें कमरेमें लेकर उनमें नंगे शरीर रहना और शरीरको उलट पुलट करके सब शरीरके भाग लाल रंगके सूर्यकिरणोंका संबंध करना परिधारण विविधा तात्पर्य है ।

१ रोहितै वर्णैः परिदध्मसि । ( मंत्र २ )

२ दीर्घायुस्वाय परिदध्मसि । ( " )

३ गो रोहितस्य वर्णैर्न स्वा परिदध्मसि । ( मंत्र १ )

४ ताम्बिष्ट्वा परिदध्मसि । ( मंत्र. ३ )

ये मंत्र मंत्रभाग रक्त वर्णके सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् " परिधारण " करनेका विधान कर रहे हैं । रोगीको नंगे शरीर पूर्वोंक रक्त वर्णके शीतशाले कमरमें रखने और उनके शरीरका संवर रक्त वर्णकी सूर्यकिरणोंके साथ करनेसे यह परिधारण हो सकता है और इससे नीरोगता, दाघं आयुष्प्राप्ति तथा बलप्राप्ति भी हो सकती है । अन्यान्य रोगोंके निवारणके लिये अन्यान्य वर्णोंके निरणोंकी स्नानोंकी योजना करना चतुर्वर्णिका सुद्धिमत्तापर निर्भर है ।

स्नानर अनारोग्य होगा। अथवा कठोर प्रकृतिवालेको अल्प प्रमाणमें देनेसे उसपर कुष्ठ भी परिणाम न होगा। इस दृष्टीसे वृत्तीय मंत्र। उत्तरार्ध बहुत मनन करने योग्य है।

### रंगीन गौके दूधसे चिकित्सा ।

इसी प्रकार रंगीन गौके दूधसे रोगीकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बना दी है। गौके मूत्र, काले, लाल, भूरे, नमवारी, बादामी तथा विविध रंगके घन्बोवाला होती है। सूर्यकिरणों गौकी पीठपर गिरता है और उस कारण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है। श्वेत गौके दूधका गुणधर्म भिन्न होगा, काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, लाल गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, उसी प्रकार अन्यान्य रंगवाली गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे। एक बार वर्ण चिकित्सा का तत्त्व मन्त्रेण यह परिणाम मानना ही पड़ता है। इसीलिये इस सूक्तके मंत्र ३ में 'रौहिणीः गावः' अर्थात्

लाल गौओंके दूधका तथा अन्यान्य गौओंका उपयोग हृदय विकार और कामिजा रोगकी निरासके लिये करनेका विधान है। यह विधान मनन करनेसे बड़ा बोधप्रद प्रतीत होता है। और इसके मनन करनेसे अन्यान्य रोगोंके लिये अन्यान्य गौओंके गोरबोंका उपयोग करनेका उपदेश भी प्राप्त होगा वर्ण-चिकित्सा का ही तत्त्व गौगुण चिकित्साके लिये बर्तौ जायगा। दोनोंके बीचमें तत्त्व एक ही है।

### पथ्य ।

वर्ण चिकित्साके साथ साथ गोरस सेवनका पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होता संभवनीय है। अर्थात् लालरंगके किरणोंके परिचारण करनेके दिन लाल गौके दूधसे सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

## श्वेतकुष्ठ-नाशन-सूक्त ।

( २३ )

( ऋषिः—प्रथर्षा । देवता—ओषधिः )

नक्तंजातास्वोषधे रामे कृष्णे आमिन्नि च । इदं रजनि रजय क्लिामं पलितं च यत् ॥ १ ॥

क्लिासं च पलितं च निग्निो नाशया पूर्णं । आ त्वा स्वो विंशतां वर्णः परां शुक्लानि पादयाः ॥ २ ॥

आमिन्तं ते प्रलयनमास्थानममिन्तुं तव । अस्तिक्न्यस्योषधे निरितो नशया पूर्णत् ॥ ३ ॥

अस्थिजस्यं क्लिासंस्य तनुजस्यं च यत्तुचि । दृष्यां कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्मं श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दे रामा कृष्णा और अमिन्नि और चि । त्व । मत्तं जाया अमि । राशिके सम्य उरस्य हुई है । दे ( रजनि ) रंग देनेवाली । ( यत् क्लिासं पलितं च ) जो कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है ( इत् रजय ) उमधे रंग दे ॥ १ ॥ ( इत् ) इनके शरीरों ( क्लिासं पलितं ) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा ( पूषधे ) धन्वे आदि मन्त्र ( निः नाशय ) नष्ट कर दे । ( शुक्लानि परा पादया ) श्वेत धन्वे दूर कर दे ( स्वः वर्ण ) भवन रंग ( स्वा ) तुमे ( आशितां ) प्राप्त हो ॥ २ ॥ ( ते प्रलयनं ) तेरा मरणात् ( अस्थि ) कृष्ण वर्ण है तथा ( तव अवस्थानं ) तेरा स्थान भी ( अस्थि ) काला है, दे आशितं त्वस्यं ( अस्थिनी अमि ) काले रंगवाली है इसीलिये ( इत् ) यामि ( इत्तु ) च. वे ( निः नाशय ) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ ( दृष्यां कृतस्य ) शीघ्रके कारण उत्पन्न हुए ( अस्थिजस्य तनुजस्यं च ) इसीसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए ( क्लिामस्य यत् त्वचि श्वेत कदन ) कुष्ठधन्वे स्वभावर श्वेत चिन्द है उधधे ( ब्रह्मणा अनीनशम् ) इन जनने मैंने नाश किया है ॥ ४ ॥

भाषार्थ—एसा कृष्णा अस्थिनी से और चिवा है, इनका पादन राशिके सम्य होय है, इनसे रंग बानेवा कान्ध है।



इसलिये इनके लेपनसे श्वेतवृष्ट दूर होता है ॥ १ ॥ शरीरपर जो श्वेत कुष्ठके घन्बे होते हैं, उन श्वेत घन्बोंको इस औषधिके लेपनसे दूर कर दे और अपनी चमडीका अश्ली रंग शरीरपर आने दें ॥ २ ॥ यह वनस्पति नष्ट होनेपर भी काला रंग बनता है, उसका स्थान काले रंगका होता है और वनस्पति भी स्वयं काले रंगवाली है, इन्हीं कारण यह वनस्पति श्वेत घन्बोंको दूर कर देती है ॥ ३ ॥ दुपचारके दोषोंसे उत्पन्न, हर्षसे उत्पन्न, मांससे उत्पन्न हुए सब प्रकारके श्वेत कुष्ठके घन्बोंको इस ज्ञानसे दूर किया जाता है ॥ ४ ॥

### श्वेतकुष्ठ ।

शरीरका रंग गहमी सा होता है। गोरे कालेका भेद होनेपर भी चमडी का एक विलक्षण रंग होता है। जो रंग नष्ट होनेसे चमडीपर श्वेत-पद घन्बे दिखाई देने हैं। उनका नाम ही श्वेत कुष्ठ होता है। यह श्वेत कुष्ठ शरीरपर होनेसे शरीरका रंग नष्ट होता है और सुखोल सुंदर मनुष्य भी बुरूपसा दिखाई देता है, इसलिये इस (श्वेत लक्ष्म) श्वेत चिन्ह-श्वेत कुष्ठ-दूर करनेका उपाय वेदने यहां बताया है।

### निदान ।

वेद इस श्वेत कुष्ठके निदान इस सूक्तमें निम्न प्रकार देता है—

(१) दृश्या कृतस्य-दोषयुक्त कृत्वा अर्थात् दोषपूर्ण आचरण। सदाचार न होनेसे अथवा आचारविषयक कोई दोष सुलभमें रहनेसे यः कुष्ठ होता है। जिस प्रकारसे श्वेतिकीदोषसे तथा कुलके दोषसे भी यह कुष्ठ होता है।

(२) अस्वियजस्य—अस्थिगत दोषसे यह होता है।

(३) तन्नूनस्य—शारीरिक अर्थात् मांसके दोषसे होता है।

(४) त्वचि-चमडीके अंदर कुष्ठ दोष होनेसे भी यह होता है।

ये दोष सबके सब हों या इनमेंसे जोड़े हों यह कुष्ठ होता जाता है।

### दो भेद और उनका उपाय ।

इस कुष्ठमें दो भेद होते हैं, एक त्रिस्ताप और दूसरा पलित। पलित शब्दसे केवल श्वेतत्वका ही बोध होता है इस कारण यह श्वेत घन्बोंका वाचक शब्द है। इसको छोड़कर दूसरे कुष्ठका नाम त्रिस्ताप प्रतीत होता है, जिसमें चमडी विरूपती बनती है। सुयोग्य वैद्य इन शब्दोंका अर्थ निश्चय करे।

“रामा, हृष्या, अमिकनी” इन औषधियोंका इस कुष्ठपर उपशम होता है। ये नाम निश्चयसे किन औषधियोंके बोधक हैं और किन औषधियोंका उपयोग इस कुष्ठके निवारण

करनेके लिये हो सकता है, यह निश्चय केवल शब्द शास्त्र ही कर सकता; न यह विषय केवल कौशिकी सहायतासे हल हो सकता है। इस विषयमें केवल सुयोग्य वैद्य ही निश्चित मत दे सकते हैं, तथा वे ही योग्य मार्गसे खोज कर सकते हैं। इसलिये इस लेखद्वारा वैद्योंकी प्रेरणा देना ही यहां हमारा कार्य है। वेदमें बहुत विद्याएं होनेसे अनेक विद्याओंके पंडित विद्वान मिलनेपर ही वेदकी खोज हो सकती है। अतः सुयोग्य वैद्योंकी आयुर्वेदविषयक वेदभागकी खोज लगानी चाहिये और यह प्रत्यक्ष विषय होनेसे इन औषधादेका प्रयोग करके ही इसका सप्रयोग प्रतिपादन करना चाहिये। आशा है कि वैद्य और डाक्टर इस विषयमें योग्य सहायता देंगे।

### रंगका घुसना ।

कई लोग समझते हैं कि ऊपर ही ऊपर वनस्पतिक रस आदि लगानेसे चमडीका ऊपरका रंग बदल जाता है, परंतु यह सत्य नहीं है। इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें—

### आ त्वा स्वो विशतां वर्णः ।

“अपना रंग अंदर घुस जाय” यह मंत्रभाग बता रहा है कि इन औषधियोंका परिणाम चमडीके अंदर ही होगा अर्थात् वे, न कि केवल ऊपर ही ऊपर। ऊपर परिणाम हो परंतु “विशतां” किया “अंदर घुसने” का भाव बता रही है। इसलिये चमडीके अंदर रंग घुस जाता है और वहां बंध स्थिर हो जाता है। यह मंत्रका कथन स्पष्ट है।

### औषधियोंका पोषण ।

औषधियोंका पोषण दिनके समय होता है या रात्रिके समय, यह प्रश्न भेदे शास्त्रीय महत्त्वका है। औषधियोंका रामा सोम-चंद्र-दे, इसलिये औषधियोंका पोषण और वर्धन रात्रिके समय होता है। यही बात “नक्तं जाता” शब्दोंसे इस सूक्तमें बतायी है। रात्रिके समय बनी बनी या पुष्ट हुई औषधि होती है। प्रायः सभी औषधियोंके संबंधमें यह बात सत्य है तथा हमारा क्याल है। वनस्पति विद्या जाननेवाले लोग इस कथनक अधिक विचार करें।

“सौम्याग्र-वर्धन” के ( १८ वें ) सूक्तमें सौदर्यवर्धनका पाठक इन सूक्तको पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढ़ें । आता है उपदेश दिया है, इसलिये उस कार्यके लिये श्वेत कुष्ठ यदि कि पाठक इस प्रकार पूर्वोक्त संवध देखकर सूक्तार्थके किशकी हो, तो उसको दूर करना आवश्यक ही है । अतः अधिकसे अधिक लाभ उठावें ।

## कुष्ठ-नाशन सूक्त ।

( २४ )

( ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-आसुरी वनस्पतिः । )

सुपुणो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ । तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतिन् ॥ १ ॥  
 आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषुजमिदं किलामनाशनम् । अनीनशक्तिक्रामं सरूपामरुच्यचम् ॥ २ ॥  
 सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता । सरूपकृत्स्नमेषुधे सा सरूपामिदं कृधि ॥ ३ ॥  
 श्यामा सरूपकरणी पृथिव्या अधगुद्धृता । इदम् पु प्र साधय पुनां रूपार्थि कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ-सुरर्गे ( प्रथमः जातः ) सबसे पहिले हुआ ( तस्य पित्तं ) उसका पित्त ( त्वं आसिथ ) तूने प्राप्त किया है । ( युधा जिता ) युद्धसे जीता हुई वह आसुरी ( वनस्पतिन् ) वनस्पतिगणको ( तत् रूपं चक्रे ) वह रूप करती रही ॥ १ ॥ ( प्रथमा आसुरी ) पहिली आसुरीने ( इदं किलासभेषजं ) यह कुष्ठका औषध ( चक्रे ) बनाया । ( इदं ) यह ( किलास-नाशनं ) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है । इसने ( किलासं ) कुष्ठका ( अनीनशक्तं ) नाश किया और ( रुच्यं ) त्वचके ( स-रूपो ) समान रंगवाली ( अकरत् ) बना दिया ॥ २ ॥ हे औषधी तू ही माता ( सरूपा ) समान रंगवाली है तथा त्वया पिता भी समान रंगवाला है । इसलिये ( त्वं स-रूप-कृत् ) तू मा समानरूप करनेवाला है ( सा ) वह तू ( इदं सरूपं ) इसको समान रंगरूपवाला ( कृधि ) कर ॥ ३ ॥ श्यामा नामक वनस्पति ( सरूप-करणी ) समान रूपग करनेवाली है । यह ( पृथिव्या अधगुद्धृता ) पृथ्वीमें उखाड़ी गई है । ( इदं तं सु प्रसाधय ) यह कर्म ठीक प्रकार निष्ठ कर और ( पुनां रूपार्थि कल्पय ) फिर पूर्ववत् रंगरूप बना ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुपुर्ग नाम सुर्य है उसकी किरणोंमें पित्त बनानेकी शक्ति है । सूर्यकिरणों द्वारा यह पित्तवनस्पतिगणमें संश्लिष्ट होता है । योग्य उपवासि स्वार्थीन बनी हुई वनस्पतिगण रूप रंगका सुधार करनेमें सहायक होती हैं ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पतिसे कुष्ठ रोगके लिये उष्ण औषध बनता है । यह निचलेसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इसने शरीर की त्वचा समान रंग रूपवाली बनती है ॥ २ ॥ जिन पौधोंके संयोगसे यह वनस्पति बनती है, वे पौधे ( अर्योत् ) इसके माता गिताम्बी पौधे भी ) शरारिका रंग गुणालेवाले हैं । इसलिये यह वनस्पति भी रंगका सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह श्यामा वनस्पति शरीर की चमकीला रंग ठीक करनेवाली है । यह भूमिमें उखाड़ी हुई यह कार्य करती है । अतः इसके उपयोगसे शरीरका रंग गुणाला जाय ॥ ४ ॥

वनस्पतिके माता पिता ।

इस सूक्तके गृही० मंत्रसे बनता तिके मातापिताओंका वर्णन है अर्योत् को इस वनस्पतिके संयोगसे बननेवाली यह श्यामा वनस्पति है । दो पौधोंके वनस्पतिगणोंमें शरीरकी वनस्पतिगणके

गुणमंत्रसे युक्त बनती हैं, यह उदात्तगण आनेसे शरीर बनती है । कुष्ठगण इनामा आसुरी वनस्पति इस प्रकार बनती जानी है । शरीरके रंगका सुधार करनेवाली दो औषधियोंके संयोगसे यह रंग मा बनती है । दो आकारध पौधोंके प्रारंभक

नाम माता और जिसकी शाखा उसपर विपत्तयी या जोड़ी जाती है वह उसका पिता तथा उस संयोगसे जो नयी वनस्पति बनती है वह उस दोनोंका पुत्र है । पाठ १६४ उद्यान-विद्याको ६४ मंत्रमें देखें । ( मंत्र ३ )

### सरूप-करण ।

शरीरके वास्तविक रंगके समान वृष्टरोगके रोगानके चमड़ेका रंग बनाना "सरूपकरण" का तात्पर्य है आगुरी श्यामा वनस्पति यह करती है इसीलिये वृष्टरोगपर इसका उपयोग होता है । ( मं. २-३ )

### वनस्पतिपर विजय ।

"युद्धसे जीतां हुई आयु" वनस्पति औषध बनती है ।" यह प्रथम मंत्रका कथन विशेष मननीय है । वैद्यकी प्रत्येक दवापर इस प्रकार प्रभुत्व संपादन करना पड़ता है । आपत्ति उसके हाथमें आनेकी आवश्यकता है । वनस्पतिक युग्मधर्मोंमें पूर्ण परिचय और उसका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यकी होना आवश्यक है । नहीं तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता । ( मं. १ )

### सूर्यका प्रभाव ।

सूर्यमें नाना प्रकारके बीज हैं । वे बीज किण्वों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं । वनस्पतिद्वारा वे ही बीज प्राप्त होते हैं और रोगनाश अथवा मूलार्थन करते हैं । इस प्रकार यह सब

सूर्यका ही प्रभाव है । ( मं. १ )

### सूर्यसे बीर्य-प्राप्ति ।

सूर्यसे नाना प्रकारके बीज प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है ।

सूर्यं मात्मा जगत्स्तस्युपश्र । ( ऋग्वेद १ । ११५ । १ )

" सूर्यं हा स्थावर जंगम का आत्मा है " यह वेद भा उपदेश भी यहाँ मनन करना चाहिये । जब सूर्यसे नाना प्रकारसे बीर्य प्राप्त करके हम अधिन बीर्यवान हो जायेंगे तभी यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है ।

जैसे शरीर सूर्यकिरणोंमें विचरनेसे और सूर्यकिरणोंद्वारा अपनी चमड़ी अच्छी प्रकार तगनेसे शरीरके अंदर सूर्यका जावन संचारित होता है इसी प्रकार सूर्यसे तथा हुआ वायु प्राणायामसे अंदर लेनेके अभ्यासमें क्षययोगमें भी बड़ा लाभ पहुंचता है । इस प्रकार कई रीतियोंसे हम सूर्यमें बीर्य प्राप्त कर सकते हैं । पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको बहुत बांध प्राप्त हो सकता है ।

बैर्योंके उचित है, कि वे खोजसे दवाया वनस्पतिको प्राप्त करें और उनमें योगसे कुछ योग दूर करें । तथा सूर्यमें अनेक बीज प्राप्त करनेके उपाय बूढ़काल निकाल दें और उनका उपयोग आरोग्य बचानमें करते रहें ।

## शीत-ज्वर-दूरीकरण सूक्त ।

( २९ )

( ऋषिः भृगुशङ्कराः । देवतः-अग्निः, तन्मा । )

यदुगिरापो अदं हस्त्रविश्व यत्राकृण्वन् धर्मशृत्वो नमामि ।

वर्षं त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् ॥ १ ॥

यद्युर्विष्टि शामिं शोचिः शकृत्पुषि यदि वा ते जनित्रम् ।

नृद्वर्नामामि हरितस्प देव स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् ॥ २ ॥

यदि शोकां यदि वाऽमिश्रंको यदि वा रात्रौ शकृत्पुषामिं पुत्रः ।

नृद्वर्नामासि हरितस्प देव स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् ॥ ३ ॥

नमः शीतार्थं तुक्मने नमो रूपाय शोचिषे कृणोमि ।

यो अन्येषु ग्रहेभ्युद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तुक्मने

॥ ४ ॥

अर्थ—( यत्र ) जहाँ ( धर्म-घृतः ) धर्मका गलन करनेवाले सदावागी लोग ( नमोऽस्ति कृण्वन् ) नमस्कार करते हैं, वहाँ ( प्रविश्य ) प्रवेश करके ( यत् अग्नि ) जो अग्नि ( आपः अद्भवत् ) प्राग्धारक जलतरंगों जन्मता है ( यत्र ) वहाँ । ( ते परमं जानित्रं ) तेरा परम जन्म स्थान है, ऐसा ( आहुः ) कहे हैं । हे ( तुक्मन् ) कष्ट देनेवाले ज्वर ! ( सः संविद्वान् ) जानता हुआ तू ( नः परि वृग्धि ) हमको छोड़ दे ॥ १ ॥ ( यदि अर्चिः ) यदि तू ज्वालालह्व, ( यदि वा शोचिः अस्ति ) अथवा यदि तापहृष हो, ( यदि ते जानित्रं ) यदि तेरा जन्म स्थान ( सक्कश्य इति ) अंगप्रसंगमें परिणाम करता है, तो तू ( ऋद्धः नाम अस्ति ) = ऋद्ध [ अर्थात् गति करनेवाला ] इस नामका है । अतः हे ! हरितस्य देव तुक्मन् । पालक रोगको उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! ( सः संविद्वान् ) वह तू यह जानता हुआ ( नः परि वृग्धि ) हमें छोड़ दे ॥ २ ॥ ( यदि शोकः ) यदि तू पीडा देनेवाला अथवा ( यदि अभि शोक ) यदि शोक पीडा उत्पन्न करनेवाला हो, ( यदि वरुणस्य राश पुत्रः अस्ति ) किंवा वरुण राजाका तू पुत्र ही क्यों न हो, तुम्हारा नाम ऋद्ध है । हे पालक रोगके उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! तू हम सबको यह जानकर छोड़ दे ॥ ३ ॥ ( शीतार्थं तुक्मने नमः ) शीत ज्वरके लिये नमस्कार, ( रूपाय शोचिषे नमः कृणोमि ) रूपके तापको भी नमस्कार करता हूँ । ( य. अन्येषु ) जो एक दिन छोड़कर आनेवाला ज्वर है, ( उभयषु ) जो दो दिन आनेवाला ( अभ्येति ) होता है, जो ( तृतीयकाय ) तिहायी है, उस ( तुक्मने नमः अस्तु ) ज्वरके लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-धार्मिक लोग जहाँ प्राग्धारका पदुंचते और प्राग्धारक मद्धन जानकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राग्धारके मूलस्थानमें पहुँचकर यह ज्वरका अग्नि प्राग्धारक आप तरंगोंका जला देता है । यही इस ज्वरका परम स्थान है । यह जानकर इससे मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह ज्वर बहुत जोखी तपिश बचानेवाला हो किंवा अंदर ही अंदर तपनेवाला हो, किंवा हरएक अंग-प्रसंगों क्रमबद्ध करनेवाला हो, वह हरएक जीवनके अणुको हिला देता है इसलिये इसको " ऋद्ध " कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा शमिला रोगको उत्पन्न करता है, यह जानकर इ एक मनुष्य इसमें अपना बचाव करे ॥ २ ॥ कई ज्वर विशेष अंगमें दर्द उत्पन्न करते हैं और कई संपूर्ण अंगप्रसंगोंमें पांडु उत्पन्न करते हैं, जन्मगत बरुणसे इसको उत्पत्ति होती है, यह हरएक अंगप्रसंगको हिला देता है और पालक रोग शरीरमें उत्पन्न कर देता है । इसलिये हरएक मनुष्य इनसे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत ज्वर, बृहज्ज्वर, प्रातिदिन आनेवाला, एकदिन छोड़कर आनेवाला, दो दिन छोड़कर आनेवाला, तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो ज्वर हैं उनको नमस्कार हो अर्थात् ये हम सबमें दूर रहें ॥ ४ ॥

आग्निः आपः अद्दहत् ॥ (मंत्र १)

“यद् ज्वर जावनरसो हो जला देता है।” इसी कारण पचासे शर्करा शक्ति कम होती है। आर्त्तत्त्व प्राणशक्ति का प्राण करनेवाला है। (आपामयः) आर्त्तत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोक्त वचन है। प्राणक आध्यात्मिक शरीरस्य आर्त्तत्त्व इक्षु ज्वरके द्वारा जल जाता है, इसी कारण ज्वर आनेपर जीवन शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इस ज्वरको पीलक रोगना उत्पादक वदा है। देखिये—

हरित्स्व देव ! (मंत्र २, ३)

“पीलापन उत्पन्न करनेवाला” पीला निस्तेज बननेवाला, पीलकरोग, वामिला, पांडुरोग, जीवनशक्ति क्षय करनेवाला प्राण इन सबका उत्पादक ज्वर है। यह ज्वर इतने भयानक रोगको उत्पादक करनेवाला है, इसीलिये इसके मनुष्यको अपने आपका बचाव करना चाहिये। यह ज्वर प्राणको मूल स्थान पर हमला करके उसको कमजोर करता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

यद्भिरापो अद्दहत् प्रविष्ट्य धनाकृष्वन्  
धर्मधृषो नमासि ॥ (मंत्र १)

“जहां धार्मिक लोग जाकर मनन करते हैं वहां प्रविष्ट गैरक यह अग्नि-ज्वर-प्राण धार्मिक जीवनरसको जलाता है।” योशादि साधनद्वारा धार्मिक लोग समाधि अवस्थामें हृदय कमलमें प्रविष्ट होते हैं, उसी हृदयमें जावनरस रस है, वही रस-ज्वरसे जलता है। अर्थात् ज्वरका हृदयपर बहुत बुरा परिणाम होता है, जिससे बहुत कमजारी भी उत्पन्न होती है। इसी कारण यह ज्वर पीलक रोग अथवा पांडुरोग उत्पन्न करता है ऐसा मूलके द्वितीय मंत्रमें कहा है। यह हिमज्वर जिनको आजकल “मलेरिया” कहा जाता है बहुत बहुत ही हानिकारक है। इसलिये उसको हटाए प्रयत्नपूर्वक रचना चाहिये, यही निम्नलिखित मंत्रभागमें सूचित किया है—

स नः संनिदान् परिभृषिष्य सधमन् ॥ (मंत्र १, २, ३)

“यह बात जानता हुआ ज्वर दूर रखा जाय” अर्थात् ज्वरके कारण दूर करके उसका हमला मनुष्यपर न हो इस विषयमें योग्य प्रयत्न किये जाय। ज्वर आनेके बाद उसके प्रतिघोरक यत्न करना चाहिये इसमें किसी विवाद नहीं हो सकता, परंतु इस संध्याका वेद बड़ी उपदेश देना चाहता है, कि अपने शरीर और प्रामाणिक व्यवस्था मनुष्य इस प्रकार रखे कि यह मलेरिया ज्वर आवेगी न और उसके निवारणके लिये दवाइयाँ पीनी न पड़े। क्योंकि यह विष हतना पातक है कि

एक घा आया हुआ हिमज्वर अपना परिणाम स्थिर रूपसे शरीरमें रख जाता है और उसके निवारणके लिये वर्षोंतक और बड़े व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं।

## हिमज्वरके नाम ।

इस सूक्तमें हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१ ऋडु-गति उत्पन्न करनेवाला, शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला, ज्वरका शक्ति त्रिस समय प्रारंभ होता है, उस समय मनुष्य कांपने लगता है। मराठी भाषामें इस हिम ज्वरका नाम “हुडहुडा ताप” है, यह शब्द भी वैदिक “ऋडु” शब्दके साथ मिलता जुलता है। यही शब्द विभिन्न इत्सलिखित पुस्तकमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है—ऋडु, ऋडु ऋडु, ऋडु, ऋडु, ऋडु, ऋडु, ऋडु, ऋडु। अथर्ववेदकी पिण्डलाद शाखा की संहितामें “ऋडु” पाठ है। यह “ऋडु” शब्द मराठी “हुडहुडा” शब्दकेही सदृश शब्द है। (मंत्र २, ३)

२ शक्ति-जो ज्वर शक्ति लग कर प्रारंभ होता है ॥ यह प्रतिदिन आनेवाला समझना उचित है। (मंत्र ४)

३ अन्वेषु-एक दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

४ उन्मथु-दूसरे दिन आनेवाला अथवा दा दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

५ तृतीयक-तीसरे दिन आनेवाला किंवा सात दिन छोड़कर आनेवाला अथवा नियत दिन बीचमें छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

६ त्वमा-जीवन दुःखमय बनानेवाला ज्वर।

७ अर्षिः-अग्निही ज्वालाएं भड़कनेके समान त्रिसही सज्जता बाहर बहुत होती है। (मंत्र २)

८ शोचिः, शोकः-जिसमें शरीरमें पीडा होती है। (मंत्र २)

९ शकलय-हृयि-अंग-प्रसंग अलग अलग होनेके समान शिथिलता आती है। (मंत्र २)

१० अमिदोक्तः-जिसमें सब शरीर बड़ा दर्द करता है। (मंत्र ३)

इन नामोंका विचार करनेसे इस ज्वरके स्वरूपका पता लग सकता है और निश्चय होता है कि यह वर्णन शीतज्वर जिते मलेरिया आजकल कहते हैं इसका ही है।

परके पाप जत सज्जता न रहे, घरके पापकी भूमि अच्छी रहे और किनी भी ध्यानमें इस रोगको उत्पत्ति होने योग्य परिस्थिति न हो, इसी प्रकार प्राममें और प्रामके आसपास ही

स्थान योग्य और आरोग्य कारक हों, जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा । क्योंकि यह ज्वर जलके दलदलसे उत्पन्न होता है । इसीलिये " जल देवताका पुत्र " इसका एक नाम इसी सूक्तमें दिया है । यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको हमसे बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है । आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचावेंगे ॥

### नमः शब्द ।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें " नमः " शब्द तीनवार आया

है । यहाँका यह नमनवाचक शब्द श्रातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानवाले नमस्कारके समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है । कौशोभे " नमस्कर, नमस्कारी " शब्द औपाधियोंके भी वाचक हैं । यदि " नमः " शब्दसे किसी औपाधीका बोध होता हो तो वह खोज करना चाहिये । " नमः " शब्दके अर्थ " नमस्कार, अन्न, शस्त्र, दण्ड " इतने प्रसिद्ध हैं, " नमस्कारी, नमस्कार, नमस्कारी " ये शब्द औपाधियोंके भी वाचक हैं । अतः इस विषयका अन्वेषण वैद्य लोग करें ।

## सुख प्राप्ति सूक्त ।

( २६ )

( ऋषिः—ब्रह्मा । देवताः— इंद्रादयः )

आरे ३ सावस्मदस्तु हेतिर्देवास्तो असत् । आरे अइमा यमस्यथ	॥ १ ॥
सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः	॥ २ ॥
युयं नः प्रवतो नपान्मर्हतः सूर्यत्वचसः । शुर्मं यच्छाय सुप्रधाः	॥ ३ ॥
सुपुदतं मुहृतं मुहृषां नस्तनूम्याो भयस्तोकेभ्यस्कृधि	॥ ४ ॥

अर्थ—हे ( देवास्तः ) देवो! ( असीं हेतिः ) यह पत्र ( असाय आरे अस्तु ) हमसे दूर रहे । और ( यं अत्यय ) मिले हुए फँकते हो वह ( अइमा आरे असत् ) पत्थर भी हमसे दूर रहे ॥ १ ॥ ( असीं रातिः ) यह दानशाल, ( भगः ) धनयुक्त सविता, ( चित्ररायः इन्द्रः ) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त इन्द्र हमारा ( सखा अस्तु ) मित्र होवे ॥ २ ॥ हे ( प्रवतः नपाय ) अपने आपका रक्षण करनेवालेको न गिरानेवाले! हे ( सूर्यत्वचसः मरुतः ) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत देवो! ( युयं ) तुम ( नः ) हमारे लिये ( सप्रयः दार्मं ) विस्तृत सुख ( यच्छाय ) दो ॥ ३ ॥ ( सुपुदतं ) तुम हमें आश्रय दो, ( मुहृषां ) हमें गुणों करो, ( नः ) तुमसे ( मुहृष्यः ) हमारे शारीरिक आरोग्य दो तथा ( तोकेभ्यः मयाः कृधि ) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे देवो! आपका दंडरूप पत्थर आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका आशय न आवे, अर्थात् हममें ऐसा कंडू काप न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें ॥ १ ॥ इन्द्र सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों ॥ २ ॥ मरुत देव हमारा सुख बसावें ॥ ३ ॥ सब देव हमें उत्तम आधार दें, हमारे शारीरिक आरोग्य बसावें, हमारे मनकी शांति सुदृढ करे, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनंद बसावें ॥ ४ ॥

### देवोसे मिश्रता ।

इन्द्र, सविता, भग, मरुत आदि देवोंसे मिश्रण करनेसे सुख मिलता है और उनके प्रतिफल आचरण करनेसे सुख प्राप्त होता है । इसलिये श्रम मंत्रमें प्रार्थना है कि उन देवोंका दंड

१० ( म. घ. भा. कां. १ )

हमपर न पड़े, और दूसरे मंत्रमें प्रार्थना है कि वे सब देव हमारे मित्रः हमारे सहायक बनकर हमारा सुख बसावें, अपना हमारा ऐसा आचरण बने कि वे हमारे सहायक बनें और विरोधी न हों । देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता-सूर्यदेव है, यह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है, परन्तु सवरे उदय होनेके समयसे अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहता है, परंतु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपन आपको तग मकानोंमें बंद रखते हैं, और सविता देवके पवित्र हाथक पास जाते ही नहीं। सूर्य ही आरोग्य की देवता है, उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्राघात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगके दु खोंमें गिरना आवश्यक होता है ।

२ मरुत्व नाम वायु देवता का है। यह वायुदेव भी हमारी सहायता करनेके लिये हरएक स्थानमें हमारे पाहलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम सुखी हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आने ऐसी व्यवस्था नहीं करते, इतना ही नहीं परन्तु वायुको बिगाड़नेके अनंत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका क्रोध हमपर होता है और उनका वज्राघात हमें सदन करना पड़ता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके क्रोधसे हमें सता रही हैं।

इसी प्रकार अग्न्याय देवोंका संबध जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाग्ण्य कां० १ सूक्त ३, ९ देखिये, इन सूक्तोंके स्पष्टीकरणके प्रयत्नमें देवताओंसे हमारे सम्बन्धका वर्णन किया है। इसलिये इन सूक्तके साथ उन सूक्तोंका संशय अवश्य देखना चाहिये ।

जिस प्रकार ये षट् देवताएँ हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ सकता है, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे घरारमें स्थान स्थानमें रहे हैं उनको मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब योजासा विवरण देखिये—

१ सविता सूर्य देव आकाशमें है, उसीका प्रतिनिधि-अग्ररूप अब हमारी आँखमें तथा नाभस्थानके सूर्यचक्रमें रहा है। प्रमथ. इनके काम दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके साथ संबंधित हैं। पाठक यहां अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे प्रथम बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है। यदि आसन्न किंगी समय भोखा देने, अथवा रूपके विषयमें नाइन हाकर हान मांने इस शरीरको ले चले, तो उससे प्राप्त मानवानी शरीर का कष्टमय दशा की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं। इसी प्रकार पेटकी पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे

कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसका ज्ञान पाठकोंसे छिपा नहीं है। अर्थात् शरीरस्वस्थानीय सूर्य सविताके अग्र रूप देव के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आपत्तियोंकी संख्या कितनी बढ सकती है इसका पाठक ही विचार करें ।

२ इसी प्रकार मरुत्व वायु देव फेंकड़ोंमें तथा शरीरके नाना स्थानोंमें रहते हैं। यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना विधियोंकी उत्पत्ति हो सकती है ।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंत:करणके स्थानमें तथा अग्न्याय देव शरीरके अग्न्याय स्थानोंमें रहते हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि उनके "सखा" बनकर रहनेसे ही मनुष्य मात्रकी स्वास्थ्य और आनंद प्राप्त हो सकता है। इनके विरोधी बननेसे "दु खका पारावार नहीं होगा ।

पहले मंत्रमें "देवोंके दग्धसे दूर रहने की" और दूसरे मंत्रमें "देवोंसे मित्रता रखने की" सूचनाका इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें डालनेका प्रयत्न करें और परम आनंद प्राप्त करें। तीसरे मंत्रका "इसी आचरणसे विभ्रुत सुख मिलता है," बढ कथन अब सुस्पष्ट ही हुआ है ।

चतुर्थ मंत्रमें जो कहा है कि "ये ही देव हमें सहाय देते हैं, हमें सुखी रखते हैं, हमारे शरीरका आरोग्य बढाते हैं और बालबच्चोंको भी आनंदित रखते हैं," यह कथन अब पाठकोंको भी दिनेके प्रकाशके समान प्रत्यक्ष हुआ होगा। इसलिये स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्तिके इस सच्चे मार्गका अवलंबन पाठक करें ।

## विशेष सूचना ।

विशेषका पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें, कि वेदसुख स्वास्थ्य और आनंदके प्राप्त करनेके लिये घनादि साधन नहीं बताता है, प्रसुत "जल, वायु, सूर्य आदि के साथ संबंध करो" यही साधन बता रहा है। यह हरएक कर सकता है। यदि घन किसीको मिले या न भा मिले, परंतु "जल वायु और सूर्य प्रकाश" तो हरएक को मिल सकता है। इस स्वास्थ्यके अति मुलम साधनका पाठक अधिक विचार करें, वैदकी इस शैलीका अवश्य मानन करें और उपदेशके अनुसार आचरण करके लाभ उठावें ।

# विजयी स्त्री का पराक्रम ।

( २७ )

(-श्रमपि-अथर्वा । देवता-इन्द्राणी )

अमूः पारे पृदाकांस्त्रिपत्ता निर्जरायवः ।

तासौ जरायुभिर्व्यमक्ष्याः कुं वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥

विपूज्येत् कन्तुतीं पिनाकामिव विभ्रती । विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

न बहवः समशकन्नाभिका अभिदाघुषुः । वेणोरद्रा इवाऽभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं बहतं पृणतो गृहान् । इन्द्राण्येति प्रथमाजीतामृषिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—( अमूः पारे ) वह पारमें ( निर्जरायवः ) शिथिल निकली हुई ( त्रि-सप्ता ) तीन गुण सात ( पृदाकः ) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं । ( तासौ ) उनकी ( जरायुभिः ) केंचुलियोंके ( व्यं ) इन ( अघ-आयोः परिपन्थिनः ) पाप, दुष्टशत्रुकी ( अक्षयौ ) दोनों आखें ( वपि व्ययामसि ) ढके देते हैं ॥ १ ॥ ( पिनाकं इव विभ्रती ) घनुष्य धारण करनेवाली, और शत्रुको ( कन्तुती ) काटने वाली क्षारसेना ( विषुषी पतु ) चारों ओर आगे बढ़े । जिससे ( पुनर्भुवा ) फिर इच्छी से हुई शत्रुसेनाका ( मनः विष्वक् ) मन इधर उधर हो जावे । और उससे ( अघायवः ) पापी शत्रु ( असमृद्धा ) निर्धन हो जावे ॥ २ ॥ ( बहवः न समशकन् ) बहुत शत्रु, भी उनके सामने ठहर नहीं सकते । फिर ( अर्भकाः ) जो बालक हैं वे ( न भग्नि दाघुषुः ) धैर्यही नहीं कर सकते । ( वेणोः-भद्राः इव ) बाघके अंडरोंके समान ( अभितः ) सब ओरसे ( अघायवः ) पापालेख ( असमृद्धाः ) निर्धन हैं ॥ ३ ॥ हे ( पादौ ) दोनों पांवों । ( प्रेतं ) आगे बढ़े, ( प्र स्फुरतं ) फुरती करो, ( पृणतः गृहान् बहतं ) संतोष देनेवाले घरोंके प्रति हमें पहुंचाओ । ( अजीवा ) बिना जीती, ( अमृषिता ) बिना दूटी हुई और ( प्रथमा , मुखिया बनी हुई ( इन्द्राणी ) महारानी ( पुरः पतु ) सबके आगे बढ़े ॥ ४ ॥

भावार्थ—केंचुलीसे बाहर आयी हुई सर्पिणियोंके समान चपल सेनाएं तीन गुने सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये छिद्र हैं, उनकी हलचलसे हम सब पापी दुष्टोंकी आखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ शत्रु धारण करनेवाली और शत्रुको काटनेवाली बीरोंकी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढ़े, जिससे शत्रुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी शत्रु निर्धन हो जावे ॥ २ ॥ ऐसी घर बीरोंकी सेनाके सम्मुख बहुत शत्रु भी ठहर नहीं सकते फिर कमजोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बाघके कोमल और अशक्त अंडरके समान चारों ओरसे पापी शत्रु धनहीन होकर नाशको प्रसन्न होंगे ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न दूटी गईं बीर स्त्री महारानी मुखिया बनकर आगे बढ़े, इतर लोग उसके पीछे चले, हरएक बीरके पांव आगे बढ़ें, चारोंमें पुनः चढ़े और सब शोग-संतोष बघानेवालोंके घरोंतक पहुंच जाय ॥ ४ ॥

## इन्द्राणी ।

“ इन्द्र ” शब्द राजाका वाचक है जैसा-नरेन्द्र ( मनुष्यों-का राजा ) मृगेन्द्र ( मृगोंका राजा ), खगेन्द्र ( पाक्षियोंका-राजा ) इत्यादि । केवल इन्द्र शब्द भी राजाका ही वाचक है, और “ इन्द्राणी ” शब्द इन्द्रकी रानी, राजाकी रानी, महारानी, रानी का वाचक है । यह इन्द्राणी गंगाकी प्रेरक देवी दे वर

शत तैशियाय संश्रितायै कही है दोषमें—  
 इन्द्राणी ये सेनायें देवता । मै- सं० २१२/१११  
 “ इन्द्राणी तैश्यायै वराय दे । ” बनेकि १५वीं श्लोकसे  
 वैदिक अथवा पद्यकालमें और विश्रय प्राप्त करते हैं ।  
 थीर थी ।  
 “ इन्द्राणी अर्थात् रानी सेनायें मुखिया बनकर सेनायें



प्रोत्साहन देती हुई आगे चले, हरएकके पांव आगे बढ़े, हा एकका मन उत्साहसे युक्त रहे, संयोग बढ़ाने वाले सज्जनोंके घरोंमें ही लोग जाव । " परन्तु जो लोग सुयोगको कम करने वाले, उत्साहका नाश करने वाले, और मनकी आशाका घात करनेवाले हों उनका पाम कोई न जावे, क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं । यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है ।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियांभी ऐसी शूर और दक्ष होंगी वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इसमें क्या संदेह है ? जिस देशमें स्त्रियां सेनाको चला सकेंगी उस देशके युद्ध कितने शूर और कड़े भी होंगें । क्या ऐसी वीर स्त्रियोंको कोई हीन मनवाला आदमी धमका सकता है और ऐसी शूर स्त्रियोंकी किसी स्थानपर कोई बेइज्जती कर सकता है । इसलिये आत्मसमान रखनेका इच्छा करने वालोंको उचित है, कि वे स्वयं मर्द पत्तों और अपनी स्त्रियोंको भी ऐसी शिक्षा दें कि वे भी शूरवीर बनकर अपने संमान का रक्षा कर सकें ।

" हाथमें चाख धारण करती हुई, शत्रुको काटती हुई आगे बढ़े, जिसका वेग देखकर शत्रुका मन उत्साहहित होवे और शत्रु निर्धन अर्थात् परास्त हो जावें । " यह त्रिविध मन्त्रका भाव भी चतुर्थ मन्त्रके साथ देखने योग्य है । क्योंकि यह मन्त्र भी वीर आका पराक्रम ही बता रहा है । यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीर स्त्रीका वर्णन करता है । ( मन्त्र )

वारस्त्रियोंको उपमा केंचुलीसे निरवली हुई सर्पिणीकी इस सूक्तमें दी है । स्वभावतः सर्पिणी बड़ी तेज रहती ही है और अति फुल्लिसे शत्रुपर हमला करती है । परन्तु जिस समय वह केंचुलीसे बाहर आती है उस समय अतितेजस्वी और अतिचपल रहती है क्योंकि इस समय यह नवजीवनसे युक्त होती है । वीर स्त्री ऐसी ही होती है । स्त्री स्वभावतः चपल होती है, परन्तु जिस समय कार्यवश राष्ट्रीय आवश्यकतासे प्रेरित होकर, धारमसमानकी रक्षाके लिये कोई वीर स्त्री अपने अतर्पण रूपी केंचुलीसे बाहर आती है, उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन बना करता है । यह उस समय सचमुच सर्पिणीकी भावति चमकती हुई, बिजलीके समान तेजस्विनी बनकर वीरसेनागणोंको प्रेरित करती है । उस समयका उत्साह वीर प्रपण ही कल्पनासे जान सकते हैं । " उसके तैपसे शत्रुकी आँखें ही अभी बन जाती हैं " और उसके खप शत्रु नि सत्व हो जाते हैं । ( मंत्र १ )

जहां ऐसी वीरागनाएं समर्थ हैं उन लोगोंके सामने बढ़े बढ़े शत्रु भी डर नहीं सकते, फिर अल्प शक्तिवाले कमजोर मनुष्योंकी बात ही क्या है ? पासके अंडरोंके समान उनके शत्रु नष्टप्रथ ही हो जाते हैं । " ( मन्त्र १ )

### शुशुवाचक शब्द ।

इस सूक्तमें शुशुवाचक शब्द है उनका विचार यहां करना आवश्यक है—

१ अथायु = आयु भर पाप कर्म करनेवाला ।

२ परिपन्थिन् = बटमार, घुरे मार्गसे चलनेवाला ।

पापीलोग ये हैं और इनके घुरे आचरणके कारण ही वे शत्रुव करने योग्य हैं । "असृष्टाअथायव" यह शब्द प्रयोग इस सूक्तमें दीवार आया है । " पापी समुद्रिसे दूषित होते हैं । " यह इसका भाव है । पापसे कमी शुद्धि नहीं होगी । पापसे मनुष्य गिरता ही जाता है । यह भाव इसमें देखने योग्य है । जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाद्र्य बनना चाहते हैं उनको यह मन्त्र भाग देखना योग्य है । यह मन्त्र उपदेश दे रहा है कि " पापी कमी उन्नत नहीं होगा, " यदि किसी अवस्थासे वह धनवन्त हुआ, तो भी वह उसका मन उसके नाशका ही हेलू नि संदेह बनेगा । तात्पर्य परिणामकी दृष्टिसे वह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे ।

### तीन गुणा सात ।

सेनाके तीन गुणा सात विभाग हैं । रथयोधी, गजयोधी, अश्वयोधी, पदाती, दुर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये सात प्रकारके सैनिक होते हैं । प्रत्येकमें अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी, और सहायक इन तीन भेदोंसे तान गुणा सात सैनिक होते हैं ।

### निर्जरायु ।

" जरायु शब्द सिद्धि, जेरिका वाचक है पण्डु यथा स्त्रियांसे प्रयुक्त है । यहां इसका अर्थ ( जरा+आयु ) पृदावस्था अथवा आर्णता किंवा यकावद, तथा आयुष्य । ( नि +त्रा+आयु ) जो जीर्णता, यकावद, पृदावस्था अपना आयुकी पूर्वा न करने वाले होते हैं, अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी पूर्वाह न करते रहते हैं, जो अपनी अवस्थाकी तथा सुखदुःख की पूर्वाह न करते हुए अपने यमके लिये ही रहने रहते हैं उनको "निर्जरायु" अर्थात् ' अरा और आयुके विचारसे मुक्त " कहते हैं । जीवित ही आग्य छोड़कर रहनेवाले धैरिक ।

इस सूक्तके मन्त्र वीरा स्त्री विपदक तथा सेना विपदक अर्थ बताते हैं, इसलिये ये मन्त्र विशेष मननके साथ पढ़ने योग्य हैं ।

तथा हममें कई शब्द द्वेष अर्थ बताने वाले भी हैं जैसा कि ऊपर बताया है । इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस सूक्तका अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है ।

वीर पुरुष उत्पन्न करेंगे और अपना यश बढ़ानेका परम पुरुषार्थ करेंगे ।

यह सूक्त " स्वस्त्ययन गण " का है इसलिये इस गणके अन्य सूक्तोंके साथ पाठक इसका विचार करें ।

## दुष्ट नाशन सूक्त ।

( २८ )

( ऋषिः-चातनः । देवता-स्वस्त्ययनम् । )

उप प्राणाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्यप इयाविनेो यातुधानान्किमीदिनः ॥ १ ॥

प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥

या शशाप शपनेन याधं मूरमादधे । या रसस्य हरणाय जातमारिभे तोकमत्त सा ॥ ३ ॥

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।

अर्धा मिथो विक्रेष्यो कुं वि शर्ता यातुधान्यो कुं वि तृहन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

अर्थ-( अग्नी चातनः ) शोणोंको दूर करनेवाला और ( रक्षोहा ) राक्षसोंका नाश करनेवाला अग्निदेव ( किमीदिनः ) सदा भूशोंको ( यातुधानान् ) लुटेरों को तथा ( इयाविनेः ) दुमुखे करटियोंको ( अप दहन् ) जलाता हुआ ( उप प्रगात् ) पास पहुंचा है ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! ( यातुधानान् प्रति दह ) लुटेरों को जलादे तथा ( किमीदिन प्रति ) सदा भूशोंको भी जलादे । हे ( कृष्णवर्तने ) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव ! ( प्रतीचीः यातुधान्यः ) संमुख आनेवाली लुटेरी श्रियोंको भी ( संदह ) ठीक जला दो ॥ २ ॥ यह दुष्ट लुटेरी श्रियां ( शपनेन शशाप ) शपसे शप देती हैं, ( या अधं मूरं आदधे ) जो पाप ही प्रारंभसे स्वीकारती हैं, ( या रसस्य हरणाय ) जो रस पानेके लिये ( जातं लोकं आरिभे ) जन्मे हुए बालकको खाना आरंभ करती हैं और ( सा अशु ) वह पुत्र खाती है ॥ ३ ॥ ( यातुधानीः ) गायी स्त्री ( पुत्रं अत्तु ) पुत्र खाती है । ( स्वसारं उव नप्त्यं ) बहिन को तथा गायी को खाती है । ( अय ) और ( विक्रेष्यः ) केच वरुच वरुच कर ( विच. शर्ता ), आपसमें साहसा है । ( अराय्यः यातुधानीः ) दानभाव-रहित पातकों स्त्री ( विवृष्टान्तां ), आपसमें मारगट करती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम बंध, आशु र भावसे दहाने वाला, अग्निके समान तेजस्वी, उपदेशक स्वामी लुटेरों तथा करटियोंके दूर करता हुआ अग्नि बले ॥ १ ॥ हे उपदेशक ! तू लुटेरों स्वामी दुष्टोंको नाश कर, तथा जानने आने वाली दुष्ट श्रियोंको भी दुष्टता दूर कर दे ॥ २ ॥ इन दुष्टोंका उत्सव यह है कि वे आपसमें गालियां देते रहते हैं, हाथक काम पाप हेतुसे करते हैं, यशसक वे क्रूर होने हैं कि रक्त पानेकी इच्छाने नये उत्तम बालकको ही भुजना आरंभ कर देते हैं ॥ ३ ॥ इनकी स्त्री आने पुत्रको खाती है, बहिन तथा नर्सको भी खाती है, तथा एक दूसरेके भाव वरुचकर आपसमें ही सटती रहती है ॥ ४ ॥

पूर्वापर संबंध ।

इसी प्रथम कांडके ७ तथा ८ वें सूक्तकी व्याख्याके

प्रथममें धर्मप्रचार प्रकरणमें अग्निदेव किस प्रकार अग्नि

उपदेशक ही है तथा वह किस प्रकार ज्ञाना दे अर्थात्

दुष्टोंको सुधारता है; इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है। इसलिये इन ७ और ८ वें सूक्तके स्पष्टीकरण पाठक यहां पाहिले पढ़ें और पश्चात् यह सूक्त पढ़ें

संस्कृतमें " वि दग्ध " ( विरोध प्रकारसे जलाहुआ ) यह शब्द " अग्नि विद्वात् " के लिये प्रयुक्त होता है। यहां अज्ञानका दहन जलन आदि अर्थ समझना उचित है। जिस प्रकार अग्नि लोहे आदिको तपाकर शुद्ध करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानाग्नि अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञानको जला कर शुद्ध करता है। इस कारण " ब्राह्मण " के लिये वेदमें " अग्नि " शब्द आता है। ब्राह्मण और क्षत्रियके वाचक वेदमें " अग्नि और इन्द्र " शब्द प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणधर्म अग्नि देवताके और क्षत्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता है। इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं। वहां धर्म प्रचार की बात इस सूक्तमें है, इसलिये पाठक उक्त पूर्व सूक्तोंके साथ इस सूक्तका संबंध देखें।

इस सूक्तमें " अमीव-चातनः " ( रोगोंका दूर करनेवाला ) यह शब्द विशेषण रूपमें आया है। यह यहां चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध करता है। उपदेशक जैसा शास्त्रमें प्रवीण चाहिये वैसा ही वह उत्तम वैद्य भी चाहिये। वैद्य होनेसे वह रोगोंका चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है। धर्म प्रचारकके अन्य गुणसूक्त ७, ८ में देखिये।

दुर्जनोंके लक्षण।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण कहे हैं जो सूक्त ७, ८ में कहे लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं; इस लिये उनका विचार यहां करते हैं-

१ इयपिन- मनमें एक भाव और बाहर एक भाव ऐसा कष्ट करनेवाले। ( मं ०१ ) " किमादिदु, यानुषानु " इन शब्दोंका भाव सूक्त ७, ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है। इस सूक्तमें दुर्जनोंके कई व्यवहार बताये हैं, वेनी यहां देखिये-

२ क्षपनेन क्षापाय- क्षापके क्षाप देना, घुरे छन्द बोलना, गालियां देना इ०। मं ३

३ अयं मूर्त् आदुवे- प्रारंभमें पापका भाव रहता है। हर एक क्षममें पाप रहिये ही उमका प्रारंभ रहता।

४ हरस्य हरणाय जावं तोकं आरेमे- हरत पीनेके द्विये नवराज बनेको खाती है।

५ यातुधानी पुत्रं स्वसारं नप्यं- कसि- यह दुष्ट आसुरी स्त्री बच्चा, बहिन अथवा नाती को खाती है।

६ विकेदयः मिथः विघ्नतां, वितृह्यन्तां- आपसमें केश पकड़ कर परस्पर मार पीट करती हैं।

ये सब दुर्जन स्त्रीपुरुषोंके लक्षण हैं। बालबच्चोंको खानेवाले लोग इस समय अफिममें कई स्थानोंपर हैं, परंतु अन्य देशोंमें अब ये नहीं हैं। जहां कहां ये हों, वहां धर्मोपदेशक चला जावे और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनावे, उनकी दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे।

ऐसे मनुष्य-भक्षक दुष्ट, क्रूर, हिंसक, मनुष्योंमें भी जाकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका यत्न करनेका उपदेश होनेसे इससे कुछ सुधरे हुए किंचित् ऊपरी श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म जागृत करनेका आशय स्वयंही स्पष्ट हो जाता है।

दुष्टोंका सुधार।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण ही वे असभ्य-समसे जाते हैं। उनकी दुष्टता उपदेश आदि द्वारा हटाकर उनको सभ्य बनाना ब्राह्मणोंमें है और उनकी दृष्ट देकर बुराबसे उनका सुधार करनेका बल काना क्षात्र मार्ग है। वेदमें अग्निदेवता से ब्राह्मणमार्ग और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है। जलावे या तपावे तो दोनों ही हैं, परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञानको जलाता है और दूसरा शस्त्र दण्ड और इचीप्रकार के बर्तों उपायोंसे पीटा देकर उनको सुधारता है।

सुधार तो दोनोंमें होता है, परंतु क्षत्रियोंके दंडद्वारा लगाने के उपायसे ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्निद्वारा तपानेका उपाय अधिक उत्तम है और इसमें बृद्ध भी कम हैं।

पाठक अग्नि शब्दसे आगका ग्रहण करके उससे दुष्टोंको जलानेका भाव इस सूक्ते न निराले, क्योंकि इस सूक्तका संबंध आग्नेयोंके अनेक सूक्तोंसे है और अग्निके गुणोंके प्रमाण देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तोंमें अग्निष्ट है यह सूक्त ७, ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया ही है। इसके अतिरिक्त " रोग दूर करनेवाला अग्नि " इस सूक्तमें कहा है। यदि यह उन लोगोंको जलाही देवे तो उचित रोगमुक्त, करनेके गुणमें क्या लाभ हो सकता है। शक्तिसे यह अग्निच जलाना " ज्ञानाग्निसे अज्ञाननाश जमाना " ही है। दुष्ट गुणधर्मोंको हटाना और वहां श्रेष्ठ गुण धर्म स्थापित करना ही यहा अमीश है और इचीतिये रोगमुक्त करनेवाला उत्तम

वैद्यही-धर्मोपदेशकका कार्य करे, यह सूचना इस सक्तमें हमें मिलती है । क्योंकि-रोगीके मनपर वैद्यके उपदेशका जैसा असर होता है वैसा वक्ताके व्याख्यानके श्रोताओंपर नहीं होता । रोगीका मन आतुर होता है इसलिये श्रवण की हुई-सतत बात उसके मनमें जम जाती है और इस कारण वह शीघ्र-ही सुधर जाता है ॥

'खावे' ऐसा होता है-परंतु "शशाप-आदधे" इन क्रियाओंके अनुसंधानसे "अतु" के स्थानपर "अति" मानना युक्त है । क्योंकि-यहां यातुधानीकी रीति बताई है जैसे (शशाप) शाप देते रहते हैं, (अर्थ आदधे) पाप स्वीकारते रहते हैं, (तोंक अति) षष्ठीको खाते रहते हैं अर्थात् यह उनकी रीति है । प्रवीण संबंधसे यह अर्थ यहां अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होता है । तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य बात इस सूक्तमें देखेंगे, तो अर्थकी खोज होनेमें अवश्य सहायता होगी

1. [यह तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें "अतु" शब्द है जिसका अर्थ

इति पंचम अनुवाक्य समाप्त ।

## राष्ट्र-संवर्धन-सूक्त ।

( २९ )

( ऋषिः-वसिष्ठः । देवता-अमीवर्तों मणिः )

अमीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृषे । तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥  
 अभिवृत्य सपत्नानि या नो अरांतयः । अभि पृतन्यन्तं तिष्ठामि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥  
 अभि त्वा देवः संवितामि सोमो अवीवृषत् । अभि त्वा विश्वा मृतान्यमीवर्तो यथासंसि ॥ ६ ॥  
 अमीवर्तो अभिभवः सपत्नस्यर्षणो मणिः । राष्ट्राय मह्यं वष्यतां सपत्नेभ्यः परासुवै ॥ ४ ॥  
 उदसौ सुषो अगादुद्विदं मामुकं वचः । यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥  
 सपत्नस्यर्षणो वृषामिराष्ट्रो विपासहिः । यथाहमेपां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

अर्थ-हे ( ब्रह्मणस्पते ) शानी पुत्र ! ( येन इन्द्रः अभिवावृषे ) त्रिष्ठे इन्द्रका मित्रय हुआ था, ( सेन अभिवर्तेन मणिना ) उस मित्रय करनेवाले मणिसे ( अस्मान् ) हमको ( राष्ट्राय अभिवर्धय ) राष्ट्रके लिये बड़ा दो ॥ १ ॥ ( याः नः अरांतयः ) जो हमारे शत्रु हैं उनको तथा अन्य ( सपत्नान् ) वैरियोंको ( अभिवृत्य ) परामृत करके, ( याः नः दुरस्यति ) जो हमसे दुष्टताका आचरण करता है तथा जो ( पृतन्यन्तं ) सेनासे हमपर चढ़ाई करता है उनसे ( अभि ) मणि मणि तिर ) मुद करनेके लिये मिरा हो आओ ॥ २ ॥ ( संविता देवः ) सृष्टि देनेवाले तथा ( सोमः ) चंद्रमा देनेवाले जो ( त्वा ) तुममें ( अभि ) अभि-शरीरवृषत् ) सब प्रशंसते बड़ा दा दे । ( विश्वा मृतानि ) सब मृत ( त्वा ) तुमसे बड़ा रहे हैं, मित्रयैत् ( अभिवर्तः ) आ-सि ) शत्रुको दखनेवाला हुआ है ॥ ३ ॥ ( अभिभवः ) शत्रुको परानेवाला, ( अभिभवः ) शत्रुका परामृत करनेवाला, ( सपत्नस्यर्षणः ) प्रतिशत्रुको काट करनेवाला यह ( मणिः ) मणि है । यह ( परानेभ्यः परामुचे ) प्रतिशत्रुको पराने करनेके लिये तथा ( राष्ट्राय ) राष्ट्रके अन्तुदयके लिये [ मह्यं वष्यतां ] सुखर काया जाये ॥ ४ ॥ ( अमी सुषः ) उदसौ सुषो : यह सृष्टि देनेवाले आता हुआ है, ( अगादुद्विदं वचः उच्यते ) यह वेदोंका वचन भी प्रकट हुआ है, ( त्वा ) त्रिष्ठे ( अहं शत्रुहा ) शत्रुका नाश करनेवाला, ( सपत्नहा ) प्रतिशत्रुका नाश करनेवाला होकर मैं ( अरांतयः अरांति ) शत्रुपीठ छोड़ ॥ ५ ॥

( यथा ) जिससे ( अहं ) मैं ( सपत्न-क्षयणः ) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला, ( वृषा ) बलवान और ( विधासिः ) विजयी होकर ( अभिराष्ट्रः ) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रकी सहायता प्राप्त करके ( एषां वीरानां ) इन वीरोंका (जनस्य च ) और सब लोगोंमें ( वि राजानि ) विशेष प्रकारसे रंजन करने वाला राजा होऊँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राष्ट्रके ज्ञानी पुरुषो ! जिस राजाबिह रूपी मणिमें धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था, उसी विजयी मणिसे हमें राष्ट्रके हितके लिये बढाये ॥ १ ॥ जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनको परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे बुरा व्यवहार करते हैं और जो हमपर सेना भेजकर चढाई करते हैं उनको ठीक करनेके लिये अपनी तैयारी करके भागे बचो ॥२॥ सूर्य चन्द्र आदि देव तथा सब भूतमान तुझे सहायता देकर बढा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है। ॥ ३ ॥ शत्रुको घेरनेवाला, बैराका परामभ करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राजाबिह रूपी मणि है। इसलिये प्रतिपक्षियोंका परामभ करनेके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुत्सपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊँ ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर, विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन करूँगा ॥ ६ ॥

### अनुसन्धान

यह सूक्त राज प्रकरणका है इसलिये इसी काँठके अपराजित गणके सभ सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है। तथा भागे आनेवाले राज प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है। इससे पूर्व अपराजित गणके सूक्त २. १९, २०, २१ ये आये हैं, इसका आतिरिक्त अमय गण, साम्प्रामिक गणके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये।

### अभीवर्त मणि ।

जिस प्रकार राजाके चिन्ह राजदंष्ट, छत्र, चामर आदि होते हैं उन्हीं प्रकारका 'अभीवर्त मणि' भी एक राजचिन्ह है। इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है।

देवोंका राजा इन्द्र है, उसका पुरोहित वृद्धरति ब्रह्मणस्पति है। यह पुरोहित इन्द्रके शरीरपर यह अभीवर्त मणि बांधता है। अर्थात् राज पुरोहित ही राजाके शरीरपर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देते। यहाँ संबंध देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संकट रूप है। यह संवाद इस प्रकार है। दोसिये—

### इस सूक्तका संवाद ।

राजा=हे पुरोहित जी ! जो अभीवर्त मणि इन्द्रके शरीरपर देव कुछ वृद्धरतिने बांध दिया था और त्रिशूल इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, वह राजचिन्हरूपी मणि मेरे शरीरपर आग धाल करारिये, जिससे मैं राष्ट्रका बर्धन करनेके समय हो जाऊँ ॥ १ ॥  
पुरोहित= हे राजा ! जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी

हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ बुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सैन्यसे चढाई करते हैं उन्हींको परास्त करनेकी तैयारी करो ॥ २ ॥ सूर्य, चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहें हैं, जिससे तू शत्रुको दबा सकता है ॥ ३ ॥

राजा- पुरोहित जी ! यह राजाबिह रूपी मणि शत्रुको घेरने, बैरीका परामभ करने और प्रतिपक्षियोंको हटानेका सामर्थ्यदेनेवाला है। इसलिये विरोधियोंका परामभ और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समय बनानेके लिये मुत्सपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयको प्राप्त होता है वैसाही मेरेसे शब्दोंका प्रकाश होता है, इसलिये आप ऐसा करें कि जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूँ ॥ ५ ॥ मैं बलवान बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करूँगा और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित करूँगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारसे पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें इस सूक्तका आशय धीप्रतामें आसकेगा। राजा राजबिह धाल करता है, उस समय पुरोहित राजसे प्रशंसितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रशंसा उस समय करता है। पुरोहित ब्राह्मणशक्तिका और राजा यात्र शक्तिका प्रतिनिधि है। राष्ट्रकी ब्राह्मणशक्ति पुरोहित मुखमें राजकृतव्यवस्था उपदेन राजाकी करती है, राजबिह राजाको रक्षना व न रक्षना राष्ट्रकी ब्राह्मणशक्तिके आश्रय रहना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणशक्ति आधीन शासकशक्ति रहनी चाहिये। यह बात महा प्रशंसित होती है। ज्ञानी लोगीर

शरीरकी हुकूमत न रहे, परंतु शर ज्ञानलोगोंके आधीन कार्य करें । राष्ट्रकी ( Civilant military ) भाषा तथा क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा बर्ताव करे, यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है । ब्राह्मणशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर वासकता है अन्य नहीं ।

### राजाके गुण ।

इस सूक्तमें राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दोंद्वारा पाठक देख सकते हैं—

१ अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय=हमारी शक्ति राष्ट्रकी उन्नति के लिये बड़े अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बढती है वह राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ही समर्थकमें लगे, यही भाव राजाके अंदर रहे । अपनी बढी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोगके लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी भलाईके लिये ही है यह जिस राजाका निश्चय होगा वही सजा राधा कहा जासकता है ॥ ( मंत्र १ ॥ )

२ राष्ट्राय मह्यं वष्यतां सपत्नेभ्यः पामुषेय=राष्ट्रकी उन्नति और वैरियोंका पराभव करनेके लिये राजविद्रुहण माणि मेरे ( राजाके ) शरीरपर बोधा जावे । मणि आदि रत्न तथा अन्य राजविद्रुह जो राजा धारण करता है वह अपनी शोभा बढाने के लिये नहीं है, प्रत्युत वे केवल दो ही उद्देश्य के लिये हैं, ( १ ) राष्ट्रकी उन्नति हो, और ( २ ) जनताके घघु दूर धिये जाय । राजाके अंदर यह शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ही उघपर राजविद्रुह चढाये जाते हैं । ( मंत्र ४ )

३ अभिराष्ट्रः-( अभितः राष्ट्रं यस्य ) जिसके चारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो । अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्रके साथ रहे, राष्ट्रका वनकर रहे । राजास्य हित राष्ट्रहित ही हो, और राष्ट्रका हित राजहित हो, अर्थात् दोनोंके हित संबंधमें परक न रहे । राजाके लिये राष्ट्र अनुत्तल रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुत्तल हो । राष्ट्रहितका उच ध्येय अपने सामने रखनेवाले राजास्य बोध इस शब्दसे होता है । जिस राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है । यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है । ( मंत्र ६ )

४ घनुषः-घनुषका नाश करने वाला । ( मं० ५ )

५ अस्तपन्न-अंदरके प्रतिपत्ती या विरोधी जिसको न हो । ( मं० ५ )

६ सत्यवक्ता-प्रतिपत्तीका नाश करनेवाला, अपनी प्रतिपत्तीकीका पराभव करने वाला । ( मंत्र ५ ) "सत्य-सत्यः" ११ ( अ. घ. भा. वं० १ )

यह शब्दभी इसी अर्थमें ( मं० ६ में ) आया है ।

७ वृषा-चलवान् । सन प्रकारके बलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्वधा वह परास्त होगा । ( मं० ६ )

८ विषासहिः-घनुषके हमले होनेपर उनका सदन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला । ( मं० ६ )

९ वीराणां जनस्य च विराजानि-राष्ट्रके शरीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सबको संतुष्ट करनेवाला । ( मं० ६ )

१० प्रतिपत्तियोंको दवाना, वैरियोंका नाश करना, सेनाके साथ चढाई करनेवालेका प्रतिहार करना और जो दुष्ट व्यवहार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य(मंत्र०२) में कहे हैं ।

ये दश कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं वे सबमनन करने योग्य हैं । ये सब कर्तव्य वही मान्यता रहे हैं कि राजाअपने भोगके लिये राजगद्दीपर नहीं आता है, प्रत्युत राष्ट्रका हित करनेके लिये ही आता है । यदि राजालोग इस सूक्त का अधिक मनन करके अपने लिये योग्य बोध लेंगे तो बहुत ही उत्तम होगा ।

### राजविद्रुह ।

छत्र, चामर, राजदण्ड, मणि, रत्न, रत्नमाला, सुगुट, विशेष कपडेलो, राजसभाका ठाठ, हाथी, घोडे आदि सब जो राजविद्रुह रूपमें समझे जाते हैं, इन चिन्होंके धारण करनेसे जनतापर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है और उघ प्रभाव के कारण राजाके इंद गिंद शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है । यद्यपि इस प्रत्येक चिन्हमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजविद्रुह धारण करनेवाले का धारण विषाहमें भी अन्य सामान्य जनोंकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करण है; इसी प्रकार उघ चिन्होंके कारण अमूर्त राज साधनना एक विशेष प्रभाव जनतापर पड़ता है जिस कारण राजा राजिनोंका केन्द्र बनता है । जिस समय अपने चिन्हों और शंभूनों उठाने का श्राव जाता है उस समय उघका बढाना ही प्रभाव सामान्यजनता पर पड़ता है, इसी कारण राजाओं शक्ति इतनी होती है । इस सूक्तके घनुषं मंत्रमें " यह मणि ही घनुषका करने वाला, प्रभाव बढानेवाला, राष्ट्रहित साधन करनेवाला है " इत्यादि कहा है, उघका भाव उघका प्रभाव ही सामान्य लोग के है । विषाहकी शक्ति उघके चिन्हों ही उघमें कार्य है किंतु उघ शक्ति कारगरिक नहीं प्रयुत एक विशेष भावसाध ही उत्पन्न होती है । शंभूने राजविद्रुहों को शक्ति ही उत्पन्न भावनामक है । अष्ट, जब शंभूके स्थान के उघमें—

### शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकारमें शत्रुके लक्षणों का वर्णन किया है—

१ यः दुरत्यति = जो दुष्ट व्यवहार करता है । ( मं० २ )

२ सपरनः = मित्र पक्षना मनुष्य । राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे, उतने पक्षवाले आपसमें सपन होंगे । सपरन शब्द ( Party Politics ) पक्ष भेदका राजकारण बता रहा है ।

३ धरातिः = अनुदार, जो मनमें धेष्टभाव नहीं रखता ।

४ पृतन्यन् = सैन्यसे चढाई करनेवाला ।

इन शब्दोंके विचारसे शत्रुका पता लग सकता है । इनमें कई अंशरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं ।

### सबकी सहायता ।

सुबोध मंत्रमें कहा है कि " सूर्य चंद्र और सब भूतमान जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है । " ( मं० ३ ) इसमें सूर्य चंद्र आदि शब्द काळ साष्टकी सहायता बता रहे हैं, ( Nature's help ) जिसकी सहायता राजाको शक्तिका एक महत्त्वपूर्ण भाग है । राष्ट्रको रचना ही ऐसी हो कि जहाँ शत्रुका प्रवेश सुगमतासे न हो सके । यह एक शक्ति ही है ।

दूसरी शक्ति ( रिधा मूलनि ) सब भूत मानसे प्राप्त होती है । पवनमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुगमतासे ज्ञत हो सकती है । " भूत " शब्दका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ " प्राणी, मनुष्य " ऐसा होता है । जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों, उसका शक्ति विशेष हीमो ही, हममें क्या सदेह है ? यही सब जनताकी श्रम इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि दुर्भार राजाका शिरःपायिष्य अवलम्बित है ॥

वेदिक राजप्रक्रमसे विद्यमाने इस सूक्तमें बड़ा अच्छा उपदेश है । यदि पठक अधिक मनन करेगा तो उनकी राजप्रकरणके बहुत उत्तम निर्देश इन सूक्तमें मिल सकते हैं ।

बने । हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु दीर्घ हो, हमारे इन्द्रिय अधिक कार्य क्षम बनें, हमारा मन मननशक्तिसे युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो, हममें आत्मिक बल बढ़े, तथा हमारी बौद्धिक, सामाजिक तथा अर्थशास्त्र शक्तिया बढ़ें । ये सब शक्तिया इसलिये बढ़ें कि इनके योगसे हमारा राष्ट्र अनुभूदयसे युक्त हो । इन शक्तियोंको शृद्धे इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्तिका ही सुख बढ़े, केवल एक जातिके हितमें अधिकार रहे, या किसी एक कुलके पाद परम अधिकार हो जाय; परन्तु ये शक्तिया इसलिये बढ़ानी चाहिये कि इनके संयोगसे राष्ट्रकी प्रगति हो, राष्ट्रकी उन्नति हो ।

सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथममंत्रका " असान् " शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । इसका अर्थ होता है " हम सबकी " । अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र दितके लिये श्रद्धिगत करो । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एककी ही उन्नति या किसी एककी शक्तिका विकास ही यहाँ अपेक्षित नहीं है, परन्तु सबकी शक्तिका विकास यहाँ अपेक्षित है । राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजाजननोंकी शक्तिका विकास करना है वह हरएक प्रजाजनका, किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए, करना चाहिये । अर्थात् जातिविशिष्ट या संघविशिष्ट पक्षपातके लिये यहाँ कोई ध्यान रहना नहीं चाहिये ।

जो मैं करता हूँ वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो वही भाव हरएकके मनमें रहना चाहिये ।

राष्ट्राय महां चष्यतां ।

सपरन्यन् परामुचे ॥ ( मं० ४ )

" मुझे राष्ट्रके लिये बांध दे ताकि मैं राष्ट्रके शत्रुओंका पराभव कर सकूँ । " यह भाव मनमें धारण करना चाहिये । मैं राष्ट्रके साथ बांधा जाऊँ, मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्रका हित और मेरा हित एक बने, मैं राष्ट्रके लिये ही आबित रहूँ, इत्यादि प्रकारके भाव तथा मंत्रमें हैं । जो आत्मे साथ बांधा जाता है वह उतनीसे साथ रहता है । यदि स्वात्प्रभिमामने मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अच्छी प्रकार कंधर बांधा जाय तो वह बहाते नहीं हटेगा । इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जाय यों। ऐसा परस्पर संबंध जुटनेके कारण राष्ट्रमें अपूर्वसंप शक्ति उत्पन्न हो या न हो वेदको अगीष्ट है ।

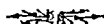
आमत रहे । इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्रका विचार सदा जाग्रत रहता है, उसीको वेद 'अभिराष्ट्र' कहता है (अमितः राष्ट्रं) अपने चारों ओर अपना राष्ट्र है ऐसा माननेवाला हरएक अवस्थामें अपने संमुख अपने राष्ट्रको देखनेवाला जो होता है उसका यह नाम है ।

### 'राष्ट्र' का अर्थ

राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनताका वाचक वेदमें नहीं है । केवल भूमिके एक विभागपर रहनेवाले मनुष्यसमाजका बोध 'राष्ट्र' शब्दसे वेदमें नहीं होता है । इस प्रकारके राष्ट्र भूमिपर बहुत होंगे, परंतु वेद जिसको राष्ट्र कहता है, वैसे राष्ट्र किनने होंगे इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये वेदमें 'राष्ट्र' शब्द ( राजते सत् राष्ट्रं ) जो चमकता है, वह राष्ट्र है' इस अर्थका बोधक है । जो मनुष्योंका समुदाय भूमिके पर अपने कर्माये यत्से चमकता है और सब अन्य लोगोंकी

आंख अपनी ओर खींच सकता है वही वैदिक दृष्टिमें राष्ट्र है । अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं हैं । इस प्रकारके राष्ट्र विस्तारमें छोटा हो या बड़ा हो, वह राष्ट्र ही कहलायेगा । परंतु जो विस्तारसे अति प्रचंड हो, परंतु यत्की दृष्टि जिसमें चमकाहट न हो तो वह राष्ट्र नहीं होगी । वैदिक धर्मियोंको अपने परिमथसे अपने राष्ट्रमें इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिये और बढाना चाहिये, तभी उनके देशका नाम वैदिक रीतिसे राष्ट्र होगा । वेदमें राष्ट्रवर्धन विषयक अनेक सूक्त हैं और उनका परस्पर निकट संबंध भी है । पाठक निश्चय समय इन सूक्तोंका विचार करने लयें उस समय आगे पीछेके राष्ट्रीय सूक्तोंका संबंध अवश्य देखें और सब उपदेशका इच्छा मनन करें ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशोंसे अधिक मनन करके बोध उठावें । वेदमें राष्ट्रवर्धनके उपदेश किम प्रकार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पठक देव पश्यते हैं ।



## आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।

( ३० )

( श्रुतिः— अथर्षा आयुष्यकामः । देवता विश्वे देवाः )

विश्वे देवा वसन्वा रक्षन्ते मृततादित्या जागृत युष्मास्मिन् ।

मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिमेमं प्रापत् पांश्वेषो वधो यः ॥ १ ॥

ये वां देवाः पितरो ये च पुत्राः संचेतमे मे नृणुते दद्रुकन् ।

सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्रस्त्र्येनं जुरेमे वहाथ ॥ २ ॥

ये देवा द्विविष्ट ये पृथिव्यां ये अन्तर्ध्वं ओपंधीषु पनुषुप्सन्तः ।

ते कुणुत जुरसमाधुरस्मे शतमुन्यान्परि वृणक्त माणुन् ॥ ३ ॥

येषां प्रयाजा उत वानुपाजा हुतमांगा अहुतादथ देवाः ।

येषां वाः पक्षं प्रदित्रो विमंक्तास्तान्वां अक्षी संभ्रमदः कुषाभि ॥ ४ ॥

अर्थ— दे ( विश्वे देवाः ) सब देवो । दे ( वपराः ) वपुर्देवो । ( इमं वहाथ ) इगरी । एत को । ( जग ) अंश । दे अदित्याः ) अदित्य देवो । ( वृषं अरिभन्तं अणुत् ) द्रुप इत्ये अणुं रति । ( इमं ) इम पुत्रवो । ( माणुन् ) कामे वंशुः । ( उत वा ) अन्य-मात्रि ) अपरा विदो इगरीका ( वधः मा वारत् ) वपराः ( वपरा व वत को, व वपरा को वपरा ( व व व व व व व व )



जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला घातघात है वह भी ( इमं मा प्रापत् ) इसको प्राप्त न करे ॥ १ ॥ हे( देवाः ) देवो ( ये वः पितर ) जो आपके पिता हैं तथा ( च ये पुत्राः ) जो पुत्र हैं वे सब ( स चेतसः ) सावधान होकर ( मे इदं उक्तं शृणुत ) मेरा यह कथन श्रवण करें ( सर्वेभ्यो वः पृतं परिददामि ) सब आपकी निगरानामें इसको मैं देता हूँ ( एनं जरसे स्वस्ति वहाप ) इसको वृद्ध आयुक्त सुखपूर्वक पढ़ुंवा दो ॥ २ ॥ ( ये देवाः द्विवि स्य ) जो देव युलोकमें हैं, ( ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे ) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं और जो ( ओषधीषु पशुषु अश्वु अन्तः ) औषधिये, पशु और जलोंके अंदर हैं ( ते अस्मै जरसं-वायुः कृणुत ) वे इसके लिये रक्षावस्थावाली दीर्घ आयु करें । यह पुरुष ( शत अन्यान् शृत्यून परिचृणक्तु ) सैंकड़ों अथ अथमृत्युको हटा देवे ॥ ३ ॥ ( येषां ) जिन तुम्हारे अंदर ( भयान्ताः ) विशेष यज्ञ, करनेवाले, ( उत वा अनुयाजाः ) अथवा अनुकूल यज्ञन करनेवाले तथा ( हुत-भागः बहुलादः च देवा ) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, ( येषां वः पत्र प्रदिश्वः निभक्ताः ) जिन आपकी हीं पांच दिशाएँ विभक्त की गईं हैं, ( तान् वः ) उन तुमहो ( अस्मै ) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये ( सत्र-सदः कृणोमि ) सदस्य करता हूँ ॥ ४ ॥

भाष्य—हे सब देवां, हे वसुदेवो ! मनुष्यकी रक्षा करो । हे आदित्य दंडो । तुम मनुष्यमें जाग्रत रहो । मनुष्यका उपाँके बंधुये अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे वध न हो ॥ १ ॥ हे देवा । जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें । मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयुक्त ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव दुर्लोक, अंतरिक्षलोक, भूलोक, औषध, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें। तुम्हारी सहायतासे मनुष्य में उठों अथमृत्युसे बचे ॥ ३ ॥ विशेष यज्ञन करनेवाले, अनुकूल यज्ञन करनेवाले, हवनका भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएँ विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक समाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ यत्नमें सहायता करें ॥ ४ ॥

तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी। इसलिये वध करनेकी शक्ति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करे।

### देवोंके आधीन आयुष्य।

मनुष्यका समाज जितना आदिशाश्रितवाला होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होवकती है। यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके अगिका मार्ग आक्रमण करना चाहिये। अगिका मार्ग यह है कि—“अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं” यह मान मनमें धारण करना। इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वाधाने दी है, उसका आशय यह है—

“हे सब वसुदेवो! मनुष्यकी रक्षा करो। हे सब आदित्यो! मनुष्यमें जागते रहो।” ( मंत्र १ )

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं। पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंकी मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है। ये दोनों बातें हीं आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं। अब इनका संबंध देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आश्रयिता में सूर्यादि सब देव छटा मेरी रक्षा कर रहे हैं। मैं परमात्माका अग्रत पुत्र हूँ इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा। परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वे भी उस परमात्माके पुत्रही रक्षा अवश्य करेंगे ही।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं विभ्रम हूँ यह विचार मनमें दृढ़ करके मनके अंदर जो जो निन्ताके विचार आयेगें उनको हटाना चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी दृढ़ अवस्था बनानी चाहिये कि विभ्रमों पिलाहा विचार ही न उठे और चित्तसहित निर्भय होनेके साथ आनंद शक्तिके साथ मनमें हूँ। दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मा पर तथा अन्याय देवोंकी संरक्षक शक्तितर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्याय दीर्घ आयुष्य प्राप्त होने आवश्यक है।

बड़े पाठक चेका करेंगे कि अन्याय देव हमारी रक्षा क्यों प्रदान कर रहे हैं? इस विषयमें हमने पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है। एकाग्र संश्लेषण यही ही इसका विचार करते हैं। पाठक जानते ही हैं कि प्रथम मंत्रमें ‘वसु’ देवोंका उल्लेख

है, ये सब जगत्के निवासक देव होनेके कारण ही इनको “वसु” कहते हैं। सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे।

सब वसुओंका भी परम वसु परमात्मा है क्योंकि वह जैसा सब जगत् को बसाता है इसी प्रकार जगत्के संरक्षक सब देवोंको भी वशता है। उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, आदि के साथ हमारे क्षणक्षणके आयुष्यका संबंध है, इनमें से एकका भी संबंध हमसे दृष्ट गया तो हमारा नाश होगा। इतना महत्त्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षणमें सदा मनुष्य रहता है ऐसा ऊपरवाले मंत्रमें कहा है। इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निःपक्षपातसे हो रही है। ये देव कभी किसीका पक्षपात नहीं करते हैं। सूर्य सधर एकसा प्रकाशता है, वसु सबके लिये एकसा बह रहा है, जल सबके लिये बाधाशक्ति गिरता है, पृथ्वी सबको समानतया आधार दे रही है, इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निःपक्षपातसा भी वर्ताव कर रहे हैं।

हमारे जीवनके साथ इनका संबंध इतना पनिष्ठ है कि इनके बिना हमारा जीवन ही अशक्य है। घातुके बिना प्राण धारणा कैसी होगी? सूर्यके बिना जीवन ही असंभव होगा, इत्यादि प्रभर पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं।

### हम क्या करते हैं?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षामें रहतेया दल कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्नमें हैं? इनका विचार पच्छोरेके करना चाहिये। देखिये, परमात्माऔर और देवोंकी रक्षणमें हम कैसे बाहर जाते हैं—परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते ये परमात्माकी रक्षणसे बाहर ही जाते हैं। इसीसे परमात्मा सब भी उनकी रक्षा करता ही रहता है यह उनकी ही अंगार दल है, परंतु ये अविद्यावी लोग उनकी अंगार दलसे काम नहीं उठाते। अविद्याके कारण प्रिन्सों दानि है, विभी अन्न कारणसे मदी ही मच्छी। दीर्घ आयुष्यके लिये हमें क्या करना मन्में परमात्माके वध दृढ़ विचार चाहिये।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाशसे सबको जीवनामृत देकर सबकी रक्षा कर ही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी सरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इनके लिये मगवान् सहस्ररत्नो सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ? इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषयमें समझना उचित है। ये देव तो सबकी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उगम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और जहातक होखेके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपन आपको अधिक रखें।

पाठक यहां समझ ही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्रकी किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षासे किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना तुल्यता किस प्रकार कर रहे हैं।

### आदित्य देवोंकी जाग्रती ।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्षक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है—“ हे आदित्य देवो। इस मनुष्यमें जाग्रत रहे। ” मनुष्यके अंदर आदित्यसे ही सब जीवन शक्ति आरही है। यह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है। इन्हीं शक्तिसे सब जगत् चल रहा है। परंतु यहां मनुष्यका ही हमें विचार करना है। मनुष्यमें यह आदित्य शक्ति मालिष्कमें रहती है, नेत्रमें रहती है और पेटमें रहती है। मालिष्कमें मज्जाकेंद्र चलती है, पेटमें पाचक केंद्रको चेतना देती है और नेत्रमें देखनेका व्यापार करता है। इनमेंसे कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जायगा। मालिष्कका मज्जाकेंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है वेगका पाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड़ जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उससे सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं। इतना महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है। इसलिये वेदमें कहा है कि—

सूर्यं भाग्मा जगत्प्रस्तुयत्सु । अथर्ववेद. १ । ११५ । १

“ यह अद्वितीय सूर्य ही रक्षायक जगत्प्रस्तुता भाग्मा है। ” पाठक इस मंत्रका भाष्य प्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति गृह जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें। सूर्यभेदन भ्वाद्याम और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेटके स्थानमें रहनेवाली

आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मालिष्ककी आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा द्राष्टक आदि अन्वेष द्वारा नेत्रकी आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार योगभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बलवृत्त करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। “ समाजमें निभयता, परमेश्वरपर हृदिनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना ” यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका घोडावा स्वीकरण आगेके मंत्रोंमें है, वह अब देखिये—

### देवोंके पिता और पुत्र ।

इन आयुष्यवर्धन सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है, कि “ हे देवो । जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें । मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, प्रम इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ। ” ( मंत्र २ )

इस द्वितीय मंत्रमें “ देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्योंको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं ” ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्ववेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान्विचारयत्यक्ष स या अथ महद्भदेव ॥ १ ॥

प्राणापानौ चक्षुःश्रोत्रमक्षितिश्व क्षितिश्व वा ।

ध्यानोदानौ याहमनस्ते वा आकृतिमावहन् ॥ ४ ॥

कुत इन्द्र कुतः सोमः कुतो भग्निरजायत ।

कुतत्वष्टा समभवत्कुतो घाताऽजायत ॥ ८ ॥

इन्द्रोदिन्द्रः सोमारत्नो भग्नेरभिरजायत ।

त्वष्टा ह जगो त्वष्टुर्घांतुर्घाताऽजायत ॥ ९ ॥

ये स आसन्दा जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।

पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

[ अथर्व ११।८।१० ]

( पुरा ) सबसे प्रथम ( देवेभ्यः दश देवा ) देवोंसे दश देव ( साकं अत्रायन् ) साय साय उत्पन्न हुए । जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा, ( यः अथ महत्त वेदेत् ) वह बड़े मंत्रके विषयमें

बोलेंगा । वही ब्रह्मज्ञान वहेगा ॥ ३ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, ( अक्षितिः ) अविनाशी बुद्धि, और ( क्षितिः ) नाशवान् चित्त, व्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे ( आकृति आवहृत् ) संकल्पको उठाते हैं ॥ ४ ॥ कदांसे इन्द्र, सोम, और अग्नि होगये ? कदांसे त्वष्टा हुआ, और घाताभी कदांसे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धालामे घाता हुआ है ॥ ९ ॥ ( ये पुरा देवैभ्यः दश देवाः ) जो पादिले देवोंसे दश देव हुए हैं, ( पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा ) पुत्रोंको स्थान देकर वे स्वयं ( कस्मिन् लोके आसते ) किस लोकमें बैठे हैं ? ॥ १० ॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र कौनसे हैं इसका वर्णन है । प्राण अथानादि दश देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुत्र रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है—प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, वह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है, और इस वायु-कामी पिता-वायुका भी वायु-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार चक्षुरूपी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव सुलोकमें है, और सूर्यका पिता-सूर्यका भी सूर्य-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार अन्धान्य देवोंके विषयमें जानना योग्य है । यह विषय इससे पूर्व आ चुका है, इसलिये यहाँ अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है ।

सबका सारांश यह है कि पुत्र रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीरमें रहते हैं । इनके पितादेव भू-भुवः स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सर्वादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं ।

हमारी आंख सूर्यके बिना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्माही शरीर महाशक्तिके बिना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है । इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है । इन सबके आधीन मनुष्यका दार्ष्टान्य बनना है ।

इसलिये जो दार्ष्टान्य आयुष्यके इच्छुक हैं, वे शक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे टूट करें । यह परम पिता परमात्मा सूर्य भी सूर्य, वायुका भी वायु, प्राण का भी प्राण, अर्थात् देवोंका भा देव है और वहाँ हम सबका पिता है । इसी शक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ़ हो गई तो मनकी समया विषय रह सकती है और उससे दार्ष्टान्य प्राप्त होती है । इस प्रकार देवोंके निमित्त मनुष्यका संबंध होता है

और यह संबंध अत्यंत लाभकारी है ।

वायु सूर्य आदि देवोंमें हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें वर्णन किया ही है इसलिये उनको दुहरानेका यहाँ आवश्यकता नहीं है ।

प्राण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं । योगादि साधनोंसे इनका बल बढ सकता है । इसलिये इनके च्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर बीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें ।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्यके साथ देवों, देवोंके पितरों और देवोंके पुत्रोंका संबंध है । यह जानकर योग्य-अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें ।

परमपिता परमत्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, रुद्र आदि अनेक देवताओंकी विविध शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओंका सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐश कान्यक्य वर्णन मंत्रमें किश है वह उचितही है । इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उभय और स्पष्ट शब्दोंद्वारा बताया है । पाठक इसका विशेष विचार करें ।

### देवोंके स्थान ।

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान कहे हैं । यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है, कि " सुलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, औपधि, पशु, जल, इन स्थानोंमें देव रहते हैं, वे मनुष्यके लिये दार्ष्टान्य करते हैं और त्रिनक्षी सहायतासे सेवकों अपमृत्यु दूर हो जाते हैं । " ( मंत्र ३ ) यह मंत्र शश विचार करने योग्य है ।

सुलोकमें सर्वादि देव, अंतरिक्षमें वायु, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, औपधियोंमें स्याम्यक ओमदेव पशुओंमें दुग्धादिहृषसे अपृत देव, जलमें वपुण आदि देव निवास करते हैं । ये सब देव मनुष्यकी आयु बढानेके कार्यमें सहायक होते हैं । सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है; इन्द्र और चन्द्र क्रमशः सुप्रति और जाग्रतिके व्यापक और अत्यंत मनेके संबलक देव है, रुद्र स्वयं प्राणोंका बालक है, अग्नि वातांत संबंध रखता है, औपधिवन्यगतिदेव अन्न तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती है, वपुणमें दुग्ध रूपी अपृत मिष्टान्न दे, जल देवसे दीर्घ बनता है, इण प्रभार अन्धान्य देव मनुष्यके सहायक है । परंपुत्र प्रजन दाप

मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरस्कार करना आवश्यक है ।

इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे यथायोग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आयुष्य बढ सकता है । इन देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनाने हैं, जुलोकके देवोंसे सौरचिकित्सा वर्षाचिकित्सा, प्रकाशचिकित्सा-चिकित्सा; अंतरिक्ष स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा अथवा चांद्रचिकित्सा, पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा, खनिजद्रव्योंसे रसचिकित्सा, शस्त्रचिकित्सा, औषधियोंसे तथा वनस्पतियोंसे भैषज्यचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा अर्थात् पशुओंको विविध औषधियां खिलाकर तथा विविध रंगोंकी गोबरोंके दूधका उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादिके उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं ।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीतियोंसे इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना । प्राचीन कालके ऋषिमुनिवृंदोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं । आजकल भी इस दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं । इन देवताओंमें विविध और अनंत शक्तियां हैं, उनकी सामासि नहीं होगी, इसलिये मनुष्योंको विविध रीतियोंसे लाभ करके इन देवताओंसे विशेष लाभ उठानेके लिये यत्न करना चाहिये । इतने प्राचीन कालमें ऋषिभोग यह उद्योग करते थे और लाभ उठाने थे और दीर्घजीवी भी बने थे । यह विलसिला टूट गया है, तथापि आजकल प्रयत्न करनेपर उनी मर्मसे बहुत खोज होना संभव है । जो पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्यापीठ उन्नति करें तथा यज्ञके भागी बनें । अस्तु । इस प्रकार इन देवताओं की शक्ति अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है ।

छापारणसे छापारण प्रयत्नसे भी बड़ा लाभ हो सकता है । प्रेक्षा एवं चित्रण में अपना मंगल शरीर स्थानसे, शायद नर्म शरीर मृदुलेसे, जलमें डालनेसे उत्तम औषधियोंका रस पीनेसे और गोबुध्र आदिके घेयनसे गाधारण परिशुषितमें रहने बाने मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं । फिर जो विविध मंत्र निर्माण द्वारा इन देवता शक्तियोंके अर्थक लाभ उठानेका पुरस्कार करते उनके विषयमें क्या करना है । इस प्रकार ये देवताएं ही समान हैं, इनसे अनेक दूध दारना आदी अन्न उतना दुध सकते हैं । इनमें अमंगल अथवा रथ भरा है । जो अनेकाना पुरस्कार करेगा, उगको उतना अन्न मिलेगा और वह उतना भवत होगा ।

## देवताओंके चार वर्ग ।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंसे अमृतस्य प्राप्त करके अमरत्व प्राप्त करके अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठानका स्वरूप बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गीका वर्णन किया है और इन देवताओंके अथने सहकारी सदस्य बनानेका उपदेश किया है । इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

“ देवोंमें प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग और अहुताद ये चार वर्गके देव हैं । इन देवोंसे ये पाचों दिशाएं विभक्त हुई हैं । ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें । ” ( मंत्र ४ )  
इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके वाचक शब्दोंसे ही व्यक्त होते हैं । ये लक्षण देखिये—

- १ प्रयाजाः-- विशेष यजन करने वाले,
- २ अनुयाजाः-- अनुकूल यजन करने वाले,
- ३ हुतभागः-- हवन का भाग लेने वाले,
- ४ अहुतादः-- हवनका भाग न खानेवाले ।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें— ( १ ) जिनपर इच्छा शक्तिका परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवश्य अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवोंका नाम प्रयाज है, जैसे हृदय आदि अवयव । ( २ ) जो अवयव अपनी इच्छा शक्तिके अनुसार कार्यमें लगाने जा सकते हैं उनको अनुयाज कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, आंखा आदि । ( ३ ) हुतभाग वे इन्द्रिया हैं जो भोग की इच्छुक हैं और कार्य करनेसे मज्जती हैं और विधामसे तथा अक्षरसे मिलनेसे पुष्ट होती हैं । ( ४ ) शरीरमें अहुताद केवल ग्यारह प्राण ही हैं, क्योंकि ये प्राण शरीरमें सदा कार्य करते हैं और स्वयं कुछभी भोग नहीं लेते, जन्मसे लेकर मरनेतक वाराण्य कार्य करते हैं ।

इस प्राणका वर्णन तथा अन्य इन्द्रियोंके वर्णन इसी प्रकार उपनिषद्में किया है । प्राणाग्निदेव उपनिषद्में शरीर यज्ञके प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शरीरयज्ञस्य...के प्रयाजाः केतुयाजाः ॥  
महामृतानि प्रयाजाः ॥  
मृत्यायुतुयाजाः ॥ प्राणाग्निदेव ॥ १—४

शरीरमें बसे हुए यज्ञके प्रयाज और अनुयाज कीन हैं । महाभूत प्रयाज और भूत अनुयाज हैं । इसीप्रकार हुतभाग और अहुताद विषयक वर्णन उपनिषद्में तथा माण्डूकीयब्रह्मसूत्रके अत्रिगण तापयं ऊपर दिया ही है ।

इही भाष्यपर दक्षका महता भाष्यद्वयं किदा प्राण ॥

सद्यज्ञा वर्णन यहाँ करनेकी आवश्यकता नहीं है । अनुयायियों से प्रयात्र अधिक महत्त्व के हैं तथा हृदयभागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं । जो शरीरशास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिही निर्गंत्रणासे चलनेवाले हृदयपादादि अवयवोंकी अपेक्षा अग्निच्छासे कार्य करनेवाले हृदयादि अंतरवयव अधिक महत्त्व के हैं । तथा अहुताद अर्थात् धुल भी भोग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अविध्वान्त कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक श्रेष्ठ हैं और भेद्र, कर्ण आदि अवयव जो धमसे घटते हैं, विध्वान्त करते हैं और भोग भी भोगते हैं ये उनके गौण हैं ।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राणिका अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इन्द्रियशक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अग्नियों को भी बलवान् करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवोंकी क्षीणता न होने दे । उदाहरण के लिये पदलवानोके ध्यायाम ही लीजिये । पदलवान लोग अपने शरीरके सुट्टीको बलवान् बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवोंका ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका स्थूल शरीर बड़ा बलवाली होता है, परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं । इसका परिणाम अरुणायुमें उनकी मृत्यु हो जाती है ।

यदि ये लोग साथ हृदयको भी बलवान् बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा । इसलिये यहाँ कइना यह है कि अपने अंदर

जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न बढे इसका विशेष विचार करना चाहिये । इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है । श्वासस्थान, मज्जासंस्थान और हृदयसंस्थान आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानोंका बल बढाना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहनेयोग्य शक्तिकाली बनने चाहिये ।

यंत्रका प्रयात्र शब्द मुख्यका भाग और अनुयात्र शब्द गौणका भाव बताता है । ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संग्रह स्थानको विभक्त किया है । ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले घातसांवासरिक सनके भागो बनें, अर्थात् ये इस सौ वर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग चत्तम रीतिसे पूर्ण करनेमें समर्थ हों, अपना यज्ञका भाग चत्तम रीतिसे पूर्ण करें और निर्धिक्तासे यह घातसांवासरिक यज्ञ अन्तर्नेमें हमारे सहकारी बनें ।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं । यदि पाठक इस देवोंसे अनुष्ठान करेगा तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है । यह "आनुप्य-गण" का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार करे ।

## आशा-पालक-सूक्त ।

(३१)

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— आशापालाः; वास्तोष्पतिः )

आशांनामाशापालस्त्वर्ष्यो अमूर्तेभ्यः । हुद भूतस्वाप्यर्ष्येभ्यो विधेम हविषा वृषम् ॥ १ ॥

य आशांनामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः । ते नो निष्क्रियाः पाशैर्भ्यो मूश्चतां हो-अंहमः ॥ २ ॥

अस्मांस्त्वा हविषा यज्ञाम्पश्यांस्त्वा घृतेन शुहोमि ।

य आशांनामाशापालस्तु गीर्वा देवः म नः समूतमेह यंश्च ॥ ३ ॥

स्वस्ति माय उत पिपे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जग्ने प्रहेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुधिदयं नो अस्तु ज्योग्रेव र्दशेभ्यं ॥ ४ ॥

अर्षं— ( भूतस्य अध्यक्षेभ्यः ) जगत्के अध्यक्ष ( अमृतेभ्यः ) अमर ( आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः ) दिशाओंके चार दिशापालकोंके लिये ( वयं ) हम सब ( हविषा इदं विधेम ) हविर्द्वयसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे ( देवाः ) देवो ! ( ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्यन् ) ओ तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो ( ते नः ) वे तुम हम सबको ( निर्ऋत्याः पाप्मेभ्यः ) अवनतिके पाशोंसे तथा ( अंहसः अंहसः ) हरएक पापसे ( सुघर्तां ) छुडाओ ॥ २ ॥ ( अ-स्रामः ) न थका हुआ मैं ( हविषा स्वायजामि ) हविर्द्वयसे तेरा यजन करता हूँ । ( अ-श्लोणः स्वा घृतेन जुहोमि ) लंगड़ा न होता हुआ सुघर्तो पीछे अर्पण करता हूँ । यह ( आशानां आशापालः तुरियः देवः ) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है ( सः नः सुभूतं इह धावदन् ) यह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुंचावे ॥ ३ ॥ ( नः मात्रे ऽत पित्रे स्वस्ति अस्तु ) हम सबकी माताके लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा ( गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति ) गाँवोंके लिये, चलने फिरनेवालोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । ( नः मित्रं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु ) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम ( सूर्यं ज्योक् पृ० दशेम ) सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायु हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस बने हुए जगत्के अध्यक्ष हैं । उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ ३ ॥ मैं न थकता हुआ उनका या मर करता हूँ, लंगड़ा लला न बनकर मैं उनको धी देता हूँ, जो इन चार दिक्पालोंके चतुर्थ देव है यह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्थातक पहुंचावे ॥ ५ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अग्य इष्टामित्र, हमारे गाय घोड़े आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों । हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढ़े तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

इस द्वार से जानेसे उत्तर अवस्था प्राप्त होती है ।

यह द्वार मन्वा केन्द्रके साथ संबंधित है । इसी मन्वा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिख है जिससे मार्गका पात होता है । इसके योग्य नियम पालनसे सुयोग्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलानेसे मनुष्यकी अयोग्य गति होती है । ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं । अर्थात् पालनद्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनिषदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गसे सूचित करता है, इसीका नाम "उत्तरायण ( उत्तर+अयन ) अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है । इसके विरुद्ध "दक्षिणायन" अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थधर्मपालनपूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता । ये दो मार्ग मन्वातंत्रुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं ।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ये शरीरमें अवनलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार ये दो मार्ग मन्वातंत्रुओंके साथ संबंध रखते हैं । ये चार द्वारोंके चार संरक्षक देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमलेके अंदर दबने नहीं चाहिये ।

## आशा और दिशा ।

इस सूक्तमें दिशावाचक "आशा" शब्द है और, उसके पालकका नाम "आशापाल" मंत्रोंमें आया है । "आशा" शब्दके दो अर्थ हैं । एक "दिशा" और दूसरा "आशा, महत्त्वाकांक्षा, उन्मीद" । मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा और उन्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती है । मनुष्य जिस समय आशाहीन हो जाता है, निराश होता है, हवास होता है, उस समय वह इस जगत्से

हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है । यह विचार यदि पाठकोंके मनमें जम जायगा, तो उनके पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखता है ।

जिस समय "आशा" शब्दका अर्थ "आशा, आकांक्षा," आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयका मार्ग बताता है । तथा जिस समय इसी "आशा" शब्दका अर्थ "दिशा" किया जाता है, उस समय यही सूक्त वायु जगत् तथा राष्ट्रके प्रबंधका माव बताता है । सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को वेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वरूप बता रही है ।

## सूक्तका मनुष्यवाचक भावार्थ ।

मनुष्यकी चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं । इन भूतार्थियोंकी हम हृदयसे पूजा करते हैं ॥१॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थाले मी बचावें ॥२॥ मैं न शकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हविसे तथा धृतसे इनको वृत्त करता हूँ इन चार आशाओंके पालकोंमें से चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायक होवे ॥३॥ इनकी सहायतासे हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों । हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दोगंधु बनें ।

केवल एक "आशा" शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानेसे व्यक्तिविययक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहाँ देखें । यह उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐंद्रिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है । इस सूक्तपर बहुत शिक्षा जा सकता है, परंतु यहाँ संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे ।

## मनुष्यमें

# चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस मातका वर्णन इससे पूर्व किया ही है । इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएँ मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं । जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा परके मालिक की होती है, उसी प्रकार इस शरीररूपों परके स्वामी आत्मदेवकी आशाएँ इस परके द्वारोंसे जगत्में प्रगम करके

वहाँके कार्यक्षेत्रमें प्रवेश करनेकी होती है । वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इसमें नौ द्वार हैं, ऐसा अग्नयन कर्त्त स्थानोंमें कहा है । देखिये—

अष्टाशका नवद्वारा देवानां प्रोपयोप्या ।

उत्स्यं शिरस्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽनुतः ॥

( अथर्ववेद १०।१।११ )



“आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है।”

इस अथर्व श्रुतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक, दो आंख दो कान, एक मुख, गुदा और छिन्न ये नौ द्वार यहाँ कहे हैं। इनमें से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, छिन्न दक्षिण द्वार इन तीनोंका संबंध इस धपने प्रचलित सूक्तके मंत्रमें है। जो चतुर्ध्वज द्वार है वह आठ

चक्रवाले पृष्ठवंशके ऊपर मस्तिष्कसे भी ऊपर के भागमें विहृति नाममें प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

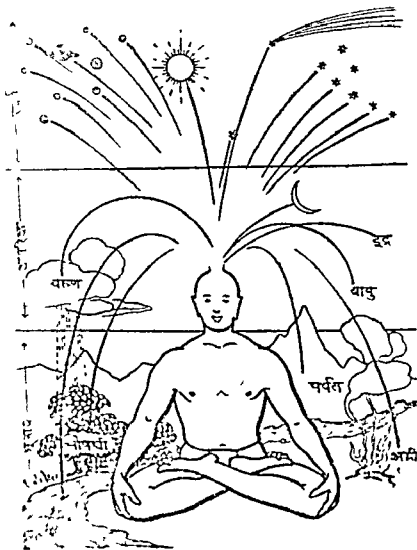
मूर्धानमस्य संसीष्यायर्वा हृदयं च यत्।

मस्तिष्काधूर्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि द्वापितः ॥

( अथर्व० १० २।२६ )

“मस्तक और हृदय को सीकर अर्थात् एक केन्द्रमें लीन करके मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फेंका जाता है।”

## विहृति-द्वारसे प्रवेश ।



विद्यति द्वारसे तैवीस देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश।  
 बंदर जानेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राणसाधन  
 द्वारा अपनी हृच्छासे इसी द्वारसे घाप्त जानेपर मुक्ति।  
 साधारण जन देहत्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे  
 बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगी ही अथर्ववेदके कहे मार्गसे  
 मास्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।

इस मंत्रमें "मस्तिष्कात् ऊर्ध्वः । अपि शीर्षत ।" आदि  
 शब्दों द्वारा मस्तकके ऊपर के उत्तर द्वारका वर्णन किया है।  
 अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें  
 निश्चित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है।  
 नौ द्वारोंमेंसे तीन और इस मन्त्रा स्थानका एक मिलकर चार  
 द्वार हैं और उनको चार आशाएं अथवा दिशाएं हैं। अब ये  
 आशाएं देखिये—

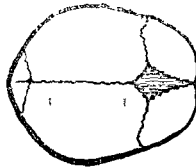
**द्वार**

**आशा**

- १ पश्चिमद्वार = गुदा = की आशा विसर्जन करना।  
 शरीरधर्म।
- २ पूर्वद्वार = मुख = " " " मधुर भोजन करना।  
 अर्थप्राप्ति।
- ३ दक्षिणद्वार = शिख = " " " मोगका उपभोग  
 करना। काम।
- ४ उत्तरद्वार = विद्यति = " " " बंधनसे मुक्त होना।  
 मोक्ष।

**आरोग्यका आधार**

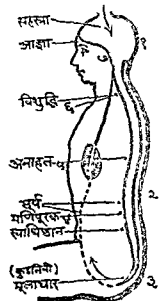
इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल "शरीरधर्म"  
 पालन करने की ही है तथापि इस शौच धर्मसे अर्थात् पवित्र  
 बनने के कर्मसे शरीर शुद्धि होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी  
 प्राप्ति होती है। सब अन्य भोग इसके आधयसे हैं यह बात  
 हरएक जान सकते हैं। इस द्वारका कार्य विगड़ जानेसे शरीर  
 रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएं पूर्ण होने को असमर्थ-  
 ता होती है। इसके उचित प्रकार कार्य करनेपर अन्य आशाएं  
 सफल होनेकी संभावना है। इसलिये हम कह सकते हैं, कि  
 इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्यके मनमें "आरोग्यकी प्राप्ति"  
 रूपसे रहती है। इस आशाका कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है, मनुष्य  
 इस विषयमें अतिना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा  
 और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वारके  
 व्यवहार ठीक न चले तो उसके रोगी होनेमें कोई संकाही नहीं  
 है।



मस्तकमें  
विद्यतिद्वार



**विद्यतिद्वार**



सहस्रार चक्र  
 पृष्ठवंशमें चक्रोंके स्थान।

**पृष्ठवंश**

### खानपान ।

अब पूर्वद्वारकी आशा देखिये । संक्षेपसे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वारसे मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है । मधुरताका प्रेम करते करते मनुष्य इतना अधिक खाता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है । इसलिये इस विषयमें प्रयत्नपूर्वक संयम रखना चाहिये । दबिका गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसकी आधु कष्टप्रद ही होती है । हरएक इन्द्रियके विषयमें यही बात है । इस प्रकार इंद्रिय भोगके लिये धनकी आवश्यकता है इन हेतु इस द्वारकी आशा "अर्थको प्राप्ति" ही है । यह आशा अल्पधिक बढ़नेसे कष्ट होंगे और संयम द्वारा अत्यावश्यकताके अनुसार भोग लेनेसे सुख बड़ेगा, उन्नति होगी । सुखद्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है । उत्तम शब्द-प्रयोगसे जगत्में यानि फैलती है और उग्रशब्दके प्रयोगसे अज्ञानि फैलती है । इस विषयमें भी जिह्वापर संयम रहना आवश्यक है । अन्वया अनर्थ होनेमें कोई देर नहीं खेगी । इस प्रकार इस द्वितीय द्वारकी आशाका संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है ।

### कामोपमोग ।

हीरा दक्षिण द्वार है । इस चिह्नद्वारा जगत्में उत्तम प्रयत्न अर्थात् गुणब्राह्मण करना आवश्यक है । परंतु जगत् में इसके अर्थवशसे जो अनर्थ हो रहे हैं, वे दृष्टीसे छिपी नहीं है । इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है । कर्षणता होना ही वैदिक धर्मका साध्य है । इसके विचारसे इन द्वारकी आशाग्र पता लग जायगा । यह केंद्र अत्यंत महत्त्वका है, परंतु जनता का श्रद्ध इमेके चारोंपे बिगाड़ करनेकी ओर अधिक है और गुणाके मानमें प्रयत्न अति कम है ।

### बंधनका नाश ।

बननेके लिये ही ये सब धर्ममार्ग हैं । जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवार्त्मा वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता । हरएक बंधन की दूर करनेकी इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएं हैं और हरएक मनुष्य इन आशाओंके कार्यक्षेत्रमें सुरा या मला कार्य करता है और गिरता है या घटता है । इन आशाओंके कार्यक्षेत्रकी कल्पना पाठकोंकी ठीक प्रकार होगी, तो इस सूक्तके अर्थोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी । इसलिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक बारबार मननद्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्पश्चात् विमललिखित स्वहो-करण पढ़ें—

### अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कथनमें तीन बातें कही हैं—“(१) चार आशाओंके चार अमर आशा पालक हैं । (२) वेही चार भूताध्यक्ष हैं । (३) उनकी पूजा हम इनसे करते हैं ।”

मनुष्यमें चार आशाएं बौद्धा हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थानका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व स्थलमें बताया ही है । चार आशाएं मनुष्यके अंदर घनातन हैं, (१) शरीरधर्मका स्वार्थ करना, (२) भोग प्राप्त करना, (३) कामका भोग करना और (४) बंधनसे निवृत्त होना, ये चार भावनाएं अथवा कामनाएं मनुष्यमें सदा जागती हैं, पूर्वमें तथा पात्रुमें ये समानतासे रहती हैं । पशुपक्षियोंमें भी अल्पांशसे ये रहती हैं अर्थात् भूतमात्रमें ये घटा रहती हैं, इसलिये इनका घनातन आधार प्राणीभावपर है, मानो ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं । इनको अल्पत्वं इच्छति क्या कि है इनकी श्रेणामें ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आशाएं प्राणियोंके अंदर न रहतीं तो उनकी स्वच्छ भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आपीनतामें

पूजा से लोग अपना ही पात कर रहे हैं। इतनी बात मत्स्य है कि उत्तरद्वार जिसका नाम विदति है उसके पूजाक अर्थात् अर्घ्य हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोड़े ही जानते हैं। पश्चिमद्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध "अपानायाम" से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वारा करनेका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वारसे अपानायाम किया जाता है। इसकी क्रिया भी थोड़े लोग जानते हैं। यह क्रिया योगशास्त्रमें प्रतिष्ठ है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तरद्वार विदतिके उपासक स्वाम योगी होते हैं वे इस स्थानकी बालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी हवनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार— ( मुख )- अक्षपानादिके हवनसे पूजा

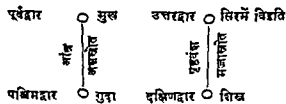
२ दक्षिणद्वार- ( शिल्प )- भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा ।

६ पश्चिमद्वार -- ( गुदा )-- अपानायाम--अपानका प्राणमें हवन करके पूजा । इसका उल्लेख भगवद्गीतामें भी है -- अपाने जुह्वति प्राण प्राणोऽपानं तथा परे । ( सं० गी० ४।२९ )

४ उत्तरद्वार-- ( विदति )-- मस्तिष्कके मज्जाकेन्द्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा ।

यहां पाठक जान गये होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं। परंतु बीजरूपसे हैं। प्रथम मंत्रमें " हम चारों अमर आशापालोंकी हवनद्वारा पूजा करेंगे" ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इसलिये कि हर एक मनुष्य चारोंकी उपासनाद्वारा अपना उद्धार करे ।

यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। यह नियमन इस प्रकार है—



पूर्व तथा पश्चिमद्वार से हमारे आंतोंके विषद्वाराके मुख है। मुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगड़ता है, और

गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी कृत्ति ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क और शिल्प ये परस्परका नियमन करते हैं। यदि शिल्पदेवने आंतरेक किया तो मस्तिष्क इलज होता है, और मनुष्य बुद्धि-का कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निरभ्या होता है। तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुविचार शिल्पदेवका संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं। पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकोपसे किस प्रकार बचना चाहिये। अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे—

### पापमोचन ।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है— "चार आशाओंके चार आशापालक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिके पाशसे बचावें ।"

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं। देखिये—

१ पूर्वद्वार—मुख—जिज्ञासु गुलामोंसे खानपानमें आतिरेक होकर, पेटका बिगाड और स्वास्थ्यका नाश। इसी जिज्ञासे संयमसे आरोग्यप्राप्ति ।

२ पश्चिमद्वार—गुदा—पूर्वोक्त संयम और असंयमसे ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

३ दक्षिणद्वार—शिल्प—ब्रह्मवर्षद्वारा संयमसे उन्नति, संयमपूर्वक शूद्रस्थवर्षमें पालनसे सुप्रजाप्राप्ति और असंयमसे क्षय ।

४ उत्तरद्वार—विदति—पूर्वोक्त संयम और असंयमसे इसके लाभ और हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुड़ा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है। पापसे छुड़ानेसे ही निर्मतिके पाप-से मनुष्य छूट जाता है। निर्मतिके अर्थ नाश है। पाप करने-वालेको निर्मतिके अर्थात् विनाशके पाश बांध देते हैं। और पुण्यवानोंको उनसे कोई कष्ट नहीं होता। इस मंत्रका यह कथन बड़ा बोधप्रद है कि ये चारद्वारकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुड़ा सकती हैं और बंधनसे भी मुक्त कर सकती हैं। पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आभयपरीक्षाद्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके लक्षणोंमें क्या दोष रहा है। यदि

कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या शत्रुके खापीन हुआ हो, तो मावधानसे अपने बचावका यत्न करें। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

### चतुर्थ देव ।

तृतीय मंत्रका आशय यह है—“मैं न यकता हुआ और अंगोभि दुर्वच न होता हुआ हवनसे तथा धांसि इनकी तृप्ति करवा हूँ। इन चार आशापालकों जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हमें सुखसे यहाँ आनंद स्थानमें पहुंचावे।”

इस मंत्रमें कहा हुआ “तुरीयः देवः” अर्थात् चतुर्थ देव विरतिद्वाराका रक्षक मोक्षकी आशाका पालक है। इसी देवकी कृपासे अन्य सब द्वागीछा नियमन हो सकता है। इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य-व्यवहारका नियमन होना चाहिये। वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य-व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं। मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत्के सब व्यवहार होने चाहिये। इसीका नाम धर्म है। बंधनसे मुक्त होना मुख्य साध्य है, उसके सहायकारी यत्र अन्य व्यवहार होने चाहिये। अम्यया जगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्मको कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें लोभहृदि होनेके कारण बड़ा अनर्थ होगा। त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवनका भेद यहाँ स्पष्ट होता है।

मंत्रमें कहा है कि न यकता हुआ और अवयवोसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूंगा। इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ़ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उरसाह मनमें स्थिर करे।

इन चार देवोंकी अज्ञादिये तथा धी आदिये तृप्ति करनी चाहिये। त्रिवेदा जो हवन दे लोके अनुदूल उपद्रव धी भी है। पर जैसा त्रिवेदा देना है वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये। इस विषयमें धृष्टवट करना योग्य नहीं। न यद्यत्ते हुए और न शीत होते हुए ये भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये। अर्थात् ऋषी दक्षतामे ज्ञान्का व्यवहार करना कथित है। परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा गंगादान करनेका अनुसंधान रखना चाहिये। क्योंकि उसीकी कृपासे अन्न, उष्ण, यद्य आदि की यहाँ प्राप्ति होती है और मन्त्रो भी मिल सकती है।

चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सम्मुख आता है—“इन आशापालकों सहायनासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयसके भागी बनें और दीर्घायु बनें।” इस मंत्रमें चार बातें कहीं हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुखपूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदयका सूचक विधान है।

३ सुविद्वं = (सु+ विद्+ वं) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्मज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयसका हेतु है। वह हमें प्राप्त हो।

४ ज्योक् = दीर्घकाल जीवन हो। यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेदमंत्रोंमें वारंवार “ज्योक् च सूर्यं दशमे” अर्थात् “दीर्घकालक सूर्यको हम देखते रहें।” यह एक सुहावण है, इच्छा तार्थ्य “हमारी आयु अनिर्दीर्घ हो” यह है। परंतु यहाँ ध्यानमें विरोधता धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहाँ जहाँ दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश वेदमें आया है वहाँ वहाँ सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इसलिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्यवर्धनका संबंध है यह बात न भूलें। ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है—

यो ये तां ब्रह्मणो वेदागृह्णेनावृतां पुरम् ।

तस्मि ब्रह्म च ब्राह्मण्य चतुः प्राणं प्रजां दनुः ॥ १९ ॥

न वे तं चतुर्जंहाति न प्राणो अरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरय उच्यते ॥ २० ॥

( अथर्व ११२ )

“जो निश्चयसे ब्रह्मकी अग्रतसे परिपूर्ण नगरीको जानना है उसकी स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके छापी अन्य देव चतुः, प्राण और प्रजा देने दें ॥ १९ ॥ अति बृहदावस्थासे पूर्ण-उग्रता। प्राण और चतुः छोड़ते नहीं तो ब्रह्मपुरीको जानना है और त्रिवेद पुरमें रहनेके कारण इसको पुरय कहती है ॥ २० ॥”

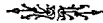
इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इस परलोकमें यशस्वी होता है ।  
यही इस सूक्तका उपदेश है ।

### विशेष दृष्टि ।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है । बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए " आशा" शब्द का प्रयोग इसमें इर्षालिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंको अपने अंदर अतुल्य करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिये अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे

इस सूक्तका यह श्लोकांश बड़ा ही महत्वपूर्ण है । और जो इस सूक्तको केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्वपूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं । पाठक इस दृष्टिसे इसका अभ्यनयन करें

इस सूक्तका संबंध आधुन्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणोंसे विषयकी अनुकूलतासे है । यह सूक्त स्वयं वास्तोष्वात् गण अथवा वसु गण का है । इसलिये "यहकिं निवास" के साथ इसका अर्पण संबंध है । इस प्रकारकी दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें ढालकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं ।



## जीवन-रसका महासागर ।

( ३२ )

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता—द्यावापृथिवी )

इदं जनासो विदथं महद्ब्रह्मं वदिव्यति । न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥  
अन्तरिक्ष आसां स्थाम् भ्रान्तसदांमिव । आस्थानंमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेषो न वा ॥ २ ॥  
यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् । आद्रं तदद्य संवृदा समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥  
विश्वमन्यामंभीवारं तदन्यस्यामर्षिश्चितम् । दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चांकरुं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे ( जनासः ) लोगो ! ( इदं विदथं ) यह ज्ञान प्राप्त करो । वही ज्ञानी ( महद् ब्रह्मं वदिव्यति ) यद्ये ब्रह्मके विषयमें कहेगा । ( येन वीरुधः प्राणन्ति ) जिससे औषधियां आदि प्राण प्राप्त करती हैं, ( तत् पृथिव्यां न, नो दिवि ) यह पृथ्वीमें नहीं और नहीं गुलोक में है ॥ १ ॥ ( आसां अन्तरिक्षे स्थाम् ) इन औषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है, ( आन्तसदां इव ) यक कर बैठेहुओंके समान ( अस्य भूतस्य आस्थानं ) इस बने हुएका स्थान जो है ( तत् पृथिव्यः विदुः या न ) यह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ ( यत् रेजमाने रोदसी ) जो हिलनेवाले द्यावापृथिवीं और ( भूमि. च ) केवल भूमिने भी ( निरतक्षतं ) बनाया ( तत् अद्य सर्वदा आद्रं ) वह आजतक सदासर्वदा रसमय है ( समुद्रस्य स्रोत्याः इव ) जैसे समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ ( विश्वं ) सब ने ( अन्यां अभीवारं ) दुसरोंको धरनिया है, ( तत् ) वह ( अन्यस्यां अभीहितम् ) दुसरोंमें आभित हुआ है । ( दिवे च ) गुलोक और ( विश्ववेदसे च पृथिव्यै ) सर्वान् धनोति गुण पृथिवीके लिये ( नमः अंकरं ) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे लोगो ! यह समझो कि जो तत्वज्ञान समझेगा वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा । तत्वज्ञान यह है कि—जिसमें बनेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं वह जीवनका सत्व पृथ्वीपर नहीं है और नहीं गुलोक में है ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है । जैसे धरमादे विप्राय करते हैं उग्रप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं । यह बने हुए जगत्का जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ दिनेन जुम्नेजाने

युलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो कुछ बनाया गया है, वह सब इस समयतक बिलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरमें चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्तिके ऊपर रहा है और वह भी दूसरी के ही आश्रयसे रहा है। युलोक और सब घनोंसे युक्त पृथ्वी देवोंको मैं नमन करता हूँ ( क्योंकि ये दो देवताएँ इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं। ) ॥ ४ ॥

## स्थूल सृष्टि ।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी पत्थर आदि अतिरथूल पदार्थ, पृथ्वीवन्स्पत्यादि बढनेवाले पदार्थ, पद्मपक्षी आदि बढने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढने हिलने और उन्नत होनेवाले उच्च कोटीके प्राणी हैं। पत्थर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोड़ा जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उन्नत होते हैं, बढते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इधमें दिखाई देनेवाला जीवनतत्त्व कौनसा तत्व है ? क्या यह स्थूल ही है या इससे भिन्न और कोई तत्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है।

सब लोग इस जीवन रक्षका ज्ञान प्राप्त करें। यदि उनको जीवनसे आनन्द प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस ( जनास. । विदथ ) ज्ञानको प्राप्त करें। यह मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके आरंभमें ही दी है। ( मंत्र १ )

यह जीवन रक्षकी विद्या कौन देगा ? किससे यह प्राप्त होगी ? यह शका यहाँ आती है, इस विषयमें प्रथम मंत्रने ही आशं जाकर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, पदी ( महत् ब्रह्म यदिष्यति ) वडे ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानके विषयमें कहेगा। जिसको इस विद्याकी प्राप्ति परेनरी इच्छा हो, वह ऐसे विद्वानके पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे। किसी अन्यके पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

आगे के मंत्रोंमें आज्ञायाग।

## भूतमात्रका आश्रय ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—“ इस सृष्टिगत संपूर्ण पराशंका आश्रयस्थान अंतरिक्ष है। इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भा जानते हैं वा नहीं ?” अर्थात् इनका ज्ञान सब ज्ञानियोंको भी एकसा है वा नहीं। ज्ञानियोंमें भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं। सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आत्मविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं। ( मंत्र २ )

इस द्वितीय मंत्रमें “ भूत ” शब्द है, इसका अर्थ “बना हुआ पदार्थ।” जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है। इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक सूक्ष्मतत्त्व है जिसका ज्ञान अर्थात्मविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं। इसलिये जीवनरक्ष विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे महद्गुरुके पास जावें, कि जो इस ज्ञाता ही और उसके पासते वह जीवनकी विद्या प्राप्त करें। यह ही ज्ञानी ( महत् ब्रह्म यदिष्यति ) बडे ब्रह्मका ज्ञान कहेगा। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है।

## सनातन जीवन ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि—“जो इस यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र के वह सदा सर्वदा, जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इधमें जीवन रस ऐसा भरा है अंग सरोवरसे चलनेवाले विविध स्रोतोंमें सरोवरका जल भरता है।”

विषय नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्की मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है ।

## जीवनका एक महासागर ।

वेदमें यावा पृथिवी — शुष्क और पृथ्वीलीय — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि संपूर्ण जगत् इन्हींके अंदर समाया है । यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् घटता और बिगड़ता भी है तथापि बने हुए संपूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहता है वह एक रूपसे व्यापता है, इसलिये संपूर्ण जगत्के निश्चय अटल और एक जैसे हैं । हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है । इसीसे जीवनामृतकी अगाध सत्ता की कल्पना हो सकती है ।

जिस प्रकार एक ही सागरसे अनेक स्रोत चलते हैं तो उनमें एक ही जीवन रस सबमें एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अनंत पदार्थोंमें एक ही अगाध जीवनके महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो संपूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतसे धोतप्रोत भरपूर हो रहे हैं ।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें धोतप्रोत भानेवाले एक षडेके छामान घमसों और अपने अंदर वही जीवन स्रोत चल रहा है इसका ध्यान करे । जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारोंओर जलका अनुभव करता है उसीप्रकार मनुष्य भी उसी जीवन महासागरमें तैरनेवाला एक प्राणी है, इसलिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पथी कल्पना हो सकती है । यह जीवन सदा ही नवीन है, कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगड़ता नहीं। अन्य पदार्थ बनने और बिगड़ने पर भी यह एरूसा नवीन रहता है । और यही सबको जीवन देता है । ( तत् त्वय्य सर्वदा आर्द्रं ) यह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिन्न रसपूर्ण रहता है । सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमान भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है ।

## सबका एक आश्रय ।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि—“संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रहती है । वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और बुलोकके स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इसलिये मैं बुलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूँ ।” अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूपमें प्रकट हो गई है ऐसा जानकर, जगत्को देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूँ ।

## स्थूल सूक्ष्म और कारण ।

इस मंत्रमें विश्व “शब्द” स्थूल जगत्का बोधक है इस स्थूलका आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है । प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तसिसे आतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है । यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मान आधार है और इसीका जीवन अमृत सबमें एक रस होकर व्याप रहा है । इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा संपूर्ण पदार्थ रूपी छोटे बड़े छोट उसी एक आद्वितीय जीवनामहासागर से चल रहे हैं । इनमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह धताना इस सूक्ष्मता उद्देश्य है । अनेकों में एक ही जीवन भरता है इसका अनुभव यथा होता है ।

यह सूक्ष्म केवल पढ़नेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणाने स्थिर करनेके अनुष्ठानके लिये ही है । जो पाठक इसकी उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे । पाठक यथा देखें कि छोटसे छोट सूक्ष्मता द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है । निःसंदेह यह उपदेश जीवन फलदा देनेमें समर्थ है । परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवनमें डालनेका मन करेगा ।



# जलसूक्त

( ३३ )

( ऋषिः-शन्तातिः । देवता आपः । चन्द्रमाः )

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासुं जातः सविता यासृग्भिः ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ १ ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यान्ते अणुपश्यन् जनानाम् ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ २ ॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ३ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।

घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ४ ॥

अर्थ-जो ( हिरण्य-वर्णा ) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्णसे युक्त ( शुचय पावका ) शुद्ध और पवित्रता बढ़ानेवाला ( यामु मविता जात ) जिनमें सविता हुआ है और ( यामु अग्नि ) जिनमें अग्नि है, ( या सुवर्णा ) जो उत्तम वर्णवाला जल ( अग्निं गर्भं दधिरे ) अग्निको गर्भमें धारण करता है ( ता आप ) वह जल ( न श स्योना भवन्तु ) हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ १ ॥ ( यासा मध्ये ) जिस जलके मध्यमे रहता हुआ ( वरण राजा ) वरण राजा ( जना ना सयान्ते अणुपश्यन् ) जनोंके घृत्य और असल कर्मोंका अवलोकन करता हुआ ( याति ) चलता है । ( या सुवर्णा ) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ ( देवा दिवि ) देव सुलोके ( यामा भक्ष कृण्वन्ति ) जिनका भक्षण करते हैं, और जो ( अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ ( आप ) जल । ( शिवेन चक्षुषा मा पश्यत ) कल्याणकारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो । ( शिवया तन्वोप स्पृशत ) त्वचं मे त्वच उपस्पृशत ) कल्याणमय अपने शरारसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो । जो ( घृतश्रुत ) तेज देनेवाला ( शुचयः पावका ) शुद्ध और पवित्र ( आप ) जल है ( ता न श स्योना भवन्तु ) वह जल हमारे लिये शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

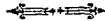
भाष्य-अन्तरिक्षमें सारक करनेवाले मेघमण्डलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिनमेघमिसे सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विष्णु रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाई देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमेंसे वरण राजा प्रसूता है और जाते जाते मनुष्योंके घृत्य और अस्तम्य निचारी और क्रमोंका निर्वाह करता है जिन मेघोंने विष्णु रूपी अग्निको गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका चक्र हमें मुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ सुलोके के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरगवले अन्तरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विष्णुतया धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये गुण और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और त्वचा हमारे शरीरके घृत्य होनेका स्पर्श हमें आनन्द देनेवाला प्रतीत हो । मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

### वृष्टिका जल ।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंद भी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठकको एक अद्भुत आनंदका अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण “शुचि, पावक, सु-वर्ण” आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जलजितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले दिव्यलोग इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और निरोग

होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणों भी प्रकाशती हैं उसकी विशेषता अधिक है। इसी प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है—“जलका स्पर्श हमारी चमडको आल्हाद देवे।” जबतक शरीर नरोग होता है तबतक ही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर ढग होते ही जल स्पर्श बुरा लगाने लगता है।



## मधु-विद्या ।

( ३४ )

( ऋषिः— अथर्वा । देवता—मधुवह्नी )



इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि । मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृषि ॥ १ ॥  
 जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् । ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥  
 मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे पुरायणम् । वाचा वंदासि मधुमद् भूयामं मधुसंदृशः ॥ ३ ॥  
 मधोरस्मि मधुतरौ मद्घृन्मधुमत्तरः । सामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥  
 परिं त्वा परितत्तुनेक्षुणां गामर्बिद्विपे । यथा मां कामिन्यसो यथा मत्तार्पणा असः ॥ ५ ॥

अर्थ— ( इयं वीरुन् मधुजाता ) यह वनस्पति मधुरताके साथ उत्पन्न हुई है, न ( त्वा मधुना खनामसि ) तुझे मधुसे खोदता हू। ( मधो अधि प्रजाता असि ) शहदके साथ तू उत्पन्न हुई है अतः ( सा ) वह तू ( न मधुमत कृषि ) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ ( मे जिह्वाया अग्रे मधु ) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे । ( जिह्वामूले मधूलकम् ) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे । हे मधुरता ! तू ( मम क्रतौ इत् अह अस ) मेरे कर्ममें निधयके रह । ( मम चित्तं उपायसि ) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ ( मे निक्रमणं मधुमत् ) मेरा चालचलन मीठा हो । ( मे पुरायणं मधुमत् ) मेरा दूर होना भी मीठा हो । मैं ( वाचा मधुमत् वदामि ) वाणसे मीठा बोलता हू जिससे मैं ( मधुसन्दृशः भूयाम ) मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं ( मधो मधुतर अस्मि ) शहदके भी अधिक मीठा हू । ( मधुचाव मधुमत्तर ) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हू । ( मां इत् किल त्व वना ) घुसपर ही तू प्रेम कर ( मधुमतीं शाखां इव ) जैसे मधुर रखवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ ( अ निद्विपे ) वैर दूर करने के लिये ( परितत्तुनेक्षुणां त्वा परि अगाम् ) फँसे हुए ईखके साथ तुझे घेरता हू। ( यथा मां कामिनी अस ) जितने तू मेरी कामना करनेवाली होवे और ( यथा मत्तं तार्पणा अस ) जितसे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह ईख नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगानेवाला और उखाड़नेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगता है और उखाड़ता है। इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इसलिए हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्रभागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता

रहे । मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा च लचलन मीठा हो, मेरा धाना जाना मीठा हो, मेरे शरीर और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों । ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठापन की मूर्ति ही बनूँगा ॥ ३ ॥ मैं शब्दद्वेष भी मीठा बनता हूँ, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूँ, इसलिये जिम प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू मुझपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवर्णियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी वाढ चारों ओर बनाता हूँ ताकि इस वाढमें सब मधुरता ही बडे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

## मधुविद्या ।

वेदमें कई विद्याएँ हे अध्यात्मविद्या, देवविद्या, जन विद्या, युद्ध विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है । मधुविद्या जगत् की ओर किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टिकोण ही मनुष्यमें उपज करती है । उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है । यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है । दूसरा विद्या जगत् को कष्टका आगर बताती है, इसको पाठक कष्टविद्या कह सकते हैं । परंतु वह कष्टविद्या वेदमें नहीं है । वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखता नहीं, न ही दुःख दृष्टिसे जगत्को देखनेका उपदेश करता है । वेदमें मधुविद्या इसीलिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें । इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यद्वा विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्त विद्याका उत्तम उपदेश देते हैं । पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें ।

## जन्म स्वभाव ।

श्रुतिमें क्या और प्राणियोंमें क्या हर एक का व्यक्तित्व जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं । जैसा सूँघना प्रकाशना, धामिका उष्ण होना, ईश्वर मीठा होना, करेलाका कड़वा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं । ये जन्मस्वभाव कदासे आते हैं वह नियारणीय प्रश्न है । ईश्वर मिठापन खाता है और फोला कड़वाहट खाता है । एष ही भूमिमें उगी ये दो वनस्पतियाँ परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने हाथ लाती हैं । कभी करेलेमें मीठा रस नहीं होता और न ही ईश्वरमें कड़वा । ऐसा क्यों होता है ? कहानियों से रस आते हैं ?

कौटिल्यके भूमिने । पशुकि भूमिमा नाम "रसा" है । एष भूमिमे विशेष रस होते है । जो औ पापा उगके पाय जाता है, यद अरने स्वभावके अणुगार भूमिने रस पाँचता है और जन्मसे देना है । करेला स्वभाव-कड़वा है और ईश्वर

मीठा है । ये पाँच भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुकूल रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं ।

मनुष्यमें भी यही बात है । विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रकट कर रहे हैं, उनको एक ही स्वभावसे एकही जीवनके महामागरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शान्ति बढानेवाला और दूसरेमें अशान्ति फैलानेवाला होता है । ये स्वभाव धर्म हैं । एवहीं जल मेंधोंम जाता है और मीठा बनकर दृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसको पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है वही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई भी नहीं सन्तान नहीं यह स्वभाव भेद हैं ।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनिया अपने स्वभाव बदल नहीं सकती । मरनेतक उनमें बदल नहीं होता । परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐधी योनि है कि जिस योनिके लोग छानियनके आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकत हैं । दुष्टके सुष्ट बन सकते हैं, मूर्खके प्रयुद्ध बन सकते हैं, दुराचरियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इसीलिये वेद मनुष्योंको भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेश दे रहा है । मनुष्य अपनी कड़वाहट कम करे और अपनेमें मिठापन बढाये यही यदा इन विद्याका उद्देश्य है ।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये— "यद् ईश्वर नामक वनस्पति मिठापन के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी भावनाके साथ उसे खाते हैं । यह मधुरता लेकर आर्ग है, इसलिये हम रापको यह पगी मिठासते युक्त करे ।" (मंत्र १)

यद् प्रथम मंत्र बढा अर्थपूर्ण है । इसमें चार बातें हैं—(१) स्वयं मीठी स्वभाव का होना, (२) मीठी स्वभाव वालोंसे संबंध करना, (३) स्वयं मधुर जीवनको क्यतीत करना, और (४) दूसरोंको मीठा बना देना । पाठक देखें कि—(१) ईश्वर स्वभावमें मीठा होता है, (२) मीठा उरतस करनेकी इच्छा वाले शिष्याओंसे उच्छरी मित्रता होती है, (३) ईश्वर स्वयं मीठा जीवन रख अपने माप खाता है और (४) त्रित्त बीज के साथ

मिलता है उसको मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईश्वर अपने व्यवहारसे मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इसके मननसे प्राप्त होनवाले नियम ये हैं -

(१) अपना स्वभाव मीठा धानाना। अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढानेका यत्न करना।

(२) मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

(३) अपना जीवन ही मीठा बनाना, चालचलन, बोलना चालना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

(४) प्रथम इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर प्रकृतिवाले मनुष्य भी मधुर कर उचम मधुर प्रकृतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करने तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं। "ईश स्वयं मीठा है मीठा चाहनेवाले किसान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रख लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंका अपनाअपना प्रयत्न करें। ( मंत्र १ )

यहाँ अन्योक्ति अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है।

### मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित किया है कि "मनुष्य मिठास के साथ जीवन व्यतीत करे।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनाये। दूरी बातको व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें सार्य बंद करता है। इधरसे उक्त तीन मंत्रोंका भाव योश विस्तार नै यहाँ देते हैं-

(द्वितीय मंत्र) - "मेरी जिह्वाके मूल, मध्य और अन्तभागमें मिठास रहे अर्थात् मेरे बान्धोंसे मधुर शब्द ही बोलेंगा। कभी कटु शब्दका प्रयोग बोलनेमें और मेरामें नहीं करूँगा, कि प्रियसे जगत्में कटुता फैले। मेरा जिन भी मीठे विचारोंका

चिन्तन करेगा। इस प्रकार विचारके विचार और धारणोंके उच्चारण रूपता से मीठे बन गये तो मेरे (कतु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्म भी मीठे हो जायेंगे। इस प्रकार विचार उच्चारण आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊँगा। मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मिठास फैलेगी।"

(तीसरा मंत्र) - "मेरा आचारव्यवहार मीठा हो, मेरे पादोंके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वर्णोंसे मधुर ही शब्द उचरूँगा और उस भाषणका अर्थयभी मधुरता बढानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चारण और आचार में स्वाभाविक और अहनिम मधुरता टपकने लगेंगे, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूँगा।"

(चतुर्थ मंत्र) - "जब शब्दसे भी मैं अधिक मीठा बनूँगा, और लक्ष्मणसे भी मैं अधिक मीठा बनूँगा तब तुम सब लोग निःसंदेह सुझार वैधा प्रेम करोगे कि जैसा पाणिनि मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं।"

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। ऊपर भावार्थ देते समय ही भावार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ आधिक शब्द रखे हैं, उनके कारण इनका अर्थ अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

### प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूँ यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे यही प्रतिज्ञा करें, यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकार उनका आचरण हुआ तो उनका यह सर्वत्र वैश्व जायगा। यह पूर्ण अर्हिज्ञा की प्रतिज्ञा है। अपने विचार, उच्चारण, आचारसे किसी प्रकार किसीकी भी हिंसा न हो, किसीका द्वेषन हो, किसीका वैरन हो, किसीकी मनुष्यता न हो, इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्में अन्तर्दक्ष ही ग्यायत्र बन जायगा। दृग अन्तर्यामि सायन बनाना वैदिक धर्मोद्योग परम धर्म ही है और इन्हींसे दृग मधुविद्याका उपदेश दृग शब्दमें हुआ है।

भाव आदि शत्रु-उस तक न आसके । यह बाढ अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ संयम की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो । अपने सब मित्रभा उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने वाले हों ऐसी बाढ होगई तो अंदरका मिठासका खेत बिगडेया नहीं । इस विषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है-

( पंचम मंत्र )—“ मै विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलानेवाले मीठे इँखोंकी बाढ तुम्हारे चारों ओर करता हूँ जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और सुससे दूर भी न होगी । ”

यह जितना खी पुरयके आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है

उतना ही अन्य परिवारों और मित्रजनोके अविद्वेष और प्रेम बढ़ानेके विषयमें सत्य है । परंतु अपने चारों ओर मीठों बाढ करनेकी युक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये । अपने साथ ईख की गंडेरिया लानेसे यह कार्य नहीं होगा । यह कार्य करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार, उच्चार और आचारके तथा मनोभावना की ईख चाहिये । जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्र में ईख लगायगे और उसको पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही वे वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं ।

ये मंत्र स्पष्ट हैं । अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टिसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे लाभ उठा सकेंगे ।

## तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति ।

( ३५ )

( ऋषिः—अथर्वा । देवता—हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः )

यदावभ्रन्दाक्षायुणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्प्रमानाः ।	
तत्ते वध्नाभ्यायुषे वर्षसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय	॥ १ ॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः संहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येकुतत् ।	
यो विभर्ति दाक्षायुषं हिरण्यं स जीवेयुं कृणुते दीर्घमायुः	॥ २ ॥
अर्वा तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।	
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो विभर्द्विरण्यम्	॥ ३ ॥
समानां मासामुत्तुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पर्यसा पिपामि ।	
इन्द्राग्नी विश्वं देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः	॥ ४ ॥

अर्थ—( सुमनस्प्रमानाः दाक्षायुणा ) शुभ मनवाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष ( शत अनीकाय ) बलके ही विभागों के खयालके लिये ( यद् हिरण्यं अथमन् ) जो सुवर्ण वाधते रहे ( तद् ) वह सुवर्ण ( आयुषे वर्षसे ) जीवन, तेज, ( बलाय ) बल और ( शतशारदाय दीर्घायुत्वाय ) ही वर्षकी दीर्घ आयुके लिये ( ते यन्नामि ) तेरे ऊपर बांधता हूँ ॥ १ ॥ ( न रक्षांसि, न पिशाचाः ) न राक्षस और न पिशाच ( एनं संहन्ते ) इन पुरयका हमला गढ़ सकते हैं ( हि ) क्योंकि ( एतद् देवानां प्रथमजं )

भोजः) यह देवोंसे प्रथम उपन्न हुआ सामर्थ्य है। (यः दाक्षायणं हिरण्यं त्रिभक्तिं) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है (सः जीवेषु दीर्घ आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अपरां तेजः ज्योतिः भोजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत्त) तथा (पनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण करते हैं (इन्द्रे हृद्वियाणि इव) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं । इस प्रकार (दक्षमाणः हिरण्यं विभ्रतु) बल बढ़ाने की इच्छा करनेवाला सुवर्णका धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मायां ऋतुभिः) सम महिनोंके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूपा गौके दूधसे (स्वा वयं पिपर्मि) तुमसे हम सम पूर्ण करते हैं। (इन्द्राम्नी) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अहृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अतु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥४॥

भारार्थ- बल बढ़ानेवाले और मनुष्य शुभ विचारों की धारणा करनेवाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष सेना संचालकके देवद्वार बलवृद्धि के लिये जिस सुवर्णके आभूषणको लटका देते हैं, वही आभूषण में तेरे शरीरपर इसलिये लटकाता हूँ कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढ़े, बल तथा सामर्थ्य वृद्धित हो और तुझे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले शरीर पुरुषके हमलेसे न राक्षस और यक्षी विद्यान सह सकते हैं । ने इसके हमलेसे घबरकर दूर भाग जाते हैं, क्योंकि यह देवों से निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है । इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढ़ानेवाला सुवर्णका आभूषण है । जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इससे इन पुरुषमें जीवन का तेज, पराक्रम सामर्थ्य और बल धारण करते हैं । और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके कार्यवाही बल भी धारण कराते हैं । जिस प्रकार इन्द्रमें अर्षात् आत्मामें इन्द्रिय शक्तियां रहती हैं वही प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले मनुष्यके अंदर सभ प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रगट हो जाय ॥ ३ ॥ दो महिनोका एक ऋतु होता है । प्रत्येक ऋतुकी शक्ति अलग अलग होती है; मानो संवत्सररूपी गौका दूध ही संवत्सरकी छह ऋतुओंमें निचोटा हुआ है । यह दूध मनुष्य पीने और बलवान् बने । इसकी अनुकूलता इन्द्र अग्नि तथा सब देव, करें ॥ ४ ॥

### दाक्षायण हिरण्य ।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है, यह परिशुद्ध शिथतिमें बहुत ही बलवर्धक है । यह पेटमें भी लिया जाता है और शरीरपर भी धारण किया जाता है । श्री० वास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं- "हितरमणीयं, हृदयरमणीयं" अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढ़ानेवाला है । सुवर्ण बलवर्धक तथा रोग नाशक है इसलिये आरोग्य वाहनेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं ।

इस सूत्रमें "दाक्षायण" शब्द (दक्ष+अवन) अर्थात् बलके लिये प्रयत्न करनेवाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है । तृतीय मंत्रमें इती अर्थात् "दक्ष-माण" शब्द से जो शक्तिमानका वाचक है । शठक विचार करके तो उनको निश्चय होगा कि "दाक्षायण और दक्षमाण" ये दो शब्द करीब एकान्त के ही वाचक हैं । दक्ष शब्द बेरमें बलवाचक प्रयुक्त है । इस प्रकार इस सूत्रमें बल बढ़ानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है । हिरण्यधारण दो प्रकारोंमें होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा

सुवर्ण शरीरमें सेवन करना । सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यमंत्रों में प्रसिद्ध है । सब अन्य धातु तथा औषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्ण की ही विशेषता है कि वह शरीरके अंदर हृदयोंके जोड़ोंमें जाकर स्थिर रूपमें रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है । इन प्रकारकी सुवर्णधारणसे अनेक रोगोंमें सुकृता होती है । इन रीतियों धारण किया हुआ सुवर्ण देह मृत होनेपर उसके जलानेके बाद शरीरकी शक्तियां राक्षस सब मिलता है । अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिमें सेवन किया तो वह तोलाभर सुवर्ण पूरा शरीरके दाह होनेके पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है । इन प्रकार कोई हानि न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है ।

जो वैद्य इन सुवर्ण धारण विधिको जानने में उनका नाम "दाक्षायण" प्रथम मंत्रने कहा है । इन शब्दोंका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उगहा नाम भू "दक्षायण" है यह बात द्वितीय मंत्रने बला ही है । जो मंत्रमें इन प्रकार सुवर्ण धारण विधिके अन्तर्गत आयुष्य बढ़ाना बताया है उगहा भी अन्य मंत्रों

तृतीय मंत्रमें 'दक्ष-माण' बताया है। इस प्रकार यह सूक्त बलवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बतला रहा है।

### दाक्षायणी विद्या ।

बल बढ़ानेकी विद्याका नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष+अयनः) बल प्राप्त करनेके मार्गका उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है (सु+मनस्यमानः) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनका विशेष शक्तिये मंत्र । कमजोरीकी भावनासे मन अशक्त होना है और सामर्थ्य की भावनासे बलशाली होता है। मनका शक्ति बढ़ानेकी जो विद्या है उस विद्याके अनुसार मन सुनियमसे युक्त बननिवाले श्रेष्ठ लोग "सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः" शर्तोंद्वारा वेदमें बताये हैं। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपने बलका संबंध देखें और इन शब्दों द्वारा जो सुमनस होना की सूचना मिलती है, वह मंत्र और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढ़ावें।

धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्तिका अर्थ भी अनांक शब्दमें है। इस अर्थके लेनेसे "घातानीक" शब्दका अर्थ "सौ जीवन शक्तियां, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त" होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

सत्तानीकाय हिरण्यं यन्नामि । ( मंत्र १ )

"सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये मैं सुवर्णका धारण करता हूँ।" सुवर्णके अंदर सेकड़ों बीज हैं, उन सबकी प्राप्तिके लिये मैं उसका धारण करता हूँ। यह आशय प्रथम मंत्र भागका है। इस प्रथम मंत्रमें इनमेंमें कुछ गुण कहे भी हैं—

आयुषि । वचसे । यलाय । दीर्घायुत्वाय । शतशारदाय ।

"आयु, तेज, बल, दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु" इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं। इनका योजना परिणाम यहाँ किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियां हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करना और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है। इस विचारसे शांत हो सकता है कि यहाँ "घातानीक" शब्दका अर्थ "जीवनके सौ बीज, जीवनकी सेकड़ों शक्तियां" अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने मंत्रार्थ करने समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहाँ प्रतीत हो रहा है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ ऊपर देकर यहाँ यह अर्थ लिखा है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका मनन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें भी है। पाठकेद्वारा बताया है उसकी पाठकोंके विचारके लिये यहाँ देते हैं—

यदायन्दाक्षायणा हिरण्यं सत्तानीकाय सुमनस्यमानाः ।  
तन्म आवाभामि शतशारदायानुष्माअरदाटिविषामम् ॥

( मंत्र १५१ )

प्रथमार्ध वैसाका वैसा ही है । यहाँ प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं । —

### राक्षस और पिशाच ।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं । ये सबसे भूर हानिके कारण सब लोग इनसे बरते रहते हैं । परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार "सुवर्ण प्रयोग करता है उनके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सहन नहीं सकते ।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है । सुवर्णमें इतनी शक्ति है । क्योंकि "यह देवोंका पहिला भोजन है ।" अर्थात् सर्पों देवोंकी अनेक शक्तियाँ इसमें संग्रहित हुई हैं । इसलिये द्वितीय मंत्रके उतरार्धमें कहा है कि— "जो यह बल प्राप्त करे सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंसे भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।" अर्थात् इन सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ़ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है । यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इच्छा इतना ही, मनन पर्याप्त है । यही मंत्र यजुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न चन्द्रर्क्षामि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।  
यो निर्माति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दार्घ्यमायुः  
स मनुष्येषु कृणुते दार्घ्यमायुः ॥ यजु० ३५।५।

'यह देवोंसे उत्पन्न हुआ पहिला मेज है, इसलिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते । जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करत है ।'

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें घोषा भेद है और जो अथर्व पाठमें "जीवेषु कृणुते दार्घ्यमायुः" इतनाही था, वहाँ ही इसमें "देवेषु और मनुष्येषु" में शब्द अधिक हैं । "जीवेषु" शब्दका ही यह "देवेषु, मनुष्येषु" आदि शब्दोंद्वारा अर्थ हुआ है । इस प्रकार अन्य शास्त्रासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करनेमें बड़ी सहायता होती है ।

यहाँ तक दो मंत्रोंका मनन हुआ । इन दो मंत्रोंमें शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उद्देश्य किया है अब अगले दो मंत्रोंमें जल वनस्पति तथा वायुआमलानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अनर्वाग्रा सेवन करनेकी महत्त्वपूर्ण विद्या दी जाती है, उषका पाठक विरह्य प्यानमें मनन करें ।

तृतीय मंत्रमें कहा है— "जल और औषधियोंके तेज, क्षाति, शक्ति, बल और बर्धवर्धक रसोंको हम ईशे धारण करते हैं कि

जैसे आराममें इन्द्रिय शक्तियों धारण हुई हैं । इसी प्रकार बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णका भा धारण करे ।"

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इसे पूर्व आगे हुये जल सूक्त में वर्णन हो चुकी है । ये सूक्त पाठक वना दत्त । औषधियोंके अंदर वीर्यवर्धक रस हैं, इसीलिये वैद्य औषध प्रयोग करते हैं, अथर्ववेदमें भी यह बात आगे आनायगी । जिस प्रकार जल अंतर्बोधा पवित्रता करके बल वादि गुणोंकी शुद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी वीर्यवर्धक औषधियोंके १४५ दिन मित अन्न भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घायु भी प्राप्त करता है । सुवर्ण सेवनसे भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवनसे भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्यशास्त्रमें नाम "रस प्रयोग" है । यह रस प्रयोग सुधीय वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये । वहाँ यजुर्वेदका इसी प्रकारका मंत्र देखिये—

### सुवर्णके गुण ।

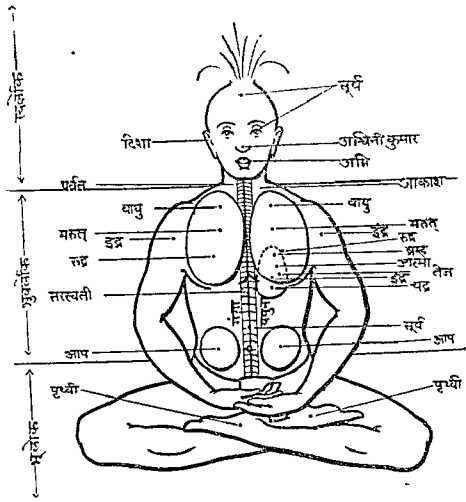
आयुष्यं चर्चस्यं रायस्पोयमौन्निद्रम् ।  
इदं हिरण्यं चर्चस्वमीत्रायामिवेदातायु माम् ॥  
वा. यजु. ३४।५०

"(आयुष्यं) दीर्घ आयु करनेवाला, (चर्चस्यं) क्षाति बढ़ानेवाला, (रायस्पोय) शोभा और पुष्टि बढ़ानेवाला (मौन्निद्रं) खानम उत्पन्न होनेवाला अथवा ऊठानेवाला, (चर्चस्वन्) तेज बढ़ानेवाला (मैत्राय) मित्रवत्के लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मां त आविशतां) मुझे अपना मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो ।"

### सुवर्णका सेवन ।



मनुष्यके शरीरमें देवोंके अंश ।



अगस्तमें जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं। इनके स्थान इस चित्रमें बताया है। इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि वायु जगत् के अग्नि आदि देवोंकी सङ्कारिताके साथ शरीरके स्वास्थ्यका कितना पानिष्ठ संबंध है।

**काली कामधेनुका दूध ।**

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है कालरूपी संवत्सरका ( काली काम धेनुका ) दूध जो ऋतुओंके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विषेदेव आदि सब पूजाये अनुकूल रहें।"

संवत्सर—वर्ष अथवा काल—यह एक कामधेनु है। काल संभषी यह धेनु होनेसे हमको काली धेनु कहने हैं, यह इसलिये कामधेनु कहाँ गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ ऋतुओंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों

की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकारके फल और फूल संवत्सर देता है, इसलिये वेदमें संवत्सरको विताभी कहा है और वहाँ मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है। हर एक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, यही हम धेनुका दूध हैं। यह दूध हर एक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निषोद्धकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, यह अनुकूल अलंकार। इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का अन्वयार्थ यहाँ ले।

प्रत्येक मासमें प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक ऋतुमें जो जो

फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको मनन करने योग्य है। मनुष्य अपने पुण्यार्थ व प्रयत्नसे ऋतुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंको लाभ पहुंचावे।

पूर्व मंत्रमें " (अपो वनस्पतीनां च वीर्याणि ) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्ये " धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रमें किया है। जिस ऋतुमें जो जल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस ऋतुमें उसका संग्रह करके, उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु, बल, तेज, वांति, शक्ति वीर्य आदि गुण अपने में बढ़ाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरणमें लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्वीर्य, निःशक्त्त्व, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान् बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्योंका हां दोष है। पाठक इस स्थानपर विचार करे और निश्चय करे कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मा लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेशको आचरणमें नहीं लाते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य

करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव मनन करने योग्य है। " इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अमुकलतासे सहायता करें " अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके बिना कौन मनुष्य कैसे उन्नतिको प्राप्त हो सकता है ? अग्नि ही हमारा अन्न पकाता है, जल ही हमारी तृप्त शांत करता है, पृथ्वी हमें आधार देती है, यिज्ञती सबको चेतना देती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करनेमें हमारा सहायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमरे सहायक हो रहे हैं। इनके प्रतिविधि हमारे शरीरमें रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनोद्योगमें हमतक पहुंचा रहे हैं। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिये यहाँ अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मनमें आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इनकी सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आग है कि पाठक इसका विचार करें और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढ़ाकर जगत् में दगर्वा होगे।

यहाँ पठ अनुवाक और प्रथम पाठ समाप्त।

# प्रथम काण्डका मनन ।

## थोडासा मनन ।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं । इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहाँ देते हैं—जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभदायक होगा—

### अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक ।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वी	वाचस्पति	वर्चस्वगण	मेधाजनन
२	"	पर्जन्य	अपराजितगण सांप्राप्तिक गण	विजय
३	"	मंद्रोक्त ( पृथ्वी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य )	---	आरोग्य
४	सिधुद्वीपः	आपः	---	"
५	"	"	---	"
६	"	"	---	"
( इति प्रथमोऽनुवाकः )				
७	घातनः	इन्द्राग्नी	---	शत्रुनाशन
८	"	अग्निः, बृहस्पतिः	---	"
९	अथर्वी	वस्वादेवः	वर्चस्व गण	तेजकी प्राप्ति
१०	"	अश्वरो वरुणः	---	पापनिवृत्ति
११	"	पूषा	---	सुखप्रसूति
( इति द्वितीयोऽनुवाकः )				
१२	भुवंगिराः	अश्वनाशन	सकमनाशनगण	रोगनिवारण
१३	"	विशुन्	---	ईदानमन
१४	"	यमो वरुणो वा	---	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वी	शिव्यु	---	सौगठन
१६	घातनः	अग्नि, इन्द्र, वरुणः शत्रुनाशन गण	---	शत्रुनाशन
( इति तृतीयोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः । )				
१७	मह्ना	सोमिन्	---	रक्तदाह-दूरीकरण
१८	दक्षिणोदाः	विनायक, सोमायं	---	सौभाग्यवर्धन
१९	मह्ना	ईश्वरः, अघ	सांप्राप्तिकगण	शत्रुनाशन
२०	अथर्वी	सोम	---	महान् शत्रुघ्न
२१	"	इन्द्रः	अभयगण	प्रशुभापलन

( इति चतुर्थोऽनुवाकः )

२१	मन्त्र	सूर्यः, हरिमा, हृशोगः	—	हृदोग तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	शोधधिः	—	कुष्ठनाशन
२४	मन्त्रा	आसुरी धनस्पतिः	—	"
२५	मूत्रचंगिराः	अग्निः, तन्मा	तन्मनाशनगण	ज्वरनाशन
२६	मन्त्रा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनगण	सुखमिति
२७	अथर्वा	इन्द्राग्नी	"	विश्वयी रथी
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	"	दुष्टनाशन

( इति पंचमोऽनुवाकः )

२९	वसिष्ठः	अभौवर्तमाणेः	—	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्यगण	आयुष्यवर्धन
३१	मन्त्रा	आशापालाः, वास्तोष्पतिः	वास्तुगण	आशापालन
३२	"	वावाप्रायेवी	—	जीवनतत्त्व
३३	शान्ताति	आपः, चन्द्रमाः	शान्तिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवली	—	मीठा जीवन
३५	"	द्विरप्यं, इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः	—	दीर्घायु

( इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकथ समाप्तः )

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी आवश्यकता है । इसलिये वे कौटुक नीचे देते हैं—

- ३ चातन ऋषि—शत्रुनाशन, दुष्टनाशन ।  
 ४ भृश्वंगिरा ऋषिः—रोगनिवारण, उवरनाशन, ईशानमन  
 विवाह ।  
 ५ सिंधुद्वीप ऋषि—जलसे आरोग्य ।  
 ६ शत्रुणे दा ऋषिः—सौभाग्यवर्धन ।  
 ७ वसिष्ठ ऋषिः—राष्ट्रसंवर्धन ।  
 ८ शान्ताती ऋषिः—वृष्टि जलसे स्वास्थ्य ।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन किन विषयोंका संबंध है यह देखना बड़ा बोधप्रद होता है । ( १ ) सिंधुद्वीप ऋषिके नाममें “ सिंधु ” शब्द जल प्रवाह का वाचक है और यही जल देवताके मंत्रोंका ऋषि है । ( २ ) चातन ऋषिके नामका अर्थात् “ चातन ” शब्दका अर्थ “ घबरादिना भगदिना, शत्रुको उखाड़ देना ” है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है । इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है । इसका विचार करना योग्य है ।

### सूक्तों के गण ।

त्रिन प्राचीन मुनियोंके अथर्व सूक्तोंपर विचार किया था, उन्होंने इन सूक्तोंके गण बना दिये हैं । एक एक गणके संपूर्ण सूक्तोंका विचार एक साथ होना चाहिये । ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है । इस प्रथम कांडक पैंतीस सूक्तोंमें कई सूक्त कई गणोंके अंदर आगये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं । जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अर्थकी दृष्टिसे हम अन्यगणोंके साथ पढ़ सकते हैं । इस प्रकार गणना विचार करनेसे सूक्तोंका बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये—

१ वषट्प गण—इसके सूक्त १, ९ ये हैं । तथापि तेज, आरोग्य आदि बहानिका उपदेश करनेवाले सूक्त हम इस गणके साथ पढ़ सकते हैं, जैसे—सूक्त ३—६, १८, २५, २६, ३०, ३१, ३४, ३५ आदि ।

२ अपराजित गण, सांप्रामिकगण इसके सूक्त २, १९ ये हैं तथापि इन्हें साथ संबंध रखनेवाले अमय गणकेसूक्त हैं । तथा राष्ट्रशासन और राज्य पालनके सब सूक्त इनके साथ संबंधित हैं, जैसे—सूक्त ७, ८, १५, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१ आदि ।

३ तक्मनाशन गण—इस गणके सूक्त १२, २५, ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्यवर्धक सूक्त इस गणके सूक्तोंके साथ पढ़ना चाहिये । जैसे सूक्त ३—६; १७, २२, २३, २५, ३३, ३५, आदि—

४ स्वस्त्ययनगण—इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं ।

५ आयुष्यगण—इस गणके सूक्त ३०, ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण, वषट्पगण, तक्मनाशनगण तथा शान्तिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है ।

६ शान्तिगण—जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं ।

७ अभयगण—इसका सूक्त २१ वाँ है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तक्मनाशनगण, चातनसूक्त ये हैं ।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है ।

### अध्ययन की सुगमता ।

कई पाठक शर्मा करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब कांडोंमें क्यों दिये हैं । इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करनेवालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बड़ा कष्ट हो जाता । अध्ययनकी सुविधाके लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं । अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं, इसका यही कारण है कि पढ़नेवालोंके मस्तिष्ककी कृष्ट न हो । चरेरेसे शान्तक एक ही विषयका अध्ययन करना ही तो पढ़ने पढ़ानेवालोंको अतिकष्ट होते हैं । इस बातका अनुभव हरएकको होगा ।

इससे पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयोंके सूक्त मिलेजुले दिये हैं ।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वपर सबका अनुमान करने और पूर्वपर संबंधका स्मरण रखनेका अभाव ही । यदि जलसूक्त प्रथम कांडमें आया ही, तो आगे जहाँ जल सूक्त आज्ञायें वहाँ वहाँ इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये । इस प्रकार स्मरणशक्ति भी बढ गकती है । स्मरणशक्तिका बढना और पूर्वपर संबंध जोड़नेका

अभ्यास होना ये दो महत्वपूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं। दो प्र-पाठक" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। पहले एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक-प्र पाठ क होता है। इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढाई है। अथवा एक अनुवाकका एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथमकाण्डकी पढाई छ पाठोंकी मानी जा सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढने पढानेवालोंकी बड़ा रोचकता उत्पन्न हो सकता है।

आजकल इतनी पढाई नहीं हो सकती, यह सुद्धि कम होना या माहकता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रमुद्ध विद्यार्थीके ही पढनेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रमुद्ध तथा अन्य शास्त्रोंमें कृतपरिधम उक्त प्रकार पढाई कर सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

### अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता।

जो पाठक इस प्रथमकाण्डके सब मंत्रोंको अच्छी प्रकार पढ़ेंगे और थोड़ा मनन भी करेंगे तो उनको उन्नी समय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेदका उपदेश इस समयमें भी नवीन और अर्थमय उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। सूक्त पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठावेंगे। उपदेश की जीवितता और आप्रतता इसी बातमें पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे छाडी हो जाती है।

वेद सब मंत्रोंसे पुराने मंत्र होनेपर भी नवीन से नवीन है और यही इनकी "मनातन विद्या" है, यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पढ़ेगा उसको उन्नी अवस्थामें और उन्नी समय अपनी उन्नतिका उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम काण्डके सूक्त पढ़कर पाठक इन बातका अनुभव करे और वेद विद्याका महत्व अपने मनमें गिरा करे।

कम दस पाच बार मनन पूर्वक करना चाहिये।

### व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्यके स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरोगता, बल, आयुष्य, सुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हर एक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेशसे लाभ उठा सकता है। आरोग्यवर्धनके वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठन सबसे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंको बालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्यवर्धनके उपायोंमें सांसारिकसे इन उपायोंका वर्णन विशेष बलके साथ इस काण्डमें किया है—

जलसे आरोग्य—जल आरोग्य होता है, शरीरमें शान्ति, सुख, नीरोगता आदि प्राप्त होती है यह बतानेवाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद 'दिव्य जल' अर्थात् वेदोंमें प्राप्त होनेवाले जलका महत्त्व बताया है यह कभी भूलना नहीं चाहिये। षष्ठिये दिनोंमें जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी षुष्टि होनी है—उन दिनोंमें हम जलका समूह हर एक षुष्टिस्थी पर गहता है। जहाँ षुष्टि बहुत घाटी होती है वहाँकी बात छोड दी जाय तो अल्पतः यह जल सालभरके फीलेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु रमरण रखना चाहिये कि परके छपरपर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर लूले और बड़े मुसावना बर्तन रखकर उसमें मीथी षुष्टिपाराओं से जल घट्टीय करना चाहिये। अर्थात् ऐसा ईतनाम करना चाहिये कि षुष्टिजल की पारंप मीथी अपने बर्तनमें आजाय। बीचमें हवा, छपर आदि टिनोका रास न हो। इस प्रकारका षुष्टी टिनोका जल स्वच्छ और निर्मल बर्तनमें भरकर हवामें छपर रखना है और बिगडला नहीं। यह जल यदि अच्छा रसा मंत्रों दो बर्तनकर रहला है और इसका यह नूचितनेका गुण ही मनुष्यका आरोग्य वर्धन करता है।

चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये । हरदिन भी पानेके लिये डमका उपयोग करनेकाले बटा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसका नाम 'अमग्वारुणा वा पान' है । इसीको 'गुरा' भी कहते हैं । गुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परन्तु प्राचीन धर्मात् इसका अर्थ 'दृष्टि जल' भी था । वर्ण का जन साम्राज्य मेघ मठल में है और वही इस आरोग्य वर्षक दृष्टि जल को देता है । इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है ।

वेदका यह आरोग्य प्राप्ति साधा, सुगम और व्ययके बिना प्राप्त होनेवाला उपाय यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बटा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें ।

### आरोग्य साधनके अन्य उपाय ।

जल पशान् आरोग्य साधनके उपाय जो वेदने बताये हैं अब देखिये—

तंग कपडे पहननेकाले वायु लोगोंको होती है, इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके साथ संबंध होनेके कारण बीरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नाना कपडे पहननेके कारण कमजोर चमड़ी वाले बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं ।

रामायण महाभारतके समयमें रामकृष्णादि वीर अतिदीर्घ आयुवाले थे । वे वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढते थे । प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे । पाठक इनके वर्णन यदि पढ़ेंगे तो उनमें अन्तर्गत यह बात आज्ञायगी कि सभाओंमें भी वे लोग केवल धोती पहनकर ही बैठते थे । इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाश का संबंध अच्छी प्रकार होजाता था । अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायुवाले और अति बलवान् थे । वह सादगी इस समय नहीं रह गई है और इस समय बड़ी दुर्निमता हमारे जीवन व्यवहारमें आगयी है इसका परिणाम हमारे अल्पायु दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है । पाठक वेदके उपदेशके साथ इस ऐतिहासिक बातका भी मनन करें ।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतामें कई गुना अधिक है । इतना होते हुए भी तंग गलियों, तंग मकान, अंधेरे कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्योंकी संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रातेदिन आता है, तथापि हमारेलिये वह इतना लाभ नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पशुवाने में समर्थ है । वे सब दोष मनुष्यकृत हैं । प्राणिविषयका हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहातक हां सके वहां तक करने करके वह सादगी हमारे खानपान, वस्त्राभूषण तथा अन्याय व्यवहारमें आनी चाहिये । वेदके उपदेशानुसार ऋषि-अपना व्यवहार रखते थे, इसलिये ऋषि लोगोंको अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उसके बोलबाल उलट्टे जा रहे हैं, इसलिये शत्रुके वशमें हम अधिक हो रहे हैं ।

ही है। खुली वायु और खुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंकी पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसे हो सकता है? शृष्टिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढ़ानेवाले बताये हैं और आजकलके शास्त्री उम बातची पुष्टि कर रहे हैं, इतना ही नहीं परंतु युरोप अमेरिकामें जहां शीत अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएँ स्थापित हुई हैं कि जहां आरोग्य वर्धनके लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब नगा रहना आवश्यक माना गया है। जिन लोगोंने तप कपटे पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमेरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं यह देखकर हमें वदनी सच्चाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है। बिना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सच्चाईका इस प्रकार प्रदर्शन कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वेदका अध्ययन करेंगे, उन वेद मंत्रोंके उपदेशको अपने आचरणमें डालेंगे, और अनुभव लेनेके पथान अपने धार्मिक जीवनमें उस सच्चाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत्में इस सच्चाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इसलिये हम पाठकोषि निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरेजकताके लिये न करें, केवल पारलौकिक भावनाएँ भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार बाला जा सकता है, इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब हमके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

## राष्ट्रीय जीवन ।

जंगे वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशकी उपयोगिता है उन्नी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके लिये भी वदके उपदेशआति मनन करने योग्य है। यह विषय आगेके भागोंमें विशेष रीतिमें आनिवाला है, और वही इसका अधिक निरूपण होगा। इस प्रथम कांडने भी राष्ट्र विषयक मंत्र वदों अज्ञातों और अत्यंत बोधप्रद हैं।

उनतीसवें सूक्तमें 'राष्ट्रके लिये भुसे बडावो,' तथा 'राष्ट्री सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे' इत्यादि ओ रस्वी उपदेश हरएक गणयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं। राष्ट्रीय दृष्टिसे यह वसिष्ठ सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आगये हैं उन सबका यदा विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उग उग सूक्तके प्रसंगमें ही विशेष बातका विवरण किया है। इसलिये उगको दुहराने की यहाँ कोई आवश्यकता ही नही है। पाठक इस सूक्तका बारबार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जायगी, जो ऊपरके विवरणमें लिखी नहीं हैं। वेदका अर्थ जाननेके लिये मना ही करना चाहिये।

आगा है कि पाठक मनन पूर्वक इस वाक्यका अन्याय परेंगे और इस उपदेशमें अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुभवमें आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी मलाईके लिये करेंगे। इस प्रकार करनेसे सबका ही भला हो जायगा।







# अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

## प्रथमकाण्डकी विषय-सूची ।

सूक्त	विषय	पृष्ठ		पृष्ठ
अथर्ववेदके	विषयमें स्मरणीय रूपन ।	३		पृथ्वीमें जीवन ।
अथर्ववेदका	महत्त्व ।	"		मृत्युबोध निवारण ।
अथर्वशास्त्रा ।		"		पूर्वोपर सम्बन्ध ।
अथर्वके	कर्म ।	"		शारीर शास्त्र का ज्ञान ।
मनका	सम्बन्ध ।	४	४	जल सूक्त ।
शान्ति	कर्म के विभाग ।	"	५	"
मन्त्रोंके	अनेक उद्देश्य ।	५	६	"
सूक्तोंके	गण ।	६		जलकी मिश्रता ।
अथर्ववेदका	महत्त्व ।	"		जलमें औषध ।
अथर्ववेद	प्रथम काण्ड ।	८		धमता और विषमता ।
१	मेधाजनन ।	९		जलकी वृद्धि ।
बुद्धिका	संवर्धन करना ।	"		दोष आसुष्यका माधन ।
मनन ।		११		प्रजनन शक्ति ।
अनुसंधान ।		१२		७ धर्म-मन्थार-सूक्त ।
२	विजय-सूक्त ।	"		अग्नि ब्रह्म है ।
वैयक्तिक	विजय ।	१३		शान्ति उपदेशक ।
पिताके	गुण-धर्म-कर्म ।	"		महा सन्निभ ।
माताके	गुण-धर्म-कर्म ।	"		इन्द्र ब्रह्म है ।
पुत्रके	गुण-धर्म-कर्म ।	"		धर्मोपदेश का क्षेत्र ।
एक	अद्भुत अलंकार ।	१४		दुष्टोंका सुधार ।
बुद्धि	का विजय ।	"		मित्त भोजन करो ।
पूर्वोपर	सम्बन्ध ।	१५		दुष्ट जीवनका पथानाग्न ।
बुद्धि	महत्वा आदर्श ।	"		धर्मोपदेशक कार्य बन्परे ।
औषधि	प्रयोग ।	"		दुष्टोंकी पथानाग्नये छुटि ।
राष्ट्रका	विजय ।	१६		धर्मका दूत ।
१	आरोग्य सूक्त ।	"		बाहुओंकी दण्ड ।
आरोग्य	का धारण ।	१७		काम्य और क्षत्रियोंके प्रकल्पक सम्बन्ध ।
परमन्त्रके	आरोग्य ।	"		८ धर्म-मन्थार-सूक्त-
मित्र (प्राय)	वापुगे आरोग्य ।	"		धर्मोपदेशक की काम्य ।
बलन (बल)	देवके आरोग्य ।	"		मन्त्र-विद्वत्का आहार ।
बल (धैर्य)	देवके आरोग्य ।	१८		दुष्टोंकी सम्बन्धका सुधार ।
तूर्देवके	आरोग्य ।	"		धर्मोंके प्रचार ।
वदपार	विना ।	"		

९ वचं-भासि सूक्त।	३३	वरकी परीक्षा।	"
देवताओंका सम्बन्ध।	"	पतिके गुणधर्म।	"
उष्णतिका मूलमन्त्र।	३४	वधू परीक्षा।	५१
विजयके लिये संवम।	३५	बन्याके गुणधर्म।	"
ज्ञानधे जातिमें श्रेष्ठताकी भासि।	"	मगनीका समय।	"
जनताकी भलाई करना।	"	धिरकी सजावट।	"
उष्णतिकी चार सीदियां।	३६	मंगनीके पश्चात् विवाह।	५२
इन सूक्तोंका स्मरणार्थ उपदेश।	"	१५ संगठन-महायज्ञ-सूक्त	"
१० असत्य भाषणादि पापोंसे छुटका।	३७	संगठनसे शक्तिकी वृद्धि।	५३
पापधे छुटकारा पानेका मार्ग।	३८	यज्ञमें संगतिकरण।	"
एक शासक ईश्वर।	"	संगठन का प्रचार।	५४
ज्ञान और भक्ति।	"	पशुभाव का यज्ञ।	"
प्रायश्चित्त।	"	पशुभाव छोड़नेका फल।	"
पापी मनुष्य।	३९	१६ घोर-नाशन-सूक्त	५५
११ सुस-प्रसूति सूक्त।	"	सीसिकों गोली।	"
प्रसूति प्रकरण।	४०	शत्रु।	"
ईशभक्ति।	"	आर्य घोर।	५६
देवोंका गर्भमें विकास।	४१	१७ रक्तस्त्राव बन्द करना।	"
गर्भवती स्त्री।	"	घाव और रक्तस्राव।	५७
गर्भ।	"	दुर्भाग्य की स्त्री।	"
सुस प्रसूतिके लिये आदेश।	४२	विषवाके वध।	"
घाईकी सहायता।	"	१८ घौमारक-वर्धन-सूक्त।	५८
सूचना।	"	कुलक्षण और सुलक्षण।	५९
१२ श्वादि रोग निवारण सूक्त।	४३	वाणीधे कुलक्षणोंको हटाना।	"
महत्त्वपूर्ण रूपक।	४४	वाणीसे प्रेरणा।	"
आरोग्य का दाता।	"	हाथों और पावोंका दर्द।	६०
सूर्य किरणोंसे चिकित्सा।	४५	घौमारकके लिये।	"
उर्व साधारण उपदेश।	"	सन्तानका कल्याण।	"
१३ अन्नपौमी ईश्वरको नमन।	४६	शत्रु नाशन - सूक्त।	६१
सूक्त की देवता।	"	आन्तरिक कवच।	"
तपका महत्त्व।	४७	इस सूक्तके दो विभाग।	"
परम धाम।	४८	वैदिकधर्मका माध्य। ब्राह्मणवच	६२
सुखमें सहायता।	"	अन्य कवच। क्षात्र कवच।	"
नमन।	"	दासभावका नाश।	"
१४ बुलवत् सूक्त।	"	२० महान् शीतल।	६३
पदिता प्रस्ताव।	४९	पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध।	"
प्रस्तावका अनुमोदन।	५०	भाषयत्री पृष्ठ हटा दो।	"
		बडा शासक।	६४

२१ प्रजा-पालक--सूक्त ।	६३	दुष्टोंका सुधार ।	॥
ज्ञान धर्म ।	६५	२९ राष्ट्र-सवर्धन-मूक्त ।	७९
२२ हृदयरोग तथा कामिलारोगकी चिकित्सा ।	६५	अनुसन्धान ।	८०
वर्ण चिकित्सा ।	६६	अभीवर्त मणि	॥
सूर्यकिरण चिकित्सा ।	॥	इस सूक्तका संवाद ।	॥
परिधारण विधि ।	॥	राजाके गुण ।	॥
हृष और बल ।	॥	राजचिह्न ।	॥
रंगान गोकुंके दूषसे चिकित्सा ।	६७	शत्रुके लक्षण ।	८२
पथ्य ।	॥	सन्की सहायता ।	॥
२३ श्वेत-कुष्ठ--नाशन सूक्त ।	६७	केवल राष्ट्रके लिये ।	॥
श्वेतकुष्ठ ।	६८	' राष्ट्र ' का अर्थ ।	८३
निदान ।	॥	३० आयुष्य-वर्धन-मूक्त ।	॥
दो भेद और उनका उपाय	॥	आयुका सवर्धन ।	८६
रंगका पुसमा ।	॥	सामाजिक निर्भयता ।	॥
औषधियोंका पोषण ।	॥	देवोंके आधीन आयुष्य ।	८५
२४ कुष्ठ-नाशन--सूक्त ।	६९	हम क्या करते हैं ?	॥
ननस्पतिके माता पिता ।	॥	आदित्य देवोंकी जाग्रती ।	८६
सरूप करण ।	७०	देवोंके पिता और पुत्र ।	८७
वनस्पतिपर विजय ।	॥	देवोंके स्थान ।	८७
सूर्यका प्रभाव ।	॥	देवताओंके चार वर्ग ।	८८
सूर्यसे धीमे प्राप्ति ।	॥	३१ आशा-पालक-मूक्त ।	८९
२५ शीत-उष्ण-दूरीकरण सूक्त ।	७०	दिवपाल ।	९०
उष्णकी उत्पत्ति ।	७१	देहमें चार दिक्पाल ।	॥
उष्णका परिणाम ।	॥	आशा और दिशा ।	९१
हिमउष्णके नाम ।	७२	सूक्तका मनुष्य वाचक भावार्थ ।	॥
नम शब्द ।	७३	मनुष्यमें चार दारोंकी चार आशाएँ ।	॥
२६ सुख-प्राप्ति-मूक्त ।	७३	विद्यति-द्वारसे प्रवेश । ( चित्र )	९२
देवोंसे मित्रता ।	॥	द्वार, आशा ।	॥
विशेष सूचना	७४	भारोग्यका आधार ।	॥
२७ विजयी स्त्री का पराक्रम ।	७५	मस्तकमें विद्यति द्वार । ( चित्र )	९३
इन्द्राणी ।	॥	पृष्ठ वंश ( चित्र )	॥
शौर (श्री) ।	॥	विद्यतिद्वार, सहस्रारचक्र, पृष्ठ-	॥
शत्रुवाचक शब्द ।	७६	वशमें बर्कोंके स्थान । ( चित्र )	॥
तान गुणा सात ।	॥	ज्ञानपान ।	९४
निर्भरशु ।	॥	कामीपयोग ।	॥
२८ दुष्ट-नाशन मूक्त ।	७७	बंधनका नाश ।	॥
पूर्वोपर सम्बन्ध ।	॥	शयन दिक्पाल ।	॥
दुर्जनोके लक्षण ।	७८		

हवनसे पूजन ।	१	प्रतिष्ठा	१
पापमोचन ।	१५	मीठी बाढ	११
बभ्रुर्ध देव ।	१६	३५ तेजस्विता, बल और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।	१०४
दार्ध आहु ।	१७	दाक्षायण हिरण्य	१०५
विशेष हवि ।	१७	दाक्षायणी विद्या	१०६
३२ जीवन रसका महासागर	१७	सुवर्ण धारण	१०
स्थूल घट्टि ।	१८	राक्षस और पिशाच	१०७
जीवन का रस ।	१८	सुवर्णके गुण	१०
भूतमात्रका आश्रय ।	१८	सुवर्ण का सेवन	१०
सनातन जीवन	१८	शरीरमें देवोंके अद्य ( चित्र )	१०८
जगत् के मातापिता	१८	काली कामधेनुका दूध	११
जीवनका एक महासागर	१९	प्रथम वाण्डका मनन ।	११०
सपका एक आश्रय	१९	सूक्तोंका कोष्ठक	१११
स्थूल सूक्ष्म और कारण	१९	ऋषिविभाग	१११
३३ जल सुव्रत ।	१००	सूक्तोंक गण	११२
शृष्टिवा जल	१०१	अभ्ययन की सुगमता	११
१४ मधु विद्या ।	१०२	अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता	११३
मधु विद्या ।	१०२	व्यक्तिके विषयमें उपदेश	११
जम स्वभाव	१०२	आरोग्य साधनके अभ्य उपाय	११४
मिठा जीवन	१०२	राष्ट्रीय जीवन	११५



ॐ

# अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्यवाचस्पति, वेदाचार्य, गीणालङ्कार

अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल, बालनन्दाश्रम, किला पारडी (जि. सुरत)

तृतीय वार

सयत् १००८, शके १८७१, सन १९५१

# सबका पिता ।

स नमः पिता जनिता स उत बन्धुधर्मानि वेद भुवनानि विश्वा ।  
यो दुवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २।१।३

“वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, यही सब स्थानों और युवनोंको यथावत् जानता है । उसी अकेले ईश्वरको अन्व सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण भुवन उसी प्रगोसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं ।”



मुद्रक तथा प्रकाशक— वसन्त शीलानन्द कान्ठलेकर.

भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, पारसी ( सि धरम )



# अथर्ववेद का सुबोधभाष्य ।

## द्वितीय काण्ड ।

इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ "वेन" सूक्ते और "वेन" शब्दसे होता है। यह मंगल वाचक शब्द है। 'वेन' शब्दका अर्थ "स्तुति करनेवाला, ईश्वरके गुण गानेवाला भक्त" ऐसा है। परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसीके गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है। इस परमात्माकी विद्याके नाम "गुप्त विद्या, गूढ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या" आदि अनेक हैं। इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं। यह इस विद्याकी विशेषता है। विद्याओंमें श्रेष्ठ विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इसलिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करे।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मंत्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पाँच मन्त्रवाले सूक्तोंका है। इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं। अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं। इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्नलिखित प्रकार है।

५	मंत्रोंके	सूक्त	२२	हैं, इनकी	मंत्र	संख्या	११०	है
६	"	"	५	" "	"	"	३०	"
७	"	"	५	" "	"	"	३५	"
८	"	"	४	" "	"	"	३२	"
	कुल	सूक्त संख्या	३६	कुल	मंत्र	संख्या	२०७	

इस द्वितीय काण्डके ऋषि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं—

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
<b>प्रथमोऽनुवाकः</b>				
१	५	वेन	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्: ३ अगती
२	"	मातृनामा	गणधर्य, अक्षराः	" १ विराहप्रगती, ४ त्रिषादिराणाम गायत्री ५ मृगिगवृद्ध



सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३	६	अंगिराः	मैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्, ६ स्वराडुपरिष्ठा- न्महाबृहती.
४	"	अथर्वा	चन्द्रमाः, जङ्घिडः	" २ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः ( आषवर्णः )	इन्द्रः	त्रिष्टुप्; १, २ उपरिष्ठाद्बृहती ( १ निचृत्, २ विराट् ) विराट् पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्

## द्वितीयोऽनुवाकः

६	५	शौनकः ( संपत्कामः )	अग्निः	" ४ चतुष्पदाषो पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
७	"	अथर्वा	मैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्, १ मूर्तिः, ४ विराडुपरिष्ठाद्बृहती
८	"	भृगुः ( आगिरसः )	वनस्पतिः यक्ष्मनाचानं,	" ३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराट् ५ निचृत् पथ्यापंक्तिः १ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
९	"	" "	" "	" ; १ त्रिष्टुप्, २ सप्तपदधिः ३-५, ७, ८ ( १ ) सप्तपदी छतिः; ६ सप्तपदी भंत्वधिः ८ ( २, ३ ) द्वौ पदौ, वर्णिशौ।
१०	८	" "	निकैति, धावाष्टपिषी, नानादेवताः	

## तृतीयोऽनुवाकः

११	५	शुकः	हृत्यादृषणं, हृत्यापरिहरणं	१ चतुष्पदा विराट्, २-५ त्रिपदा पुरोष्णिहः, ४ विपीलिकमप्या निषुम्
१२	८	भरद्वाजः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्; २ जगती, ७, ८ अनुष्टुप्
१३	५	अथर्वा	" अग्निः	" ; ४ अनुष्टुप्, १ विराट् जगती
१४	६	चातनः	शाळा, अग्निः, संत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्, २ मूर्तिः, ४ उपरिष्ठाद्रिषाद्बृहती.
१५	"	महा	प्राणः, अपानः, आयुः	त्रिपदापञ्चमी.
१६	७	"	"	१, १ एकपदागुनी त्रिपुर, २ एकपदागुनी वर्णिह, ५, ५ द्विपदागुनी तावती

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
१७	"	"	"	१ ६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ भासुरी वृष्णिक् ।
<b>चतुर्थोऽनुवाकः</b>				
१८	५	चातन ( सपरन क्षयकाम )	भस्मि	साप्ती बृहती.
१९	"	अथर्वा	"	१-४ त्रिचंद्रिपमा गापत्री ५ मूरिस्त्रियकमा
२०	"	"	वायु	" "
२१	"	"	सूर्य	" "
२२	"	"	चंद्र	" "
२३	"	"	भाप	" "
२४	८	भद्रा	धामुष्य	पंसि
२५	५	चातनः	वनस्पति	अनुष्टुप्, ४ मूरिक्
२६	"	सविवा	पशु	त्रिष्टुप् ३ उपरिष्टाद्विराट्बृहती ४, ५ अनुष्टुप् ( ४ मूरिक् )
<b>पञ्चमोऽनुवाकः ।</b>				
२७	७	कपिञ्जलः	वनस्पति रतः, इन्द्रः	अनुष्टुप्
२८	५	दाम्भुः	उरिमा, आयु	त्रिष्टुप् १ उगती, ५ मूरिक्
२९	७	अथर्वा	बहुदेवता	" १ अनुष्टुप् अपराबृहती त्रिष्टुप् प्रस्थारपतिः
३०	५	मन्नापति	भद्रिनी	अनुष्टुप्, १ परापरपति. १ मूरिक्
३१	१	काण्व	मही, चन्द्रमा,	" २ उपरिष्टाद्विराट्बृहती ३ भार्गोविष्टुप् ४ प्रागुक्तः बृहती, ५ प्रागुक्तः त्रिष्टुप्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३४	५	अथर्वा	पशुपतिः	त्रिष्टुप्
३५	"	आंगिराः	विश्वकर्मा	" १ गृहतीगर्मा, ४, ५ भूरिक्
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमी	" १ भूरिक् २, ५-७ अजुष्टुप्- ८ निचृत्पुर षष्णिग्

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं। स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है। अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कोष्टक देते हैं—

१ अथर्वा— ४, ७, १३, १९-२३; २९, ३४ ये दस सूक्त ।

२ मन्त्रा— १५-१७, २४, ३३, ये पांच सूक्त ।

३ आंगिरसो ऋगुः— ८-१० ये तीन सूक्त ।

४ चातनः— १४, १८, २५, " " "

५ आंगिराः— ३, ३५, ये दो सूक्त ।

६ काण्वः ३१, ३२ " " "

७ आथर्वणो ऋगुः— ५ यह एक सूक्त ।

८ येनः— १ " " "

९ मातृमामा— २ " " "

१० दौनिकः— ६ " " "

११ शुक्लः— ११ " " "

१२ भरद्वाजः— १२ " " "

१३ सविता— २६ " " "

१४ कपिशल— २७ " " "

१५ शम्भू— २८ " " "

१६ प्रजापतिः— ३० " " "

१७ पतिवेदना— ३६ " " "

ये ऋषि— क्रमानुसार सूक्त हैं। अब देवता— क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये—

१ मन्त्र, आत्मा— १ यह एक सूक्त ।

२ गंधर्वः— २ " " "

३ इन्द्रः— ५ " " "

४ ऋषिः— ६, १३, १४, १८, १९, ये पांच सूक्त ।

५ वनस्पतिः— ३, ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त ।

६ दीर्घायुष्यं— ३, ७, १५-१७, २४, २८ ये सात सूक्त ।

७ आरौतवं— ८, ९, ११, १५-१७; २८ ये सात सूक्त ।

८ चंद्रमा— ४, २२, ३१, ३३ ये चार सूक्त ।

९ अग्निदः— ४ यह एक सूक्त

१० निर्ऋतिः— १० " " "

११ वायुः— २० " " "

१२ सूर्यः— २१ " " "

१३ आदित्यः— ३२ " " "

१४ आपः— २३ " " "

१५ अश्विनी— ३० " " "

१६ विश्वकर्मा— ३५ " " "

१७ अग्नीषोमी— ३६ " " "

१८ पशुपतिः— ३४ " " "

१९ ऋगुः— २६ " " "

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएँ हैं, जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देव सूक्तों हैं। समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिए। अर्थविचार करनेके समय ये कोष्टक पाठकोंके लिए बड़े उपयोगी हो सकते हैं। इस कोष्टकसे मिलने सूक्तों का विचार साथ साथ करना चाहिए। यह बात पठक जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तों का अनुसंधान कर सकते हैं।

इसकी आवश्यक बात यहाँ करके अब इस द्वितीय कालका अर्थ विचार करते हैं—

# अथर्व वेदका सुकोश भाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

## गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

(१)

[ ऋषिः-वेनः । देवता-ब्रह्म, आत्मा ]

वेनस्तत्संश्रयत्परमं गुह्यं यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

इदं पृथिरदुहज्जायमानाः स्वविदो अभ्यनूयत वाः

॥ १ ॥

प्र तद्वोचेदुमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुह्यं यत् ।

त्रीणि पदानि निहितानि गुह्यास्य यस्तानि वेदु स पितृष्पितासत्

॥ २ ॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेदु भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नाम्ब एक एव तं संप्रशं भुवना यन्ति सर्वा

॥ ३ ॥

अर्थ— ( वेनः तत् परमं पदयत् ) मन्त्र ही उस परमश्रेष्ठ परमात्माको देखता है, ( यत् गुहा ) जो हृदय की गुफामें है और ( पत्र विश्वे एकरूपं भवति ) जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है । ( इदं शुभिः जायमानाः बहुहत् ) इसीका प्रकृतिने दोहन करकेही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिए ( स्वविदो वाः ) प्रकाश को जानकर मृत पालन करनेवाले मनुष्यही इसकी ( अभ्यनूयत ) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

( यत् गुहा ) जो हृदयकी गुफा में है ( तत् अमृतस्य परम धाम ) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान ( विद्वान् गन्धर्वः प्रयोचत् ) ज्ञानी ब्रह्मा कहे । ( अथ त्रीणि पदा ) इस के तीन पद ( गुह्या निहितानि ) हृदय की गुफामें रखे हैं, [ यः तानि वेदु ] जो इनको जानता है ( सः पितुः पिता असत् ) वह पिताका भी पिता अर्थात् ब्रह्मा समर्थ हो जाता है ॥२॥

[ सः नः पिता ] वह हम सबका पिता है, ( जनिता ) जन्म देनेवाला ( उत सः बन्धुः ) और वह भाई है, वह ( विश्वा भुवमानि धामानि वेदु ) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है । ( यः एकः एव ) वह अकेलाही एक ( देवानां नाम्ब—यः ) सम्पूर्ण देवोंके नाम धारण करनेवाला है, ( तं संप्रशं ) इसी उत्तम प्रकारसे पूजने योग्य परमात्माके प्रति ( सर्वा भुवना यन्ति ) संपूर्ण भुवन पहुँचते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ— जिसमें जगत्की विविधता भेदका स्थान कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है, उस परमात्माको मन्त्रही अपने हृदयमें छायात देखा है । इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निकोद कर उत्पन्न होनेवाले इष्ट विविध जगत् की निर्माण किया है, इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य वदा उसी एक आत्माका पुनर्गान करते हैं ॥१॥ जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी धर्मज्ञ ब्रह्मा ही कर सकता है । इसके तीन पद हृदयमें प्राप्त हैं, जो इनको जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥

वही हम सबका पिता, जन्मदाता और भाई भी है, वही संपूर्ण प्रकृतियोंका एक अस्तित्वको दयाकर जानता है । वह अकेलाही एक है और अति आदि संपूर्ण अन्व देवोंके नाम उगोको प्राप्त होने है अर्थात् उसको ही दिने न मे है । अर्थात् जन उसीके विषयमें शारंगर प्रथम पूजने है और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्वमे उर्ध्वको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

परि धावांपृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।

वाचामिव वक्तारिं भुवनेष्ठा धास्युरेप नन्वेडुषो अग्निः

॥ ४ ॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावधैर्यन्त

॥ ५ ॥

अर्थ— ( सद्यः ) शीघ्र ही ( धावा—पृथिवी परि आयं ) सुलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूँ और सब ( ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे ) सत्यके पहिले उपासना करती हूँ । ( वक्तारिं वाचं इव ) वक्तामें जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह ( भुवने—स्थाः ) सब भुवनोंमें रहता है, और ( एपः धास्युः ) यही सबका धारक और पोषक है, ( ननु एयः अग्निः ) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥

( यत्र ) जिसमें ( अमृतं आमदानाः देवाः ) अमृत खानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अधैर्यन्त) प्राप्त होते हैं, उस ( ऋतस्य ) सत्यके ( विततं कं तन्तुं दृशे ) फैले हुए सुखकारक धागेको देखनेके लिए मैं [ विश्वा सुनवानि परि आयं ] सब भुवनोंमें घूम आया हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ— सुलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो अनंत पदार्थ है, उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि अमृत सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिए मैं उसीकी उपासना करता हूँ । जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है, उसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण करता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि लकड़ोंमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥

जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति से पूर्ण उष्ण देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है, उसी का साधारण करनेके लिए सब वस्तुमानका निरीक्षण करने किया है और पश्चात् उसके अंदर वही एक सत्य फैला है यह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

### गूढविद्याका अधिकारी ।

सब विधाओंमें यह गुप्त विद्या मुख्य है, इसलिए हर एक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये दक्ष करना चाहिए । वास्तवमें देखा जाय, तो सभी मनुष्य इसकी प्राक्तिक मार्ग में लगे हैं, कई दूर के मार्गपर हैं और कईयोंने समीपका मार्ग पकड़ा है, इन अनेक मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग इस सूक्तको अभीष्ट है, यह बात यहाँ अब देखेंगे—

वेनः तत्पदपत् ॥ १ ॥

‘वेनही उसको देखता है,’ यह प्रथम मंत्रका विधान है । यहाँ प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है । यह अधि-कार ‘वेन’ का ही है यह ‘वेन’ कौन है ? ‘वेन्’ घातुके अर्थ— ‘भजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार’ के उपासनाके कार्य करनेके लिये जाना ’ ये हैं । ये ही अर्थ यहाँ वेन शब्द में हैं । ‘जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदयसे उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है ’ इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहाँ अभिप्रेत है । इसलिए केवल “ बुद्धिमान ” अर्थ ही यहाँ लेना उचित नहीं है । कितनी भी बुद्धिची विद्यालता क्यों न हुई हो, जब तक उसके हृदयमें भक्ति की लहरें न उठतीं हों, तब तक उस प्रकारके शुद्ध ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, यह यहाँ इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताया है ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य घाम विद्वान् गंधर्वः ॥ २ ॥

“अमृतके घाम को जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है ।” इसमें “गंधर्व” शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है । गंधर्व शब्द का अर्थ “संत, पवित्रात्मा” केशों में प्रसिद्ध है और वह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है । तथापि “गो वाणी धारयति” अर्थात् “ अपनी वाणीका धारण करनेवाला” यह अर्थ यहाँ विशेष योग्य है । वाणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहाँ वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आदर्शरूपा होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है । विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान् गंधर्व शब्दसे यहाँ लिया जाता है । प्रायः आत्मज्ञानोपकर्ताका वक्तृत्व मूकतासे ही होता है, किंवा थोड़े परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञान पवित्रात्मा आस पुरय जो कुछ कहना है, कह देता है । जबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें छलबल मचता रहता है, तब तक ही मनुष्य मेघमर्जेनाके समान वक्त्ररूप करता रहता है, परंतु इसका परिणाम धोताओपर विशेष नहीं होता । जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है । परंतु प्रभाव बढ़ता जाता है । वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है । यह गंधर्व अवस्था समझिये ।

यहाँ “वेन और गंधर्व” ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं । उपासक, भक्त तथा गंधीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करने वाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और वही उसका वर्णन भी कर सकता है ।

### पूर्व तैयारी । ( प्रथम अवस्था )

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उक्त सूक्तमें बताई है—

सद्यः ध्यावापृथिवी परि भाषम् ॥ ४ ॥

विद्या भुवनानि परि भाषम् ॥ ५ ॥

कुछ किया, मनुष्यको जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया । यह गूढतत्त्वके दर्शनकी प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है ।

### द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि ये नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इसलिये सच्ची तृप्ति, सच्चा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये । इस द्वितीय अवस्थामें भोगोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अमौलिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जाती है; इसका निर्देश इस सूत्रमें निम्न लिखित प्रकार किया है—

अमृतस्य विततं कं वस्तुं द्रव्ये विश्वा भुवनानि परि ज्ञायम् ॥ ५ ॥

“अमृतका फैला हुआ सुखकारक मूल सूत्र देखनेके लिए मैंने सब भुवनमें चकर मारा, ” अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका चक्र इसलिये होता है, कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल स्रोत होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लडाईं झगडों से परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐश्वर्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको ढूँढेंगे, इस उद्देशसे इसका भ्रमण होता है । यह जिज्ञासूकी दूसरी अवस्था है । इस अवस्था का मनुष्य तीर्थों क्षेत्रों और गुण्यप्रदेशों में जाता है, वहाँ शब्दनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुंचता है और वहाँसे ज्ञान प्राप्त करता है इसका इस समय का उद्देश्य यही रहता है, कि इस विभेद पूर्ण दुःख समय अवस्थासे अभेदमय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें । इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है । इस प्रकारवह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुंचता है । इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूत्रमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है—

### तृतीय अवस्था ।

घावागृथिवी परि आथं सद्यः ऋतस्य प्रथमज्ञां उपातिष्ठे ॥ ४ ॥

“मैं दुलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूँ और अब मैं सत्यके पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूँ ।” जगत् भरमें घूमकर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अमिष तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसकी होना है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है । उपासनासे अमिष कोई अन्य मार्ग उसके प्राप्त करनेका नहीं है, इसलिये इस मार्ग में अब यह उपासक आता है । ये अवस्थायें इस सूत्रके मंत्रों द्वारा स्पष्ट हो गई हैं, इन मंत्रों के साथ यज्ञोंद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक स्पष्ट जाता है; इसलिये ये मंत्र अब यहाँ दिये हैं—

परीत्य भूतानि परीत्य लोकांश्चारीत्य सर्वाः प्रथिवीं दिशश्च ।

उपस्थाप्य प्रथमज्ञामृतस्वाग्मनाग्मानामभि सं विवेश ॥ ११ ॥

परि घावागृथिवी सद्य इत्या परि लोकांश्चारी दिशः परि स्वः ।

ऋतस्य वस्तुं विततं विष्वत्पत्तदमवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

वा. यजु. अ. ३२

“ ( भूतानि परीत्य ) सब भूतोंको जानकर या भूतोंमें घूमकरके ( लोकांश्चारीत्य ) सब लोकोंमें भ्रमण करके ( सर्वा दिशः प्रदिश. च परीत्य ) सब दिशा और उपादिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इन सबको यथावत् जानकर ( ऋतस्य प्रथमज्ञां उपस्थाप्य ) सत्यके पहिले नियमके प्रवर्तक श्री उपासना करके ( आग्मना आग्मानं ) केवल आग्मनस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अभि ५ विवेश) सब प्रकारसे प्रवेष्ट होता हूँ ॥ ११ ॥

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं । जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टीकरण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्थोंद्वारा हुआ है : "सब भूत, सब लोकलोकान्तर, सब उपादिशाएँ, सु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहाँ तक जासकती है, वहाँ तक जाकर, वहाँतक विजय करके, वहाँतक पुरुषार्थ प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया । इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अठल सन्नियमियोंको चलानेवाला एकही सूत्ररूप आत्मा सबके अंदर है, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के बिना कोई ठहर नहीं सकता । जब यह जान लिया तब उसकी ही उपासना की, और केवल अपने आत्मसेही उसमें प्रवेश किया । जब वहाँका अनुभव लिया, तब उपासक वैषा बन गया, जैसा पहिले था ।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको पता लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूत्रके मंत्रों द्वारा आशय व्यक्त हुआ है, वही बड़े विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है । और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएँ भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये—

- १ प्रथम अवस्था—( अज्ञानावस्था )—अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान ।
- २ द्वितीय अवस्था—( भोगावस्था )—जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना । जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना । इसी अवस्थामें राजशैश्वर्य भोग बढ़ाये जाते हैं ।
- ३ तृतीय अवस्था—( त्यागावस्था )—जगत्के भोगोंसे अवमाधान होकर विभक्तोंमें व्यापक अविभक्त सत्तावली सदस्तुको हँडनेका प्रयत्न करना । वह जिज्ञासुकी अवस्था है ।
- ४ चतुर्थ अवस्था ( भक्तावस्था )—मनुष्य विभिन्न विश्वमें व्यापक एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और भ्रष्टा मस्तिष्के उसकी उपासना करने लगता है ।
- ५ पंचम अवस्था—( स्वरूपावस्था )—उपासना और मस्तिष्क और श्रद्धा होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा या वैषा बन जाना है । यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहाँ इसको भव ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।

यही मार्ग इस अथर्व सूत्रमें वर्णन किया है । यहाँ पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और अगेछा मार्ग क्या है ।

## पूर्णावस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही दे कि—

उपस्थाप्य प्रथमजामृतस्य  
आत्मनात्मानमभि सं विवेद्या  
प्राणस्य तन्तुं वितर्तं विचृत्य ।  
तद्रूपपत्तद्रभवत्तदासीत् ॥१२॥

वा. पठ० अ. ३२

"सबके पहिले प्रवर्तक परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ । सबके देते हुए भागोंके अन्ग देखकर वैषा हुआ जैसा कि पहिले था ।" यह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है । इसीको निरतिशय स्पष्टद्वारा इस अथर्व सूत्रमें कहा है—

स्वविद्वाः प्राः अभ्यनूयत ॥ ३ ॥  
अमृतस्य घाम विद्वान् ॥ ४ ॥  
वस्तानि वेद् स् विगुप्यताऽथत् ॥ ५ ॥



“ ( प्राः ) व्रत पालन करनेवाले ( स्वयंवेदः ) आत्मज्ञानी उषी की स्तुति करते हैं । वे अमृतके घामको जानते हैं । जो ये घाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सबसे अधिक ज्ञानी अथवा सबसे अधिक समर्थ होता है । ” यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्थामें पहुंचनेका निश्चय इधसे हो सकता है ।

प्रथम मंत्रमें “प्रा.” शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । व्रतो या नियमोंका पालन करनेवाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करनेवालेका यह नाम है । नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना बड़े पुरुषार्थसे साध्य होता है । इसमें व्रतभंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयं ही प्रायश्चित्त करना होता है । महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं । हरएक गनुध्य दूधरे पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है । अपनी संपूर्ण शक्तिवा अपने अधीन रखनी और कभी कुविचार आदि शत्रुओंके आश्रीत न होना इत्यादि महत्त्व पूर्ण बातें इस आत्मशासनमें आती हैं । परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उषीक महत्त्व सब लोग मानेंगे ।

### सूत्रात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सबमें एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं । सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं । जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, उसी प्रकार इस जगत्के सूर्यचक्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधारसे यह सब विद्य रहा है, इधिका दर्शन नहीं होता, सब मालका ही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्त्व तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है और वह उस जगदाधार को प्राप्त कर सकता है ।

वेदमें “तन्तु, सूत्र” आदि शब्द इस अर्थमें आये हैं । जगत्के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके बिना नहीं है । यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गूढ़ विद्याका विषय है, जो इस सूक्त द्वारा यतया है ।

इस गुण विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बड़ा लाभान्वितदेह होता है; परंतु यह एक बाध साधन है । सभी गुण हृदय की गुहा ही है । हृदय की गुफा सब जानते ही हैं । इसी में इस गुणतत्त्वकी खोज करनी चाहिए ।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुणतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती । इस कार्यके लिए दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिए, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् चलाऊ झुकना चाहिए । तभी इस गुण तत्त्व की खोज हो सकती है । अपने हृदयमें ही उस गुण आत्मानो देखना चाहिए । अर्थात् इसकी प्रातिके लिए बाध दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिए ।

### चार भाग

यह अमृतका धाम हृदयमें है । यदि इस अमृतके चार भाग मान लिए जाय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है । जो बाहर दिखता है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है, वह बहुत विस्तृत ही है । अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-बुद्धि, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियां अल्प हैं और स्थूल शरीर वह अल्प है । यदि शक्तिका तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियां बहुत ही प्रमाणात् शाली हैं । अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिका अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बड़ी है । यही यहाँ निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है—

श्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृभित्ताऽसत् ॥ २५ ॥

“ इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थसे भी समर्थ होता है । ” अर्थात् स्थूलशरीरकी शक्तिका स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियोंपर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है । इसी विषयमें ये मंत्र देखिये—

पादोऽस्य विधा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्वं उदैरुख्यः पादोऽस्वेहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥

अ० १०९०।वा. य. ३१

त्रिभिः पद्भिर्धामरोहत्पादोस्वेहाऽभवत्पुनः ॥

अथर्व १९ । ६

त्रिपाद्व्रज पुरुरूपं वितच्छे तेन जीवन्ति प्रदियाश्चतस्रः ॥

अथर्व १११०।१९

“ उसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत सुलोक में है । तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहाँ वारंवार प्रकट होता है । तीन पादोंसे स्वर्गपर चढ़ा है और एक पाद यहाँ पुनः पुनः होता है । तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके उठता है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं । ”

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य बड़ा है, जो इस सूक्तके ऊपर दिए हुए भागमें बताया है । उस अमृतकी अल्पकी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, तोष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यवस्त में कार्य होता रहता है । पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता उनको लग जायगा । मनकी शक्ति-बहुत है उसका सोदासा भाग शरीरमें गया है और यहाँ कार्य कर रहा है । यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन वारंवार स्थूल गुणमनकी शक्तिके प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और वारंवार शरीरमें आकर कार्य करता है । यही बात अधिक स्पष्टतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है । उसका केवल एक अंश प्रकट है, तोष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोड़ना गूढविद्याका साध्य है ।

### एक रूप ।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है । जगत्में गति है इधमें शांति है, जगत्में मिथता है इधमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, इस सूक्तमें भी देखिए—

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विद्वं भवत्येकरूपम्

इदं पृथिरदुद्दजायमानाः स्वविदो अम्यनूषत माः ॥ १ ॥

“ज्ञानी मन्त्र ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एकरूप हो जाता है। इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है। इसलिये आत्मज्ञानी ब्रतपालन करनेवाले मन्त्र उस आत्माका ही गुण गान करते हैं।”

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जाग्रतमें जगत्की विविधता का अनुभव आता है, स्वप्नमें भी कात्पनिक सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु तृतीय अवस्था गाढ निद्रा—सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इसलिए उस समय किसी प्रकारका गान नहीं होता। सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें “ब्रह्म रूपता” होती है, तम—रज—सत्व-गुणोंकी भिन्नता छोड़ दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भावोंमें ईश्वररूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिट जाता है, इसलिए इस अवस्थाको “एक—त्व” कहते हैं। इसी उद्देश्ये इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

“जहां संपूर्ण विश्व एकरूप होता है।” अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप या आजाता है। वृक्ष के जड़, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गुठली में इन भिन्नता को एक रूपता दिखाई देती है। इसी प्रकार इस जगद्रूपी वृक्षकी विविधता मूल उत्पत्तिकारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी। इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती हैं। इस रीतिसे न उत्पन्न होनेवाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक तत्त्व बनते हैं। इनका ही नाम उक्त मंत्रमें “आयमानाः” कहा है। इनमें मनुष्यभी सम्मिलित हैं और अन्य प्राणी तथा अप्राणी भी हैं। इनमें मनुष्यही ( माः ) ब्रतपालनादि सुविधायें अपनी उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके ( स्वविदः ) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है।

### अनुभव का स्वरूप ।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अथ देखना चाहिये—आत्मज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयकी गुहामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियां वहां ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है। ( मंत्र २ देखो )

और वह अनुभव करता है कि— ‘वहां परमार्थमा हम सबका पिता, उत्पादक, और भाई है, वही सर्वज्ञ है।’ ( मंत्र १ ) इतनाही नहीं परंतु “वही हमारी माता और वही हमारा सखा मित्र है” वह भी उसका अनुभव है। यहां ऋग्वेद और अथर्व मंत्रोंकी तुलना कीजिये—

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामथ एक एव सं सं प्रभं भुवना यन्वि सर्वां ऽ

अथर्व. २।१।१

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामथा एक एव सं सं प्रभं भुवना यन्त्यन्वा ॥

ऋग्वेद १।०।२।३

स भो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

या. यजु. ३।१।१०

इनमें कुछ पाठभेद हैं, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है। वही ज्ञानी मन्त्र का अनुभव है। और एक अनुभव यजुर्वेदके मंत्रमें दिया है वहां भी यह देखिये—

## जगत् का ताना और वाना ।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स्रज् भोतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ वा. यजु. ३२।८

‘ज्ञानी मफ उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुहामें है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोंसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिसमें यह सब विश्व एक समय ( सं एति ) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय ( वि एति ) अलग होता है । ( सं: विभूः ) वह सर्वत्र व्यापक तथा बेभयसे युक्त है और ( प्रजासु भोतः प्रोतः ) प्रजाओं में ताना और वाना किये हुए धागों के समान फैला है !”

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है । बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बड़े माई, चाचा, दादा, नाना आदिके पास सहायतायें छाता है । वही बालक बड़ा होनेपर आर्पात्त आगई तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है । इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है । ये सब संबंध परमात्मामें ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी मफके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, माई आदि रूप हो जाता है ।

### एकके अनेक नाम

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका माई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं । इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है ।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होनेपर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सुष्टीके अनंत पदार्थोंमें आनेके कारण उसको अनंत नाम दिये जाते हैं । जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिये अग्नि अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निवाही अग्नि है । इसी प्रकार अन्यन्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है ।

शरीरमें भी देखिये—आख नाक कान आदि इंद्रियों स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी छक्तिसे अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं । इसलिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मामें धार्य होते हैं, अतः आत्माको आंखका आख, कानका कान कहते हैं । इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है । देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है ।

### वह एकही है ।

परमात्मा एक ही है, वह बात इस तृतीय मंत्रमें ‘एक एव’ ( यह एक ही है ) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है । किसीको परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इसलिये ‘एव’ पदकी योजना यहाँ की है । मफ को भी ईश्वरके एकत्वका अनुभव होता है, क्योंकि ‘विभक्तोंमें अविभक्त’ आदि अनुभव उसको होता है, इत्यादि विषय इसके पूर्व बताया ही है । शार्मा भक्तका विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा “स-प्रश्न” है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है । भक्तिसे जब भक्त उसे प्रश्न पूछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है । कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायता की याचना की, और एकन्त में अनन्य धारण वृत्ति से उसकी प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना नि सेंदह सुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है । अन्य मित्र सहायतायें समयपर आसकेंगे वा नहीं इसका नियम नहीं, परंतु यह परमात्मा ऐसा मित्र है, कि वह अनन्य साथसे धारण जानेपर सदा सहायतायें सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह धारणयों की सहायता न करे । इसलिये सहायतायें यदि किसीसे पूछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्योंकि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उत्तर दायम हस्त सदा हम चरण पर है ।

यह सबका ( घास्यु ) धारण पोषण करनेवाला है और ( सुवने-स्याः) सपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हर एक पदार्थमें व्याप्त है । कोई स्थान उससे खाली नहीं है । वक्ताओं जैसा वक्त्रूच है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है । ( मन् ४ ) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है, फिर अग्नि वायु रनि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यदा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है । मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिये ही प्रकाशता है ।

### देवोंका अमृतपान ।

इस सूक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशाना समाने योनाक्धैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं ।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुभवमय अमृत पीते हैं ।

सुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है सुक्ति और समाधि तो हर एक के अनुभवमें नहीं है, परन्तु सुषुप्ति हर एक के अनुभवमें है । इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं । इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव अर्थात् सब इन्द्रियाँ अपना भेदभाव छोड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं । इस अमृतपानसे उनकी सब शकावट दूर होती है और जब सुषुप्ति से छूटकर ये इन्द्रियाँ जाग्रतावस्थामें पुन लौट आती हैं, तब पुन तेजस्वी बनती हैं । यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवाधी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा । बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमारी की अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती । परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा भद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी आघात हुआ है । इतना गहरव तमोयुगमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है । इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और सुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा ।

यत्पूर्वमें यही मन्त्र थोड़े पाठ भेदसे आगया है वह भी यहाँ देखने योग्य है—

यत्र देवा अमृतमानशानासुवीये धामअधैरयन्त ॥ वा यजु. ३२।१०॥

“वहाँ देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुँचते हैं ।” पूर्वोक्त मंत्र में जहाँ ‘समाने योना’ शब्द है वहाँ इस मंत्रमें “तृतीये धामम्” शब्द है । समान योनी का ही अर्थ तृतीया धाम है । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाएँ मन की जाय, तो तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोड़कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं । शूद्र, सूत्रम, कारण ये प्रकृतिके रूप यहाँ लिये, जाय, तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता त्यागकर सब मंत्रमें लीन होकर अमृत रूप होते हैं । शान्ति मन्त्र महात्मा सायुधत ये लोग अपने समान भावसे मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानन्द ही प्राप्त होते हैं । इस प्रकार हर एक स्थानमें इसका अर्थ देखना चाहिये । [पाठक इस सूक्तका मनन कां० १।१० १३ और २० इन दो सूक्तोंका साथ करें ]

यहाँ इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है । यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे, और उसपर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें गूढ़विद्याकी बातें स्वयं स्फुरित होंगी । इस सूक्तमें शब्द पुन पुनके रखे हैं, और हर एक शब्द विशेष भाव बना रहा है । विशेष विचार करनेकी गुणमत्ता के लिये श्रग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहाँ दिखे हैं इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं । वेदकी यह विशेष विद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे जितना अधिक लाभ उठावेंगे उतना अधिक अच्छा है ।

यह सबका ( धास्युः ) धारण पोषण करनेवाला है और ( भुवने-स्याः ) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें स्थित है । कोई स्थान वक्ष्ये खाली नहीं है । वकामें जैसा वक्त्रव है, उस प्रकार जगत्में यह है, सबसुख यह अग्नि ही है । ( मंत्र ५ ) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यदा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है । मनुष्यका चन्द्र आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है ।

### देवोंका अमृतपान ।

इस सूक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मानमें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानदानाः समाने योनावप्यैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मानमें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं ।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अपना अपनी विभिन्नताको छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुभवमें अमृत पीते हैं ।

सुक्ति, समानि और सुपुत्रि में यह बात अनुभवमें आती है सुक्ति और समाधि तो हरएक के अनुभवमें नहीं हैं, परन्तु सुपुत्रि हरएक के अनुभवमें हैं । इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं । इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब इन्द्रिया-अपना भेदभाव छाड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मानमें गोता लगाकर अमृतानुभव करने हैं । इस अमृतपानसे उनकी सब यकावट दूर होती है और जब सुपुत्रि से हटकर ये इन्द्रिया जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं । यदि चार आठ दिन सुपुत्रि न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये माग्य नहीं रहेगा । बीमारी में भी जबतक सुपुत्रि प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमार को अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती । परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा बंद हुई तो बीमारी कहते हैं कि, यह रोगी आघात हुआ है । इतना महारज तमोगुणनश सुपुत्रि अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपराटा और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है । इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और सुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा ।

पुरुर्दमे यही मंत्र छोटे पाठ भेदसे आगवा है यह भी वहाँ देखने योग्य है—

अग्निंये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।

ताभ्यो वो देशीर्नम इत्कुणोमि

॥ ४ ॥

याः कृन्दास्तमिपीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।

ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः

॥ ५ ॥

अर्थ— ( अन्-अवशामि आभि. ) दोपरहित देखे इन प्राणशक्तियोंके साथ वह ( उ स जामे ) निश्चयसे मिला रहता है और ( अप्सरासु अपि ) इन प्राणशक्तियोंमें भी ( गन्धर्वः आसीत् ) भूमि आदियोंका धारक देव विद्यमान है । ( आसां स्थान समुद्रे ) इनका स्थान अन्तरिक्षमें है, ( यत् ) जहासे ( सद्यः ) शीघ्र ही ये ( आ यन्ति ) जाती हैं और ( परा यन्ति च ) परे जाती हैं । यह पाद्य ( मे आहु ) मुझे चतायी है ॥ ३ ॥

( अग्निंये दिद्युत् ) बादलोंकी विद्युत् में अथवा ( नक्षत्रिये ) नक्षत्रोंके प्रकाशमें भी ( याः ) जो तुम ( विश्व-रसु गन्धर्वं ) विश्वके घसानेवाले धारक देव की ( सचध्वे ) प्राप्त करती हो अथवा उसकी सेवा करती हो, इसलिये हे ( देवी ) दबियो ! ( ताम्य वः ) उन तुमको ( इत् नम कुणोमि ) निश्चय पूर्वक मैं नमन करता हूँ ॥ ४ ॥

( या कृन्दा ) जो बुलानेवाली या प्रेरणा करनेवाली, ( तमिपी-चयः ) रत्नानिको हटानेवाली, ( अक्ष-कामा ) धात्योंकी कामना नष्ट करनेवाली, ( मनो-मुह ) मनको हिलानेवाली हैं ( ताम्य गन्धर्व-पत्नीभ्य अप्सराम्य ) उन गन्धर्वपत्नीरूप अप्सरामोंको—अर्थात् सर्वधारक आत्माको प्राणशक्तियोंको ( नम. अकरम् ) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसके साथ जीवनकी अनन्त कल ए है, इतना ही नहीं परतु वह उन जीवन शक्तियोंके अंदर भी है। इन सबका निवास माध्यलोह-अन्तरिक्ष-है, जहासे ये सब शक्तियाँ प्रकट होती हैं और जहाँ फिर गुप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

बादलोंके अंदर चमकनेवाला विद्युत्में क्या और नक्षत्रोंके प्रकाशमें क्या यह सब जगत्का पालन कर्ता एक रस भगवान् है, और इसकी सेवा सपूर्ण जीवनकी शक्तिरूप देवियों कर रही हैं, इसलिये उनको मैं नमन करना योग्य है ॥ ४ ॥

ये प्राणशक्तियाँ सबको प्रेरणा करनेवाली, सबको चलावेवाली, यथावत्को दूर करवेवाली, धात्योंकी कामना नष्ट करनेवाली और मनको हिलानेवाली हैं । यही आत्माकी शक्तियाँ हैं, इस दृष्टिसे मैं इनको नमस्कार करता हूँ ( अर्थात् वह इनको किया हुआ मैं) नमस्कार भी उस अद्वितीय ईश्वरको ही पहुँचेगा, क्योंकि ये शक्तियाँ उसीके आधारसे रहती हैं ) ॥ ५ ॥

### पूर्व सम्बन्ध

प्रथम सूक्तमें “ गुण्य अथात्मीवया ” का वर्णन किया गया है, उस सूक्तमें जिस परमारमा देवका वर्णन किया गया है, उसीका वर्णन यहाँ “ गंधर्व ” शब्द से किया गया है । उस प्रथम सूक्तके द्वितीय मन्त्रमें भी “ गंधर्व ” शब्द है, इससे पूर्व गुण्यका इस सूक्तके साथ संबंध स्पष्ट हो जाता है ।

७ सूर्यत्वम्—महान् सहस्ररदमी सूर्य भगवान् ही इसका देह है, अर्थात् यह उस में भी है इतनाही नहीं, परंतु उसका बरा तेज भी इसीसे प्राप्त हुआ है। यह इसकी महिमा है ( मं. २ )। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंमें इसकी सत्ता देखनी चाहिए। यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है।

८ विष्वा-धसुः ( गंधर्वः )-विश्वका यही निवासक है। ( मं. ४ )

ये लक्षण स्पष्ट कर रहे हैं कि यहाका यह गंधर्वका वर्णन निःसंदेह परमात्मा का वर्णन है। किसीभी अन्य पदार्थ में ये सब अर्थ पूर्णरूपसे सार्य नहीं हो सकते। इसलिए पाठक इन लक्षणों का मनन करके अपने मनमें इस परमात्म देव की भक्ति स्थिर करें, क्योंकि यही एक सबके लिए पूजनीय देव है।

### ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना।

इस परमात्माकी प्राप्ति इसकी उपासनासे होती है। इस सूक्तमें इसकी ' ब्राह्म उपासना ' करनेका विधान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

१ तं स्वा यौमि ब्रह्मणा। ( मं० १ )

२ नमस्यः। ( मं० १,२ ) नमस्ते अस्तु। ( मं० १ )

३ विधु ईक्ष्यः। ( मं० १ )

४ सुमेवाः। ( मं० २ )

ये चार मंत्र भाग इसकी ब्राह्म उपासना करनेके मार्ग की सूचना दे रहे हैं। ब्राह्म उपासना का अर्थ ' ब्रह्मयज्ञ ' अथवा मन द्वारा करने की ' मानस उपासना ' ही है। आत्मा बुद्धि चित्त मन आदि अंतःसाधनोंसे ही यह परमात्म पूजा होती है, इन साधनोंका नामही शरीरमें ब्रह्म है। ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र भी है और मंत्रका आशय ' मनन ' है। मननसे यह उपासना करनी होती है, मनके मनन से ही यह हो सकती है, किसी अन्य रीतिसे यह नहीं होती है, यह स्पष्टतया बतातेके लिए वही ' ब्रह्मणा ' शब्द इस मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यह बात ध्यान में धारण करके उक्त चार मंत्रभागोंका अर्थ ऐसा होता है—

१ तं स्वा यौमि ब्रह्मणा—उस तुझ परमात्माको मननसे प्राप्त होता हूँ। ( मनन )

२ नमस्यः [ नमस्ते ]—तू ही एक नमस्कार करने योग्य है। ( मनन )

३ विधु ईक्ष्यः—धम जगत्में तू ही प्रसंसा करनेके लिए योग्य है। ( सर्वत्र दर्शन )

४ सु—सोचाः—तूही उत्तम सोचके लिए योग्य है। ( धेवन )

इन चार मंत्र भागोंके मननसे मानस पूजाकी विधि ज्ञात हो जाती है। ( १ ) प्रभुके गुणोंका मनसे मनन करना, ( २ ) उसी को मननसे मनन करना, ( ३ ) प्रत्येक पदार्थ में तया प्राणिमात्रमें उसका दर्शन करना और ( ४ ) सब ब्रह्म उसकी सेवा करने के लिए करना, ये चार भाग उस प्रभुकी उपासना के हैं। इन चार भागोंमें से जितने भागोंका अनुष्ठान हुआ होगा, उतनी उपासना उन्नेही प्रमाण से हुई है, ऐसा मनना चाहिए। गूठक विचार करें और अपनी उपासनाकी परीक्षा इस क्लीटके करें। हाएक मनुष्य अपने आपकी परमात्माका उपासक बनताही है, परंतु उससे जो उपासना हो रही है, वह इस वैदिक मानस उपासना की उच्छ क्लीटके विषय कीटोंपर गिनी जा सकती है, वह भी देवता आदिये। इस दृष्टीसे ये चार मंत्र भाग विशेषकी महत्त्व रखते हैं।

' मनन, नमन, धर्मत्र दर्शन और धेवन ' ये चार नाम संक्षेप से मानस उपासना के चार अंगोंके दर्शन में आ सकते हैं।

१ " मनन " ये परमात्माके महत्त्वकी मनमें स्थिरता होती है। इस दृष्टीसे इसकी अस्तित्व आदर्शकता है।

२ " नमन " जब मननसे उच्छका महत्त्व ज्ञात हुआ, तब स्वभावता ही मनुष्य उस प्रभुके धामने आन होय



है । मननके पश्चात् की यह स्वाभाविक ही अवस्था है ।

३ “ दर्शन ” मननसे ही उसकी सार्वत्रिक सत्ता का भी अनुभव होता है । स्थिर चरमें एक रस व्यापक होनेका साक्षात्कार होनेकी यह तीसरी उच्च अवस्था है । जगत्के अंदर प्रभुका ही सर्वत्र साक्षात्कार इस अवस्था में होता है ।

ये तीनों मानसिक क्रियाएँ हैं । इसके पश्चात् यह भक्त अपने आपको परमात्माके परम यज्ञमें समर्पण करता है, वह सेवा-वस्था है ।

४ “ सेवन ” यह इस अवस्थामें उसका सेवक बनता है । सेवन और ‘भजन’ ये दोनों शब्द समान अर्थके ही हैं— सेवन और भजन एकही अर्थ बताते हैं । प्रभुके कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना, यही भक्ति या सेवा है ।

‘ दीनों का उच्चार ’ करना, साजुओंका परित्राण करना, सज्जनोंकी रक्षा करना, दुर्जनोंको दूर करना, ये ही परमात्मा के कर्म हैं । इन कर्मों को परमात्मार्पण बुद्धिसे करनेका नाम ही उसकी भक्ति या सेवा है ।

### नामस्मरण ।

नामस्मरण का भी यही तात्पर्य है, जैसा “ हरि ” ( दुःखोंका हरण करनेहार ) देव है, इसलिए मैं भी दुःखितोंका दुःख यथाशक्ति हरण करूँगा और दूसरों को सुख देने के कर्म से ईश्वर की सेवा करूँगा । ‘ राम ’ ( आनंद देनेवाला ) ईश्वर है इसलिए मैं भी दीन दुःखी मनुष्यों या प्राणियोंकी पीडा दूर करनेके यत्न द्वारा परमात्माकी भक्ति या सेवा करूँगा । ‘ नामस्मरण ’ का यही उद्देश्य है । यद्यपि आजकल केवल नामका स्मरणही रहा है और उससे प्राप्त होनेवाले कर्तव्य का पालन नहीं होता है, तथापि वस्तुतः इससे महान् कर्तव्य सूचित होते हैं, वह पाठक विचारसे जानें और परमेश्वरके इतने नाम कहनेका मुख्य उद्देश्य समझ लें । अनेक ग्रंथ पढ़ने से जो कर्तव्य नहीं समझता, वह एक नाम के मननसे समझमें आता है, इसीलिये वेदादि ग्रंथोंमें परमात्माके अनेक नाम दिये होते हैं और वे सब बड़े मार्गदर्शक हैं, परंतु देखनेवाला और कर्म करनेवाला भक्त चाहिये ।

अस्तु । ईश्वर उपासना के ये चार भाग हैं, इसका अधिक विचार पाठक करें और इस मार्गसे चलें । यहाँ घोषा, छरल और अतिछुगम मार्ग हैं ।

### ब्राह्म उपासना का फल ।

पूर्वोक्त प्रकार मानस उपासना करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन भी इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं—

१ सं त्वा यौमि-परमेश्वरके साथ मिलना, ब्रह्मरूप अवस्था प्राप्त करना । ( मं० १ )

२ दैव्यस्व हरस भवयात्ता-परमात्मा सब महापापियोंको दूर करनेवाला है, इसलिये सब पीडा उसकी प्राप्ति से दूर हो जाती है । ( मं० २ )

३ मृत्वात्-वह आनंद देता है । ( मं० ३ )

इन शब्दोंके मननसे पाठकोंको पता लग जायगा कि, उपासना का फल परमानंद प्राप्ति ही है । वह प्रभु सच्चिदानंद स्वरूप होनेसे उसके साथ मिल जानेसे वही आनंद उपासकमें आ जाता है और जितनी उपासनाकी दृढता और पूर्णता होगी, उतना वह आनंद दृढ और पूर्ण होता है । यह फल प्राप्त करनेकाही पूर्वोक्त वैदिक मार्ग है ।

यहाँ पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ । इसके पश्चात् के तीन मंत्रोंका वर्णन ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये उस वर्णनको प्रथम अपने शरीरमें अनुभव करना चाहिये और पश्चात् वहाँ भाव विशाल जगत्में देवता चाहिये—

### अपने अंदरकी जीवन शक्ति ।

इससे पूर्व बताया गया है कि, जलतरफके आधुनिक कार्य करनेवाली प्राणशक्ति या जीवनशक्ति ही ‘ अमराः ’ शब्दसे इस सूक्तमें कही है, देखिये इसका वर्णन—